वानप्रस्थ और संन्यासी) अनेक प्रकारके साधन सम्बन्धी श्रमको छोड़ देते हैं॥ १६॥

☞ मिलान कीजिये—**'वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे। वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते॥'** (भा० १०। २०। ४९) अर्थात् वर्षाके कारण एक स्थानपर रुके हुए वणिक्, मुनि, राजा और स्नातक (कृतसमावर्तन ब्रह्मचारी, अपने-अपने उत्तरोत्तर व्यापार—वाणिज्य, तप, स्वाच्छन्द्य, दिग्विजय, विवाहोद्यम आदि कामोंके लिये चले। जैसे साधना करके सिद्ध हुए पुरुष जो बँधे (रुके) हुए थे समय आनेपर अपने योग्य देव आदि देहको प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी—१— प्रथम वर्षामें कह आये हैं कि जहाँ-तहाँ पथिक रुक रहे हैं, यथा—*'जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना।'* इसीसे सम्पूर्ण वर्षाकी निवृत्ति कही, यथा—*'बर्षा बिगत सरद रितु आई।'* वर्षा बीत जानेपर भी जबतक मार्गमें जल भरा रहता है तबतक मार्ग चलना कठिन होता है; इससे जलका सूखना कहा, यथा—*'उदित अगस्ति पंथ जल सोखा।'* जल सूखनेपर कीचड़ रहता है, उसके रहते भी चलना कठिन होता है, अतः उसका भी न रहना कहा, यथा—*'पंक न रेनु सोह असि धरनी।'* पथिकोंको जो कठिनाइयाँ मार्गके चलनेमें होती हैं, उन सबका दूर होना और पन्थका साफ होना कहकर तब पथिकोंका चलना कहते हैं।

टिप्पणी—२—चलनेवालोंमें प्रथम 'नृप' को गिनाया, क्योंकि प्रस्तुत प्रसङ्ग यहाँ यही है। श्रीरामजीका मुख्य प्रयोजन इन्हींके कहनेका है, उनका अभिप्राय इस कथनसे यह है कि सब राजा अपना-अपना कार्य करनेके लिये चल दिये। पर नृप सुग्रीव हमारे कार्यके लिये न चले। यथा—**'अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज। उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः॥' 'इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज। न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम्॥'** (वाल्मी० ४। ३०। ६०-६१) अर्थात् हे राजकुमार! परस्पर वैर रखनेवाले, अपना विजय चाहनेवाले राजाओंके उद्योगका यही समय है। राजाओंकी प्रथम यात्राका यही प्रधान समय है; पर मैं न तो सुग्रीवको देखता हूँ और न उनके किसी उस प्रकारके उद्योग देख पड़ते हैं। (पं० रा० कु०) [भाव यह कि विजयदशमी यात्राके लिये शुभ दिन है। सुग्रीवको कम-से-कम आज तो शास्त्राज्ञापालनके लिये कुछ दूरतक दक्षिणयात्राके लिये नगरसे बाहर निकलना चाहिये। चार महीने हो गये, मुझसे भेंट भी न की। (वि० त्रि०)]

नोट—१ पूर्वार्द्धसे नृप, तपस्वी, वणिक् और भिक्षुक चारको गिनाया और आश्रम भी चार होते हैं। इसीसे यहाँ *'आश्रमी चार'* की उपमा दी। पूर्वार्द्धमें *'चले हरषि'* कहा है। अतः उत्तरार्द्धमें भी *'हरषि तजहिं'* का भाव समझ लेना चाहिये। वहाँ *'नगर तजि'* यहाँ 'आश्रमके अनेक साधनोंका कष्ट तजि।'

## *'हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि'*

गौड़जी—जैसे चारों पन्थी मार्गके सब सुभीते पाकर हर्षसे चल पड़े, उसी तरह चारों आश्रमवालोंने भी जब भक्तिमार्गको (जिसमें मायाका पङ्क नहीं है, विकारोंका रज नहीं है) निर्मल देखा तब अपने आश्रमोंके श्रम फल मार्गको खुशीसे छोड़ दिया क्योंकि वह ठीक और सुगम मार्ग पा गये। इसी मार्गसे वे भगवान्‌के पदको सहजमें पहुँच जायँगे। **'तद्विष्णोः परमं पदम्। सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवि वचक्षुत ततं।'**

पं० राजकुमारजी—सब धर्मोंका फल भक्ति है। यथा—*'जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी॥'* (७। १२६) जब साधनोंका फल 'भक्ति' प्राप्त हो गयी, तब (साधनरूपी) श्रम करनेका प्रयोजन क्या रह गया? भाव यह कि जिस आश्रममें जब भक्ति मिले तब वहींसे आश्रमके श्रमको त्याग कर दे। पूर्वार्द्धमें *'हरषि चले'* से यह जनाया कि भक्ति प्राप्त होनेपर आश्रमके श्रमको त्याग करनेमें किञ्चित् संदेह न करे। (भगवान्‌ने उद्धवजीसे भक्ति, ज्ञान और कर्मयोगका वर्णन करते हुए कहा है—**'यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्। न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥ तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता। मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥'** (भा० ११। २०। ८-९) (अर्थात्) जो

पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त है और न अत्यन्त आसक्त ही है तथा किसी पूर्व जन्मके शुभ कर्मसे सौभाग्यवश मेरी लीला-कथा आदिमें उसकी श्रद्धा हो गयी है, वह भक्तियोगका अधिकारी है। उसे भक्तियोगद्वारा ही सिद्धि मिल सकती है। कर्मके सम्बन्धमें जितने भी विधि-निषेध हैं, उनके अनुसार तभीतक कर्म करना चाहिये जबतक कर्ममय जगत् और उससे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि सुखोंसे वैराग्य न हो जाय। अथवा जबतक मेरी लीलाकथाके श्रवण-कीर्तन आदिमें श्रद्धा न हो जाय।)

पं० रा० व० श०—जबतक भक्ति न प्राप्त थी तबतक आश्रमोंमें रहकर धर्मसेवनमें जो क्लेश होते हैं उनको सहते हुए धर्म करते थे, छोड़ते न थे; क्योंकि दूसरा अवलम्ब न था। जब भक्ति प्राप्त हुई तब निर्भय होकर आश्रमधर्म छोड़ दिये; क्योंकि यहाँ उनको भगवान्के '**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**……', '**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**' इत्यादि वाक्योंका अवलम्बन मिल गया। भगवद्धर्मपरायण हो जानेसे अन्य धर्मोंके न करनेका दोष नहीं लगता; क्योंकि जो भगवद्भजन करते हैं उनके कर्म जो छूटे हैं उनके करनेके लिये ३० कोटि देवता रख दिये गये हैं। भगवत्-शरण होनेपर ऋषि, पितृ और देव तीनोंके ऋणसे भक्त मुक्त हो जाता है। यथा—'**देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥**' (भा० ११। ५। ४१) (अर्थात् जो मनुष्य 'यह करना बाकी है, वह कार्य करना आवश्यक है'—इत्यादि कर्मवासनाओंका त्याग करके सर्वात्मभावसे शरणागतवत्सल प्रेमके वरदानी भगवान् मुकुन्दकी शरणमें आ गया है, वह देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों और कुटुम्बियोंके ऋणसे उऋण हो जाता है। वह किसीके अधीन, किसीका सेवक नहीं रहता।)

वि० त्रि०—उपमा देते हैं। ज्ञान होनेसे इन्द्रियगण विश्राम करने लगते हैं, यथा—'***जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना॥***' पर उन्हींको जब भक्ति उपजती है, तब वे चुप बैठे नहीं रह सकते। वे भजनमें यत्नशील होते हैं। यथा—'***अस बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं॥***'

नोट—२—श्रीकरुणासिन्धुजी नृप, तापस, वणिक् और भिक्षुकके स्थानमें क्रमशः गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी (क्योंकि ये विद्याका व्यापार करते हैं) और संन्यासीको रखते हैं।

प० प० प्र०—इन दोहेमें विजयदशमीके सीमोल्लङ्घनका वर्णन है। इसमें पहले 'नृप' को कहनेमें भाव यह है कि सुग्रीव राजा है पर घरमें ही बैठ रहा है। मैं राजा हूँ तो भी दिग्विजयकी बात तो दूर ही रही, सीतापहारक खलका वध करनेके लिये भी मैं सीमोल्लङ्घन नहीं कर सकता। कैसी बेबसी है! 'तापस' में ध्वनि यह है कि मैं भी तपस्वी हूँ। अन्य यात्री लोग तीर्थयात्रारूपी तपस्या करनेके लिये नगरोंको छोड़कर चलने लगे, पर मैं इधर ही हूँ। बिना सीताकी सुधि पाये कहाँ जाऊँ क्या करूँ? सीताशोधका कार्य तो सुग्रीवके आश्रित है। मैंने इस कार्यके लिये सुग्रीवसे वणिक्के समान सौदा किया, उसको राज्य, कोष, पुर और स्त्री सब कुछ दिया। सीता-शोधरूपी मूल्य उसने सुसमय आनेपर चुकानेको कहा था, पर वह तो मुँह भी नहीं दिखाता। अब तकाजा (उगाही) करनेको निकलना चाहिये। पर वह मित्र है। रघुवंशी होकर वैश्यके समान तकाजा करनेको जाना तो भिखारीके समान होगा और धनुष-बाण धारण करते हुए वैसा करना लज्जास्पद है। फिर मित्रसे तकाजा करना भी अनुचित है। उसपर भी वह मेरा भक्त है, सेवक है, शरणागत है। अतः आगे कहते हैं—

नं० प०—आश्रमियोंको आश्रममें सुख तभीतक रहता है जबतक कि हरि-भक्तिकी प्राप्ति नहीं है। हरिभक्ति प्राप्त हो जानेपर आश्रम दुःख प्रतीत होने लगता है। अतः वे हर्षपूर्वक आश्रमको त्याग देते हैं। उसी तरह जो नृप, तापस आदि नगरमें निवास करते थे उनको नगरमें तभीतक सुख था जबतक वर्षा-ऋतु थी, जब शरद्ऋतुकी प्राप्ति हो गयी तब नगरमें रहना दुःख प्रतीत होने लगा। अतः वे बड़ी प्रसन्नतासे नगरको त्याग कर चले।

श्रीनंगे परमहंसजी 'श्रम' का अर्थ 'आश्रम' करते हैं और लिखते हैं कि 'श्रम' का अर्थ 'खेद' है—'**श्रमु तपसि खेदे च।**' 'खेद' से 'खेदाश्रय' ब्रह्मचर्यादि आश्रमका ग्रहण हुआ। रामेश्वर भट्टने भी 'आश्रम'

अर्थ लिया है। जब मूलमें आश्रमी शब्द लिखते हैं तब बिना आश्रमके आश्रमी कैसे सिद्ध हो सकता है। यदि कहिये कि श्रम तजहिं तो श्रम कार्य है। जिससे श्रम होता है वह कारण कहलाता है, कारणके रहते कार्य कैसे छूटेगा? अतः परिश्रम अर्थ करनेसे प्रसङ्ग-विरोध होगा। 'आश्रमका श्रम तजहिं' अर्थ ठीक नहीं है; क्योंकि आश्रम कोई चीज नहीं है। वह तो कर्मानुसार है। जैसे जब यह जीव कुमार-अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारणकर विद्याध्ययन और गुरुसेवा करता है तब ब्रह्मचर्याश्रममें कहलाता है। वही जब विवाह करके संतान उत्पन्न करता है, इत्यादि तब गृहस्थाश्रमी कहलाता है। गृही होनेपर ब्रह्मचर्य आश्रम छूट गया। जब मैथुन आदि छोड़कर तप करने लगा तब गृहस्थाश्रम छूट गया। वह वानप्रस्थ कहलाने लगा। इसी तरह संन्यास लेनेपर वानप्रस्थाश्रम छूट जाता है। इस परम्परासे जब कर्म ही आश्रम हुआ तब आश्रम कोई चीज नहीं ठहरा। जब कर्म आश्रम हुआ तब कर्ममें श्रम कहा जा सकता है। पर कर्म करते श्रम कैसे तजेगा? कर्म करनेमें तो श्रम अवश्य होगा। अतः जब कर्म छूटेगा तब श्रम छूटेगा और जब कर्म छूटा तब आश्रम छूटा। भक्ति प्राप्त होनेपर कर्म होता ही नहीं, यथा—*'कर्म कि होहिं सरूपहि चीन्हें।'* कोई महात्मा कहते हैं कि हरिभक्ति पानेपर चारों आश्रमोंका त्याग नहीं होता। उसका उत्तर यह है कि जो नृपादि नगरमें स्थित थे उन्होंने नगरको त्याग दिया। चारों आश्रमी किसमें स्थित हैं? यदि आश्रममें स्थित हैं तो उन सबोंके लिये आश्रमका त्याग करना अर्थ किया जा सकता है; क्योंकि स्थिति तजनेकी उपमा है। जैसे ब्रह्मचर्यको गार्हस्थ, गार्हस्थको वानप्रस्थ और इनको संन्यस्त लुप्त कर देता है तब हरिभक्तसे आश्रमके छूटनेमें क्या संशय है?.......यह वचन भक्तिके प्रारम्भके समयके लिये नहीं है; किंतु भक्ति प्राप्त होनेपर है जो सोलह आने पूर्ण भक्ति प्राप्त कर चुका है। जबतक भक्ति चार आना या आठ आना कर रहा है तबतक आश्रम कैसे छूटेगा।

## सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा॥ १॥

अर्थ—जो मीन अथाह जलमें हैं वे सुखी हैं, जैसे भगवान्‌की शरणमें एक भी बाधा नहीं*॥ १॥

टिप्पणी—१ (क) पूर्व कहा कि *'संकोच जल'* के मीन विकल हैं, यथा—*'जल संकोच बिकल भइँ मीना'*; उसीकी जोड़में यहाँ कहते हैं कि जो अगाध जलमें हैं वे सुखी हैं। (ख) संकोच जलवाले मीनकी उपमा कुटुम्बीकी दी थी और यहाँ अगाध जलवाले मीनको हरिभक्तकी। यह भेद करके जनाया कि जो हरिशरण छोड़कर कुटुम्ब सेते हैं वे दुःखी हैं और जो हरिशरण हैं वे सुखी हैं। हरिके शरणमें प्रथम तो एक भी बाधा नहीं होती और कदाचित् कोई बाधा आ पड़ती है तो बाधा दूर करनेके लिये हरि अवतार लेते हैं—(वा, 'हरि' की शरण हैं, अतः हरि उस बाधाका निवारण करते हैं) यही आगे कहते हैं, यथा—*'फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥'* (ग) हरिभक्तको मीनकी उपमा दी; क्योंकि जैसे मीन जलका अत्यन्त स्नेही है वैसे ही हरिभक्त हरिके अत्यन्त स्नेही हैं। मीनका *'जल जीवन जल गेह'*, वैसे ही हरिभक्तके हरि ही जीवन और सर्वस्व हैं। उपाय और उपेय दोनों हैं। ☞यहाँ भक्ति है।

नोट—१ हरिशरणरूपी जलकी गम्भीरता समुद्र-सी है। *'न एकौ बाधा'*, क्योंकि प्रभुका वचन है कि *'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।'* पुनः शिववाक्य, यथा—*'सीम कि चापि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥'* इत्यादि। (प्र०) 'अबुध कुटुम्बी' दुःखित रहता है, क्योंकि उसमें बुद्धि नहीं है, जिससे वह समझे कि जो संसारका पालन करनेवाला है वह हम सबका पालन भी करेगा, हमें उसकी शरण होकर उसका भजन करना और उसीका आशा-भरोसा रखना चाहिये। किसीने कहा है—*'जब दाँत न थे तब दूध दियो जब दाँत दिए कहा अन्न न देहै?'* (पं० रा० व० श०)।

---

* यथा भागवते—'जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया। अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया॥' (१०। २०। १३) अर्थात् जल और स्थलवासी सबने नवीन जलके व्यवहारसे रुचिर रूपको धारण कर लिया, जिस प्रकार भक्त हरिभक्तिके व्यवहारसे रुचिर रूपको धारण कर लेते हैं।

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियाने गीताङ्क (कल्याण) में यथार्थ ही लिखा है कि सच्चे अनन्यशरण भक्तका अपने लिये अपना कर्तव्य अथवा उसे अपने उद्धारकी चिन्ता कुछ भी नहीं रह जाती। वह तो एक बाजेके समान है, बजानेवाला जिस प्रकार चाहे वैसे ही बजा सकता है, जिस रागको वह निकालना चाहता है वही निकलता है। अपने लाभ-हानि, जीवन-मरण, मान-अपमानकी उसे चिन्ता नहीं रहती। महात्मा मंगलनाथजी स्वामी कहा करते थे कि 'कल्याणके अनेक मार्ग हैं और सब ही ठीक हैं; किन्तु उन सबमें शरणागतिका मार्ग अलौकिक है। अलौकिकका भाव यह है कि अन्य मार्गोंमें साधनका भार और कर्तव्य साधकके सिरपर रहता है। यहाँ शरणागतिमें सब भार अपने प्रभुके सिरपर रहता है। वहाँ अपनी चिन्ता स्वयं करनी पड़ती है किंतु यहाँ शरणागत भक्तकी चिन्ता भगवान्‌को रहती है, भक्त तो निश्चिन्त रहता है। गोस्वामीजीने भी क्या खूब कहा है—*'जागै भोगी भोग ही बियोगी रोगी सोगबस, सोवै तुलसी भरोसे एक राम के।'* (क० उ० १०९) एवं *'भरोसे रामनामके पसारि पाय सूतिहौं।'* इसके अतिरिक्त वहाँ साधक अज्ञानजन्य ममतामें आसक्ति रहनेसे गिर भी जाता है; पर यहाँ शरणागत भक्तके रक्षक स्वयं त्रिभुवनपति भगवान् रहते हैं, फिर गिरनेका भय कैसे हो सकता है? यहाँ तो शुकदेव स्वामीके ये वचन चरितार्थ होते हैं, **'त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भयाः।'** (भा० १०। २। ३३) अर्थात् आपद्वारा रक्षित हुये निर्भय विचरते हैं। शरणागतभक्तका रक्षण प्रभु उसी प्रकार करते हैं जैसे एक छोटे स्तनपायी बालककी रक्षा और देख-भाल जननी करती है। माता भी परिमित शक्तिवाली होनेके कारण सर्वथा रक्षा नहीं कर सकती और यहाँ तो अपरिमित शक्तिवाले रक्षक हैं। अतएव शरणागति कल्याणका अलौकिक मार्ग है। भगवान्‌की शरण नीचातिनीच भी ले सकता है। सच्चे हृदयसे शरण लेनेके बाद कोई दुराचारी नहीं रह सकता।' वैष्णवरत्न श्री १०८ रूपकलाजीने भी खूब कहा है *'प्राण तोर मैं तोर मन चित बुधि यश तोर सब। एक तुही तो मोर काह निबेदौं तोहि पिय॥'* इस दोहेमें शरणागतका अर्थ मानो कूजे (घट) में समुद्रको भर दिया है। इधर भगवान् भी नीचातिनीचको शरण देनेसे मुख नहीं मोड़ते। अतएव निर्भय होकर अपने पापोंके समूहको आगे करके विभीषणजीकी भाँति प्रभुके चरणोंमें अपनेको समर्पण कर देना चाहिये, जैसे विभीषणजीने कहा है—*'श्रवन सुजस सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर। त्राहि त्राहि आरतिहरन सरन सुखद रघुबीर॥'* ☞ यह घोषणा श्रीरामजीने यहाँ इस एक चरणमें कर दी है। देखिये, सारी भागवत और गीता एवं विभीषण शरणागतिमें जो कुछ भी वाल्मीकीय एवं रामचरितमानस आदि रामायणोंमें भगवान्‌ने शरणागतिके विषयमें बड़े जोरके वाक्य कहे हैं, उन सबका सार श्रीरामजीने यहाँ एक चरणमें ही कैसा भर दिया है।—भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीकी जय! जय!! जय!!!

प० प० प्र०—भगवान् सोचते हैं कि सुग्रीव मेरी शरणमें आया है। उसको बाधा होगी तो संत मुझे दोष देंगे। वह तो *'सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे॥'*—न्यायसे निश्चिन्त है। उसकी कीर्ति और शोभा बढ़ाना मेरा ही कर्तव्य है। *'करउँ सदा तिन्हकै रखवारी'* यह मेरा विरद है।

**फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥ २॥**
**गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥ ३॥**

अर्थ—कमलके फूलनेसे तालाब कैसा शोभित है जैसे सगुण होनेसे निर्गुण ब्रह्म शोभित होता है॥ २॥ भौंरे गूँजते हैं उनका शब्द अनुपम है, अनेक रूपके सुन्दर पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'फूले कमल……'* इति। (क) यहाँ जल निर्गुण और कमल सगुण ब्रह्म है। जलका गुण कमल प्रकट हुआ अर्थात् जल सगुण हुआ। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म सगुण हुआ। [यहाँ सगुण ब्रह्मकी उपमा कमलसे नहीं है, गुणकी उपमा कमलसे है। सर पहले भी था, और अब भी है। पहिले कमलसे रहित था, अतः उसकी वैसी शोभा नहीं थी, जैसी कि अब कमलसहित होनेसे हो रही है। कमलसहित होनेसे तालाब दूसरा नहीं हो गया। उस तालाबमें ही दो अवस्थाएँ हैं, एक कमलसहित और एक कमलरहित, इस भाँति उस ब्रह्मकी भी दो अवस्थाएँ हैं एक सगुण एक निर्गुण। सगुण अवस्थामें भी ब्रह्म तो जैसा-

का-तैसा ही रहता है, कमलोंसे युक्त होनेसे शोभा तथा उपयोगिता बढ़ जाती है। (वि० त्रि०)] (ख) *'फूले कमल'*, यह ईश्वरके आकारकी शोभा कही, आगे गुणकी शोभा कहते हैं, यथा—*'गुंजत मधुकर मुखर अनूपा।'''''* (ग) कमल अनेक और भगवान्‌के अवतार अनेक। (घ) कमल चार रङ्गके (श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण) और सगुणब्रह्म भी चार रङ्गके हैं, यथा—'**शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।**' (भा० १०। ८। १३, गर्गाचार्य वचन) अर्थात् भगवान् श्वेत, लाल, पीत और काला रूप धारण करते हैं, इस समय श्यामताको प्राप्त हैं।

रा० प्र० श०—कमल चार रङ्गका और सगुण ब्रह्म भी चतुर्व्यूह होता है—श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और अनिरुद्ध। ऐसे ही निरक्षर ब्रह्म भी चार ही रूपमें ऋग्, यजुः, साम और अथर्व कहा जाता है। इन्हींके आधारपर चार ही उपवेद, ४ बानी, ४ धाम, ४ मुक्ति, ४ प्रकारके भक्त, ४ अवस्थाएँ, ४ खानि, ४ वर्ण, ४ आश्रम आदि हुए। कमलको सगुण ब्रह्म कहा। इसीसे कवि जब सगुण ब्रह्मके अङ्गोंकी उपमा देते हैं तब कमलहीसे, यथा—नेत्रकमलवत्, करकमल, इत्यादि।

बै०—निर्गुण सगुण होकर शोभित होता है क्योंकि उससे सर्वव्यापकताका बोध होता है जैसे कमल खिलनेसे सरमें जलका बोध होता है।

मा० म०—भाव यह कि जैसे कमलका मूल पृथ्वीपर पङ्कमें रहता है और जबतक जलके भीतर रहता है कोई नहीं जानता; जब जलके ऊपर दलसहित फूलता है तभी शोभता है। वैसे ही जबतक एकरस (साकेत) लोकमें श्रीरामचन्द्र निर्गुणरूपसे निवास करते हैं तबतक नहीं शोभते, ध्यानमें नहीं आते, परंतु जब प्रकट होते हैं तभी सुशोभित होते हैं। तात्पर्य कि साकेतरूपी पृथ्वीपर रामरूपी कमलका मूल है, वहाँसे कल्याणगुणरूपी दल फूलके साथ सुखसमाजरूपी पङ्कके साथ प्रकट होते हैं तब अनेक आनन्द प्रकट होते हैं। पुनः, निर्गुण ब्रह्म श्रीरामचन्द्ररूपी कमल अवधरूपी सरमें परम प्रेमरूपी पङ्कमें कल्याणगुणसहित प्रकटे और संतरूपी भ्रमर अशङ्क होकर मकरन्दरसपान करते हैं।

☞ प्र० सं० में समानार्थक श्लोक, विष्णुपुराणके नामसे '**सरः शोभते राजीवैः कथं विकसितैर्नृप। सत्त्वादिभिरथाच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ॥**' (अर्थात् हे राजन्! खिले हुए कमलोंसे सर कैसा शोभित है जैसे सत्त्वादिगुणोंसे आच्छादित सगुण ब्रह्म शोभित हो), यह दिया था पर यह वि० पु० में नहीं मिला। पं० श्रीकान्तशरणजीने इसे भी उतार दिया है। अतः इसमें भी दिया गया।

टिप्पणी—२ ☞आश्रमधर्मसे भक्ति प्राप्त हुई, यथा—*'जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमीं चारि'*, तब भक्त हरिकी भक्ति करते हैं, यथा—*'सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा॥'* मछलीकी तरह हरिके आश्रय रहते हैं, तब भक्तोंकी भक्तिसे भगवान् अवतार लेते हैं, वही यहाँ कहा। अवतार लेनेपर भक्त उनका गुणगान करते हैं। यह *'गुंजत मधुकर'''''* से सूचित किया। यह भगवान् और भक्तकी परस्पर प्रीति कही। आश्विनके आरम्भमें काँसका फूलना कहा था। कार्तिकके प्रारम्भमें कमलका विकसित होना कहा। यहाँ ज्ञान कहा।

प० प० प्र०—१ निर्गुणब्रह्म तो सभी जीवोंके हृदयमें जलमें आकाशके समान व्याप्त है, पर वही निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी प्रभु सगुण साकाररूप होकर कमलके समान कोमल, प्रसन्न, रूपमकरन्दसंयुक्त मानस सरमें प्रकट होंगे, तब उस सरकी शोभा, प्रसन्नता बढ़ेगी। २—मोह-ममतारूपी मलको धो देनेका कार्य हृदयस्थ निर्गुण ब्रह्म या अन्तर्यामी भी नहीं कर पाते। वह कार्य तो सगुण साकार धनुर्धारी श्रीरामजी ही कर सकते हैं। अतः सगुणरूपको हृदयमें धारण किये बिना कामादिकी बाधा न मिटेगी।

टिप्पणी—३ *'गुंजत मधुकर''''''* इति। (क) कमल फूलनेके बाद भ्रमरका गुञ्जार करना कहा, क्योंकि यह कमलका विशेष स्नेही है। इसके बाद सुन्दर पक्षियोंका बोलना कहते हैं; जलकुक्कुट, कलहंस आदि भी कमलके स्नेही हैं। (ख) भ्रमर और पक्षियोंको दासों और मुनियोंकी वाणीकी उपमा देते हैं; इसीसे इनके गुञ्जार और रवको अनुपम और सुन्दर कहा। (ग) जब कमल फूलते हैं तब पक्षी

बोलते हैं और भ्रमर गूँजते हैं; इसी तरह जब निर्गुण ब्रह्म सगुण होता है तब दास और मुनिजन गुणगान करते हैं। (घ) दासकी उपमा मधुकरकी है, यथा—*'बिकसित कमलावली चले प्रपुंज चंचरीक गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे। जनु बिराग पाइ सकल सोक कूप गृह बिहाइ भृत्य प्रेम मत्त फिरत गुनत गुन तिहारे॥'* (गी० १। ३८) और मुनिकी उपमा पक्षीकी है, यथा—*'बोलत खग निकर मुखर करि प्रतीति सुनहु श्रवन प्रानजीवनधन मेरे तुम बारे। मनहुँ बेद बंदी मुनिबृन्द सूतमागधादि बिरद बदत जय जय जयति कैटभारे॥'* (गीता० १। ३८)* (ङ) निर्गुणमें गुण गाना नहीं बनता अर्थात् नहीं कहा जा सकता। प्रमाण यथा—**'ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः। कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः॥'** इति। (भागवत दशमस्कन्ध) अर्थात् हे ब्रह्मन्! अनिर्देश्य (जिसको कोई दिखा नहीं सकता), गुणरहित और भले और निकम्मेसे परे ऐसे ब्रह्मके विषयमें सगुण वेद साक्षात् कैसे कह सकें? यहाँ ज्ञान और भक्ति है।

दीनजी—बड़े ही मार्मिक ढङ्गसे निर्गुण उपासनापर कटाक्ष किया है। बड़ा ही सुन्दर व्यङ्ग है।

प० प० प्र०—हृदय-सरमें राम-सरोजके प्रकट होनेपर उस दासके लोचनभृङ्ग रूप-मकरन्द पान करने लगते हैं, मकरन्दपानसे मत्त होकर भगवान्‌के गुणगणका गानरूपी गुञ्जार करते रहते हैं। *'कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई। अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई॥'* यह दशा प्राप्त हो जाती है। भक्त रघुपति गुणगान करता है तो ज्ञानी भक्त और साधकरूपी विहग कथा सुनने आते हैं फिर परस्पर अनुकथन करते हैं यही पक्षियोंका कूजना है। यथा—*'सुकृतपुंज मंजुल अलि माला। ज्ञान बिराग बिचार मराला॥' 'सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहग समाना॥' 'औरउ कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥'* इस प्रकार **'मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥'** (गीता १०। ९) (भगवान् कहते हैं कि मनको निरन्तर मुझमें प्रविष्ट किये रहनेवाले तथा मेरे बिना जीवन धारण न कर सकनेवाले मेरे भक्त अपने-अपने अनुभवमें आये हुए मेरे गुणोंको परस्पर समझाते हुए और मेरे दिव्य कर्मोंका वर्णन करते हुए संतुष्ट होते हैं और रमण करते हैं।) इस प्रकार प्रपन्न साधनहीन भक्त सर्वबाधाओंसे विमुक्त होकर *'फिरत सनेह मगन सुख अपने। राम प्रसाद सोच नहिं सपने॥'* ऐसी स्थितिका परिणाम क्या होता है, यह आगे देखिये।

## चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥४॥

अर्थ—रात्रि देखकर चकवेके मनमें उसी तरह दुःख होता है जैसे परायी सम्पत्ति देखकर दुष्टको (दुःख होता है)॥४॥

### रात्रि और सम्पत्तिकी समता

| | |
|---|---|
| रात्रिसे सबको विश्राम और सुख | १ सम्पत्तिसे सबको सुख और विश्राम |
| रात्रि चक्रवाकको दुःखदायी | २ परसम्पत्ति दुर्जनको दुःखदायी |
| रात्रिके नाशसे चक्रवाक सुखी | ३ परसम्पत्तिके नाशसे दुर्जन सुखी |

वि० त्रि०—शरद्‌की रात्रि सबको सुखदायिनी होती है, यथा—*'सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥'* उसके आगमनसे सबको सुख होता है, पर चक्रवाकको नहीं, यथा—*'सरद चंदचंदिनि लगत जिमि चकई अकुलानि।'* उसे चन्द्रिका दाहक हो जाती है, यथा—*'सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे॥'* इसीलिये उसकी उपमा दुर्जनसे दी; यथा— *'खलन हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥'*

---

* इस प्रसङ्गमें बराबर एक चरणमें एक बात कहकर दूसरेमें उसका उदाहरण देते आये, पर इस अर्द्धालीमें वह क्रम भङ्ग हुआ है। बाबा हरीदासजी कहते हैं कि यहाँ मन और मधुकरकी एकता है, यथा—'मुनि मन मधुप बसहि जिन्ह माहीं।' मधुकर मनको मानो उपदेश करता है कि हम ऊपरसे श्याम हैं भीतरसे मुखर अर्थात् मुखसे रकार शब्द कहते हैं। मनमधुकरका उपदेश मानकर सुन्दर 'ख' (हृदयाकाश) में 'ग' अर्थात् गमन और रव अर्थात् मनन करता है। मनके नाना रूप हैं, यथा—'मन महँ तथा खीन नाना तन प्रगटत औसर पाए।' यह मन ईश्वरके नाना अवतारोंमें रमणकर सुखी होता है।—(पर यह बहुत क्लिष्ट कल्पना है।)

**चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही॥ ५॥**

अर्थ—पपीहा रट लगाये है उसको अत्यन्त प्यास है। जैसे शङ्करजीका द्रोही सुख नहीं पाता। अर्थात् जैसे वर्षाके रहते भी चातकको सुख नहीं ऐसे ही सब सुखका साज-समाज रहते हुए भी शङ्करद्रोहीको सुख नहीं, उसको सुख कैसे हो वह तो शङ्कर अर्थात् कल्याण करनेवालेहीका वैरी है॥ ५॥

टिप्पणी १—☞अब हरिकी प्राप्तिका उपाय यहाँसे बताते हैं। शङ्कर, संत, ब्राह्मण और सद्गुरु इन चारोंके बीचमें हरिकी प्राप्ति कहते हैं। अर्थात् *'जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही', 'संतदरस जिमि पातक टरई', 'जिमि द्विजद्रोह किए कुलनासा'*, और *'सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ'* इन चारोंके बीचमें *'देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई'*, यह चौपाई है जिसमें हरिकी प्राप्ति कहते हैं। इस चौपाईको चारोंके बीचमें रखकर जनाया कि इन चारोंकी सेवासे हरि मिलते हैं। यथा—

शिवसेवासे—*'जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत राम धरे देही॥*
*इन्ह सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन्ह समान फल लाधे॥'* (१। ३१०। १-२)

संतसेवासे—*'भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन्ह के चरन।*
*तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन॥'* (वि० २०३)

द्विजसेवासे—*'मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।*
*मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव॥'* (३। ३३)

सद्गुरुसेवासे—*'श्रीहरिगुरुपदकमल भजहु मन तजि अभिमान।*
*जेहि सेवत पाइय हरि सुखनिधान भगवान॥'* (वि० २०३)

☞शङ्कर, सन्त, द्विज, गुरु और हरि इन पाँचोंकी सेवा बिना जीव संसारसमुद्रसे पार नहीं होता। यथा—*'द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये'* (विनय-पद १३६)। इसीसे पाँचोंकी सेवा करनेको कहते हैं।

टिप्पणी—२ इस चौपाईमें विवेक और भक्ति कही।

नोट—१ प० प० प्र० स्वामीका मत है कि यहाँ व्याजस्तुति अलंकार है, क्योंकि गोस्वामीजीने उसे अनन्य एकांगी भक्तिका श्रेष्ठ उदाहरण माना है और कहा है कि उसे केवल प्रेमकी प्यास है। यथा—*'सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेमकी। परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वातिको॥'* (दो० ३०६) *'तुलसीके मत चातकहि केवल प्रेम पिआस।'* (दो० ३०८) अतः यह स्पष्ट है कि गोस्वामीजी उसे शिवद्रोहीकी पंक्तिमें नहीं बिठायेंगे। अर्धालीका भाव यह है कि 'चातककी प्रेमप्यास इतनी अपार है कि उसकी प्रेमतृप्ति कभी होती ही नहीं। उसको कभी ऐसा नहीं लगता कि मेरी प्रीति मेघोंपर है। इसी तरह प्रेमी भक्त सदा प्रेमकी याचना करते ही रहते हैं। जैसे शिवद्रोही सुखकी आशा करता है पर वह उसको मिलता नहीं, वैसे ही चातक प्रेमी होनेपर भी प्रेममें सदा अतृप्त और दीन ही रहता है। वैसे ही दीन दासकी प्रेमप्यास सदा बढ़ती ही रहती है। और श्रीभरतजीने कहा है कि प्रेमतृषा और प्रेमका रटन बढ़नेमें ही भलाई है, 'इस अर्धालीमें प्रेमी भक्तोंका प्रेमतृष्णाके वर्णनकी पराकाष्ठा है।'

मेरी समझमें उदाहरणमें उपमाका एक अङ्ग लिया गया है। गोस्वामीजीने ही 'कमल' को 'खल' की उपमा और श्रीरामजीको 'राहु' कहा है। यथा—*'विश्व सुखद खल कमल तुषारु।'* (१। १६। ५) *'चले जहाँ रावन ससि राहू।'* (३। २८। ६) और अर्धाली तो श्रीरामवाक्य है न कि मानस कविका वाक्य।

**सरदातप निसि ससि अपहरई। संतदरस जिमि पातक टरई॥ ६॥**

अर्थ—शरद्ऋतुकी धूपकी तपनको रातमें चन्द्रमा (का प्रकाश) हर लेता है, जैसे संतदर्शनसे पाप दूर होता है॥ ६॥

☞मिलान कीजिये—**'शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत्। देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्॥'** (भा० १०। २०। ४२) अर्थात् शरद्के सूर्यकिरणोंसे उत्पन्न जीवोंके तापको चन्द्रमाने हर लिया जैसे देहाभिमानत्रितापको ज्ञान हर लेता है और जैसे मुकुन्द भगवान् कृष्णने व्रजवनिताओंका स्ववियोगजनित ताप

हर लिया। चौपाईमें संतदर्शनसे पाप दूर होना कहते हैं। बिना पाप दूर हुए न ज्ञान हो सकता है न तापत्रय मिट सकता है। संत-भगवंतमें अन्तर नहीं; अतः संतकी जगह मुकुन्द भी ठीक जम जाता है।

टिप्पणी—१ *'निसि ससि……'* का भाव कि चन्द्रमा दिनमें भी रहता है पर गर्मी (ताप) रात्रिमें हरता है। संत अपना दर्शन देकर जगत्‌को सुखी करते हैं और हरिदर्शन करके स्वयं सुखी होते हैं।

टिप्पणी—२ ☞यहाँ संत (दर्शन) को शशि-चन्द्रमाका प्रकाश और अगली चौपाइयोंमें हरिको चन्द्रमासम कहकर जनाया कि (१) दोनोंमें अभेद है। यथा *'संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि।'* (वि० ५७) (२) जो सुख भगवान्‌के दर्शनसे संतोंको है वही सुख संतोंके दर्शनसे जगत्-निवासियोंको है। (३) भगवान् संतरूपसे जगत्‌के लोगोंको दर्शन देकर पाप-ताप हरण करते हैं। सांसारिक जीवोंमें पाप होता है, इससे उनका पाप दूर करना कहा और हरिजनमें पाप नहीं होता, इसलिये उनका केवल हरिदर्शन करना कहते हैं, पाप हरण करना नहीं कहते। ३—यहाँ ज्ञान है।

पं० रा० व० श०—*'टरई'* में भाव यह है कि यदि संतोंके आचरणपर चलोगे तो फिर वे पाप न सतावेंगे, नहीं तो फिर पाप लौट आयेंगे; जैसे प्रतिदिन सूर्यके तापके लिये प्रतिनिशि चन्द्रका ताप हरण करना लगा ही रहता है।

प० प० प्र०—भक्तिरूपी राकारजनीकी प्राप्ति बिना पापोंके विनाश हुए नहीं होती। अतः प्रथम संतदर्शनसे त्रितापोंका नाश कहकर तब आगे *'देखि इंदु……हरि पाई'* कहते हैं। श्रीरामजी निश्चय करते हैं कि लक्ष्मणरूपी संतका दर्शन सुग्रीवको होगा तब उसके पापोंका नाश होगा और वह मेरे दर्शनके लिये आवेगा।

**देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥ ७॥**

अर्थ—चकोर समूह चन्द्रमाको उसी तरह निर्निमेष देखते हैं जैसे हरिजन हरिको पाकर उनका निर्निमेष दर्शन करते हैं॥ ७॥

टिप्पणी—१ (क) वर्षामें मेघोंके समूहके कारण चकोर चन्द्रमाको नहीं देख सकते थे, अब शरद्‌में देखते हैं। (ख) *'चितवहिं'* का भाव कि निर्गुण ब्रह्म देखते नहीं बनता था, जब सगुण हुआ तब देखते हैं। (ग) *'हरि पाई'* का भाव कि हरिकी प्राप्ति दुर्लभ है, हरि सब काल नहीं मिलते।—विशेष ऊपरकी चौपाईमें देखिये (घ) ☞चन्द्रचकोरके दृष्टान्तसे भक्तोंकी अनन्यता दिखायी। अर्थात् जैसे आकाशमें अगणित तारागण हैं पर चकोर चन्द्रमाको ही देखता है, वैसे ही अनन्यभक्त हरिको छोड़कर दूसरेकी ओर नहीं देखते।

☞(ङ) वर्षाऋतुके वर्णनमें ज्ञानरीतिसे हरिकी प्राप्ति कही थी और यहाँ शरद्‌में उपासनारीतिसे कही। यथा—*'सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिन हरि पाई॥'* अर्थात् जलमें जल मिल गया और जीवमें हरि (हरिमें जीव?) मिल गया। और *'चितवहिं हरिजन पाई'* यह उपासना है कि भक्त भगवान्‌को पाकर उनका दर्शन करते हैं।—[नोट मिलान कीजिये—*'मुनिसमूह महँ बैठे सनमुख सबकी ओर। सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर॥'* (अ० १२)]

करु०—शरद् इन्दु (पूर्णिमाका) एक है और चकोरसमुदाय उसे देखते हैं। जैसे हरिजन अनेक हैं वे हरिको पाकर बाह्यान्तर नेत्रोंसे अहर्निशि मूर्तिमान् सिंहासनपर विराजमान और चराचरमें व्याप्त अन्तर्यामीरूप एक हरिको देखते हैं।

प० प० प्र०—चकोरका चन्द्रपर सहज प्रेम रहता है पर आकाशके मेघाच्छन्न होनेसे वह दर्शन नहीं कर सकता। वैसे ही प्रपन्न दीन दासोंके हृदयाकाशमें मद-मोहादिका आवरण है। मेघोंके हटानेका कार्य तो पवनका है। सद्‌गुरुमुखके वचनरूपी पवनसे जब मद-मोह-पटल हटेगा तब वह संतदर्शनसे निष्पाप होकर सगुण साक्षात्कार कर सकता है। इसी तरह प्रथम शिवावतार पवनसुत प्रथम सुग्रीवको निर्मोह करेंगे, तब लक्ष्मण संतका दर्शन होगा और तब रामदर्शन होगा। अतः दोहेमें सद्‌गुरुका ही उल्लेख करते हैं।

**मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा॥ ८॥**

शब्दार्थ—**दंस**=डाँस, बड़े मच्छड़ जो प्रायः वन-प्रदेशमें होते हैं।=एक प्रकारकी बड़ी मक्खी जो जोरसे काटती और बहुत दुःख देती है। इसके डंक बहुत विषैले होते हैं। बगदर, वनमक्षिका।

अर्थ—मच्छड़ और डाँस हिमके डरसे उसी तरह नष्ट हो गये, जैसे ब्राह्मणसे वैर करनेसे कुलका नाश हो जाता है॥ ८॥

नोट—१ मशक छोटे और दंश बड़े दोनों प्रकारके मच्छड़ोंको कहकर जनाया कि ब्रह्मद्रोहीके कुलके छोटे-बड़े जितने हैं सभी नाशको प्राप्त होते हैं। मिलान कीजिये—'*दहइ कोटि कुल भूसुररोषू।*' (२। १२६। ४)। '*बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें।*' यहाँ विवेक कहा।

प० प० प्र०—हरिप्राप्तिके अनन्तर इस अर्धालीको रखनेमें भाव यह है कि हरिप्राप्ति होनेपर यदि कोई द्विजद्रोह करेगा तो उसके कुलका विनाश होगा।

**दो०—भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।**
**सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥ १७॥**

अर्थ—पृथ्वीमें जो जीव व्याप्त थे वे शरद्ऋतुको पाकर उसी प्रकार नष्ट हो गये जैसे सद्गुरुके मिलनेसे संशय और भ्रमके समूह नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥

टिप्पणी—१ '*भूमि जीव*' का भाव कि यहाँतक जलचर और नभचरका वर्णन हुआ, अब थलचरका हाल कहते हैं। यथा—'*सुखी मीन जे नीर अगाधा*' (यह जलचर है), '*गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खगरव नाना रूपा॥*' से '*मसक दंस बीते*……' तक (नभचर कहे) और यहाँ '*भूमि जीव*' (थलचर कहे)।

टिप्पणी—२ सुसंगका मिलना शरद्ऋतुके वर्णनका उपक्रम अर्थात् प्रारम्भ है। यथा—*बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।*' और, सद्गुरुका मिलना इस प्रसङ्गका उपसंहार है अर्थात् समाप्ति है। ☞यहाँ विवेक है।

**( वर्षा और शरद्का मिलान )**

| वर्षा | शरद् |
|---|---|
| *गत ग्रीषम बरषा रितु आई* | १ *बरषा बिगत सरद रितु आई* |
| *बरषाकाल मेघ नभ छाए* | २ *बिनु घन निर्मल सोह अकासा* |
| *भूमि परत भा ढाबर पानी* | ३ *सरिता सर निर्मल जल सोहा* |
| *छुद्र नदी भरि चली तोराई*<br>*समिटि समिटि जल भरहिं तलावा* } | ४ *रस रस सूख सरित सर पानी* |
| *महा बृष्टि चलि फूटि किआरी* | ५ *कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी* |
| *हरित भूमि तृन संकुल समुझि परै नहिं पंथ* | ६ *उदित अगस्ति पंथ जल सोषा* |
| *बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा* | ७ *भूमि जीव संकुल रहे गए सरदरितु पाइ* |
| *देखियत चक्रवाक खग नाहीं* | ८ *चक्रवाक मन दुख निसि पेखी* |
| *जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना* | ९ *चले हरषि तजि नगर नृप तापस*…… |

टिप्पणी—३ ☞वर्षा और शरद्के वर्णनमें श्रीरामजीने बहुत-से पदार्थ कहे हैं। अर्थात् १-वर्णाश्रमधर्म, २-संत और खलके लक्षण, ३-कर्म, ज्ञान और उपासनाकी विधि, ४-पञ्चतत्त्वोंके कार्य, ५-बुध और अबुधके लक्षण, ६-माया-जीव ब्रह्मके लक्षण, और ७-कर्म, ज्ञान, उपासना तीनोंके फल कहे हैं जो नीचे क्रमसे दिखाये जाते हैं—

**१ वर्णाश्रमधर्म**

ब्राह्मणधर्म, यथा—*वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।*

क्षत्रियधर्म, यथा—*प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।*

वैश्यधर्म, यथा—*उपकारी कै संपति जैसी।*

शूद्रधर्म,—'शूद्रस्तु द्विजसेवया'—*जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा।*

नारीधर्म, यथा—*जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारीं।*

ब्रह्मचारी—यथा—*सदगुरु मिले जाहिं जिमि संयम भ्रम समुदाइ।*

गृहस्थ—यथा—*गृही बिरतिरत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि।*

वानप्रस्थ, यथा—*साधक मन जस मिले बिबेका।*

संन्यासी, यथा—*जिमि इंद्रियगन उपजे ग्याना।*

| २ (क) संतलक्षण | (ख) खललक्षण |
|---|---|
| संत—'*खल के बचन संत सह जैसे*'—(१)। | '*जिमि हरिजन हिय उपज न कामा*'—(२)। |
| *संतहृदय जस गत मद मोहा*'—(३)। | '*हरिजन इव परिहरि सब आसा*'—(४)। |
| खल—'*खल कै प्रीति जथा थिरु नाहीं*'—(१)। | '*जस थोरेउ धन खल इतराई*'—(२)। |
| और '*जिमि दुर्जन परसंपति देखी*'—(३)। | |

३—कर्म, ज्ञान और उपासनाकी विधि

(१) क्रोधरहित कर्म करे, यथा—'*करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी*'

(२) साधनसहित विवेक प्राप्त करे, यथा—'*साधक मन जस मिले बिबेका*'

(३) कामरहित भक्ति करे, यथा—'*जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।*'

४—पाँचों तत्त्वोंके कार्य

पृथ्वीतत्त्वका कार्य, यथा—'*ससि संपन्न सोह महि कैसी*'

जलतत्त्वका कार्य, यथा—'*महाबृष्टि चलि फूटि किआरी*'

अग्नितत्त्वका कार्य प्रकाश है, यथा—'*कबहुँक प्रगट पतंग*'—

वायुतत्त्वका कार्य, यथा—'*प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं*'

आकाशतत्त्वका कार्य, यथा—'*बिनु घन निर्मल सोह अकासा*'

५—बुध और अबुधके लक्षण

बुध—(१)'*बर्षहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए॥*'

(२)'*कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥*'

अबुध— '*जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥*'

६—माया, जीव और ब्रह्मके लक्षण और स्वरूप

माया—'*भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी॥*'

जीव—'*सरिताजल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥*'

अर्थात् जीवके स्वरूपपर आवरण करना मायाका लक्षण है, हरिसे अलग होना और हरिमें मिलना यह जीवधर्म है।

ब्रह्म—'*फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥*'

७—कर्म, ज्ञान और उपासनाके फल

कर्मका फल— } '*चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न संकर द्रोही॥*'
दुःख-सुख— } '*मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किए कुलनासा॥*'

ज्ञानका फल—'*सरिताजल जलनिधि महुँ जाई। होई अचल जिमि जिव हरि पाई॥*'

उपासनाका फल—'*देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥*'

टिप्पणी—☞४ श्रीरामजीने वर्षा और शरद्‌के सब अङ्ग लक्ष्मणजीको दिखाये; पर इन्द्रधनुष नहीं दिखाया। कारण यह है कि इन्द्रधनुषके दिखानेका धर्मशास्त्रमें निषेध किया गया है। यथा—'**न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः**' (मनुस्मृति) अर्थात् पण्डितलोगोंको उचित है कि आकाशमें इन्द्रधनुष देखकर किसी औरको न दिखावें।

प० प० प्र०—हरिप्राप्तिका वर्णन करके पश्चात् सद्‌गुरुका वर्णन करना ऊपर-ऊपर देखनेसे विचित्र-सा लगता है; पर भाव यह है कि हरिप्राप्ति होनेपर भी संशय, भ्रम, मोह, पीछा नहीं छोड़ते। हरिप्राप्ति आदिके अहंकारसे अथवा कुसङ्गसे लोग मोहग्रस्त हो जाते हैं जैसे नारदजी, गरुड़जी और भुशुण्डीजी इत्यादिको हो गया था। उसका निराश गुरुकृपासे ही होगा।

☞ '*बरषा बिगत सरद रितु आई*' से यहाँतक शरद्वर्णन है।

मयूख—राजा इत्यादिका नगरसे विजयादशमीके दिन कूच करना जानो। यथा—'*चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।*' और पूर्णिमाके नीचे हिम कहा है, यथा—'*देखि इंदु चकोर समुदाई।*' यह पूर्णिमा जानो और तदनन्तर '*मसक दंस बीते हिमत्रासा*' यह कार्तिक समझो। १५ और १३ इन दो दोहोंके अन्तर्गत ज्ञान-विवेक कहा और १७ और १५ दोहोंके अन्तर्गत वैराग्य और भक्तिका नियम कहा है।

नोट—१ एक बात यह भी दृष्टिगोचर योग्य है कि वर्षा-वर्णनमें एक अर्धाली, एक दोहा, ८ अर्धाली फिर दोहा और उसपर १२ अर्धालियाँ तब दो दोहे आये। फिर शरद्-वर्णनमें १० अर्धालियोंपर प्रथम दोहा है। उसके उपरान्त आठ अर्धालियोंपर दोहा है। इस भेदपर भी पाठक विचार करें।—देखिये पहिलेमें वर्षाका आरम्भ है, दूसरे मासमें महावृष्टि है, अतः पहलेसे दूसरे मासमें ड्योढ़ी अर्धालियाँ आयीं।

नोट—२ पं० रा० व० श०—*संसय*=संदेह अर्थात् किसी पदार्थके विषयमें विविध प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होना जिससे यह न समझ पड़े कि उनमेंसे कौन उत्तम या ठीक है। *भ्रम*=कोई पदार्थ है कुछ और हमारी बुद्धिमें कुछ और ही उसका आना। जैसे देहेन्द्रियके धर्मको आत्मामें मान लेना, नावपर बैठे चलें आप और समझें कि जलके तटकी भूमि वृक्षादि चलते हैं। सद्‌गुरुसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे तात्पर्य है। (गुरु कैसा होना चाहिये यह बालकाण्ड मङ्गलाचरण एवं गुरुवन्दनामें विस्तारसे लिखा गया है।)

## 'रामरोष कपित्रास'—प्रकरण

**बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥ १॥**
**एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥ २॥**

अर्थ—वर्षा बीत गयी, निर्मल शरद्‌ऋतु आ गयी। परन्तु हे तात! सीताकी कोई भी खबर न मिली*॥ १॥ एक बार किसी तरह एवं कैसी ही खबर मालूम हो तो कालको भी जीतकर पलभरमें सीताको ले आऊँ†॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) पूर्व कह चुके हैं कि '*वर्षा बिगत सरद रितु आई*' और अब कहते हैं कि '*बरषा गत निर्मल रितु आई*' ये दोनों बातें एक ही हैं, अतएव पुनरुक्तिका समाधान यह है कि प्रथम जो कहा था कि '*शरद ऋतु आई*' वह लक्ष्मणजीको दिखानेके निमित्त कहा था और यहाँ जो कहा है कि 'निर्मल'

* विनोदार्थ—'न तात सुधि पाई न शीतल ही।' (पां०)

† यथा—'यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा। ३। हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः' (अध्यात्म० ५। ३-४) अर्थात् उस साध्वीको मैं कहीं भी जीती हुई जान लूँ तो उसे जबरदस्ती ले आऊँगा, जैसे समुद्रसे अमृत लाया गया था। चौपाईके 'कालहु जीति' के बदले अध्यात्ममें 'हठात्' शब्द है। भाव एक ही है। कालसे कोई लौटा नहीं सकता, अतः उससे लौटा लाना बलात् लौटा लाना है।

ऋतु आयी, यह सीताकी सुध न पानेपर कहा है जैसा दूसरे चरणमें कहा है—*'सुधि न तात सीता कै पाई'* इससे पुनरुक्ति नहीं है।* (ख) *'बरषा गत'* का भाव कि वर्षातक सीताशोधमें अटक (रुकावट) रही अब निर्मल ऋतु आयी, सीताशोधके योग्य समय आ गया तब भी समाचार न मिला। (ग) *'सुधि न तात सीता कै पाई'* अर्थात् न जान पड़ा कि वह जीती है या मर गयी, है तो कहाँ है, किस दशामें है, इत्यादि। यथा—'**मृतामृता वा निश्चेतुं न जानेऽद्यापि भामिनीम्।**' (अध्यात्मरामायण, पञ्चमसर्ग) यहाँ स्मृतिभाव है।

प० प० प्र०—यहाँ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार है। *'बिगत'* (सम्पूर्ण गयी) और *'गत'* (गयी) के भेदपर ध्यान न देनेसे जैसा-तैसा समाधान मानना पड़ता है। इस चरणका अन्वय यह है—'वर्षा गत (और) आयी निर्मल ऋतु (भी) गत।'

अ० दी० च०—*'बरषा गत'* अर्थात् शरत्कालका पूर्वार्धकाल जलवृष्टिका समय बीत गया। *'निर्मल रितु आई'* अर्थात् उसका उत्तरार्ध बीत रहा है।

नोट—१ स्मरण रहे कि यहाँ *'शरद रितु'* न कहकर *'निर्मल रितु'* कहा। निर्मल ऋतुसे जनाया कि अब आकाश नितान्त निर्मल है। मेघका कहीं पता नहीं रह गया *'बरषा बिगत'* में वर्षाऋतु (श्रावण-भादों) की वर्षाकी समाप्ति कही थी और *'बरषा गत'* में जो *'कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी'* होती थी, उसका भी अन्त हो जाना कहा। इस प्रकार यहाँ 'वर्षागत' चतुर्मासा वर्षाका बीतना कहा। यथा—'**पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः। प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिक संज्ञिताः॥**' (वाल्मी० २६। १४) अर्थात् वर्षाका चौमासा आ गया जिसका श्रावण प्रथम मास है। *'निर्मल'* शब्द देकर वाल्मीकीयके '**समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम्। सारसाकुलसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम्॥**' (२९। १) तथा '**फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छुभा॥**' '**निर्मलग्रहनक्षत्रा द्यौः प्रणष्टबलाहकाः। प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः सरितश्च सरांसि च॥**' (३२। १३-१४) इन श्लोकोंका भाव जना दिया गया है। अर्थात् आकाश बादल और बिजलीसे रहित हो गया। सप्तच्छद और तमाल विकसित हो गये। आकाशमें ग्रह और नक्षत्र निर्मल हो गये। दिशाएँ, तालाब और नदियाँ प्रसन्न हो गयीं। प्रकाश फैला हुआ है। इत्यादि।

मा० म०—वर्षा चार महीनेकी होती है। चारोंका बीतना यहाँ जानकर निर्मल ऋतुका आगमन कहा। *'सुधि न ······ पाई'* में भाव यह है कि आशा थी कि मैथिलीजी येन केन प्रकारेण खबर देंगी सो आशा भी गयी।

टिप्पणी—२ (क) *'कैसेहुँ'* अर्थात् मृतक वा जीवित होनेकी। [**कैसेहुँ**=किसी प्रकारसे, अपने पुरुषार्थसे वा किसी मित्र आदिके द्वारा।] (ख)—*'कालहु जीति ····· आनौं'* अर्थात् यदि मर गयी होगी तो कालके यहाँ होगी, क्योंकि जीव मरनेपर कालके यहाँ रहता है, तब मैं कालको जीतकर ले आऊँगा। (ग) सुधि मिलनेमें वर्षाकी अटक रही, पर सुधि मिल जानेपर पलभरकी अटक न होगी। *'निमिष'* अल्पकालवाचक है। (घ) श्रीनंगेपरमहंसजी लिखते हैं कि 'इस चौपाईमें श्रीरामजी लक्ष्मणजीसे अपना बल सूचित करते हैं, जिसमें वे अधीर न होवें और यह न समझें कि सुग्रीव ही जानकीजीको लावेंगे।'

पं०—*'कालहु जीति'* में काल-पदसे लक्षणाद्वारा कालसमान महाबली योधा समझना चाहिये।

पं० रा० व० श०—गोस्वामीजी उपासक हैं, उपासनामें त्रुटि नहीं आने दे सकते। इसीसे उन्होंने अन्य रामायण-कर्ताओंकी तरह मरण शब्दका प्रयोग न करके उसी बातको *'कालहु जीति'* से सूचित कर दिया है।

---

* प्र०—कोई-कोई शंका करते हैं कि 'बरषा बिगत सरद रितु आई' कहकर पूर्व ही वर्षाकी समाप्ति कह चुके हैं। अब यहाँ फिर 'बरषा गत निर्मल रितु आई' क्यों कहा? समाधान यह है कि गोस्वामीजी जब कोई प्रकरण छोड़कर कोई दूसरी कथा लिखते हैं तब फिर वे पूर्वमें कथाका सम्बन्ध मिलाया करते हैं। पहले शरदागमन कहकर शरद्‌का वर्णन करने लगे (नहीं तो वहीं यह बात कहते जो अब कह रहे हैं)। जब उसका वर्णन समाप्त किया तब फिर वहींसे उठाया (क्योंकि अपने कार्यका प्रारम्भ भी शरद्‌में ही करना है)। इसी तरह सुन्दरकाण्डमें 'करै बिचार करौं का भाई' पर प्रसङ्ग छोड़कर रावणका आगमन कहने लगे—'तेहि अवसर रावन तहँ आवा ·····'। इस प्रसङ्गकी पूर्ति 'देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता' पर करके, तब पुनः प्रसङ्ग मिलाया है, यथा— 'कपि करि हृदय बिचार ·····'। ऐसे ही अनेक प्रसङ्ग ग्रन्थमें हैं।

**कतहुँ रहौ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनौं* सोई॥ ३॥**
**सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥ ४॥**

अर्थ—कहीं भी रहे (हो) पर यदि जीती होगी, तो हे तात! यत्न करके उसे ले आऊँगा॥ ३॥ सुग्रीवने भी मेरी सुध भुला दी, (क्योंकि अब) वह राज्य, कोश, नगर और स्त्री पा गया। (अर्थात् राज्यादिमेंसे यदि एक भी बाकी रहता तो सुध न भुलाता। पुनः, मदमस्त करनेके लिये एक ही अलं है और यहाँ तो चार हैं, फिर भला वह क्यों न भूल जाता)॥ ४॥

टिप्पणी—१ कालके वश होना प्रथम कहा और जीवित रहना पीछे। क्योंकि मरनेमें संदेह नहीं है, जीवित रहनेमें संदेह है। इसीसे *'जीवति होई'* में संदिग्ध वचन *'जौं'* दिया। मृत्युमें संदेह इससे नहीं है कि वे सहज ही भीरु-स्वभाव हैं; शूर्पणखासे डर गयी थीं—***'मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये', 'चित्रलिखित कपि देखि डेराती।'*** राक्षसको देखकर उसके भयसे प्राण निकल गये होंगे। अथवा, राक्षसोंने खा लिया होगा, क्योंकि यह निशिचर-स्वभाव है, यथा—***'नर अहार रजनीचर चरहीं।'*** अथवा, हमारे वियोगमें प्राण अवश्य छोड़ दिये होंगे, क्योंकि वनयात्रा-समय यही उन्होंने कहा भी था कि *'राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जानियहि प्रान।'* (वाल्मी० स० १। ५१) से भी इसकी पुष्टि होती है। वहाँ रामचन्द्रजी कहते हैं कि मेरा दृढ़ निश्चय है कि मेरे विरहमें साध्वी सीता रह नहीं सकती, यथा—'**दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम सम्परिवर्तते। नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहं गता॥**'

टिप्पणी—२ ***'कतहुँ रहौ'*** का भाव कि मरनेपर तो ठिकाना है कि कालके यहाँ होगी, पर जीती रहनेपर ठिकाना नहीं कि कहाँ हो; इसलिये कहते हैं कि 'कहीं भी हो', जहाँ होगी वहाँसे जान लेनेपर ले आवेंगे। मरी होगी तो पलभरमें ले आवेंगे क्योंकि तब खोजनेमें विलम्ब न लगेगा और जीवित है तो पता लगानेमें समय लगेगा, इसके लिये यत्न करना होगा, दूत भेजने पड़ेंगे, इत्यादि। [पाँडेजी अर्थ करते हैं कि 'यदि मरी होगी तो मैं कालके यहाँसे निमिषमें ले आऊँगा और अब लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि जो कहीं जीती हो तो तुम उसे यत्न करके ले आना।' पर यह अर्थ ठीक नहीं जान पड़ता। ***'आनौं'*** ऐसा प्रयोग अन्यत्र भी दिखाया जा चुका है। पाँडेजी *'आनो'* पाठ देते हैं। महादेवदत्तजी लिखते हैं कि 'यहाँ दो संकल्प हैं, एक मृतका दूसरा जीवितका।'—(ऐसा ही टिप्पणीमें भी कहा है।) 'हनुमान्‌जी जीवित होनेकी खबर लाये। अतएव प्रभु जीवितवाले संकल्पके अनुकूल कटक बटोरना, सेतु बाँधना, युद्ध करना, यह सब प्रयत्न करके सीताजीको लाये।'

श्रीनंगेपरमहंसजीका मत है कि 'इस चौपाईमें श्रीरामजी अपनी बुद्धिको सूचित करते हैं, क्योंकि जिसमें बुद्धि और बल दोनों होते हैं, वह सब कार्य करनेको समर्थ है।' यथा—***'मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरम तोर मैं पावा॥ रामकाज सब करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।'*** ]

टिप्पणी—३ ***'सुग्रीवहु'*** का भाव कि काल तो हमारे विपरीत है ही कि हमें ऐसी विपत्तिमें डाला। यथा—***'कीन्ह मातु मिस काल कुचाली'*** इति (भरतवाक्य), पर अब सुग्रीवने भी हमारी सुध भुला दी। अतएव हम कालको भी जीतेंगे और कृतघ्न सुग्रीवको भी मारेंगे। ***'पावा राज…'*** कहकर सुग्रीवको कृतघ्न सूचित किया। ***'बिसारी'*** अर्थात् जान-बूझकर भुला दी, सुधि 'बिसर' नहीं गयी।

मा० म०—पहिले कहा है कि कालको भी निमिषमें जीतकर लाऊँगा। पर जानलेनेपर निशिचरवधमें तो बड़ा समय लगा? इस वचनका तात्पर्य यह है कि जब निशिचर युद्धार्थ सम्मुख आते थे तब प्रभु उन्हें एक ही निमिषमें मार डालते थे—(पर रावणसे कई दिन लड़ाई रही? कारण कि वरके अनुसार उससे नरलीला कर रहे थे, और जब मारना निश्चय किया तब तो जरामें ही वध कर डाला।)

☞समानार्थक श्लोक—'**सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति॥ राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः**

---

* आनौ—भा० दा०।

**परिवृतो रहः।'''''॥ पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम्॥'** (अध्यात्म० ५। ७—९) अर्थात् सुग्रीव भी निर्दयी हो गया कि हमारा दुःख नहीं देखता। निष्कण्टक राज्य पाकर एकान्तमें स्त्रियोंमें आसक्त है। दुष्ट और कृतघ्नी सुग्रीवने प्रथम ही उपकार करनेवालेको भुला दिया।

**जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतहुँ मूढ़ कहँ* काली॥५॥**
**जासु कृपा छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहु कोहा॥६॥**

अर्थ—जिस बाणसे मैंने वालीको मारा है, उसी बाणसे मूढ़को कल मारूँगा (वा, मारूँ? मारूँ तो सारी विलासिता मिट्टीमें मिल जाय)॥५॥ (शिवजी कहते हैं) हे उमा! जिसकी कृपासे मद और मोह छूट जाते हैं, उसको क्या स्वप्नमें भी क्रोध हो सकता है? (अर्थात् कदापि नहीं। यह तो नरलीला है, विरहातुरका अभिनय है)॥६॥

## *'हतहुँ मूढ़ कहँ काली' इति*

मा० त० भा०—ये वचन केवल भय दिखलानेके लिये कहे गये हैं; जैसा कि आगे श्रीरामचन्द्रजीके ही वचनसे स्पष्ट है, यथा—*'भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।'* *'मूढ़'* कहनेका भाव कि उसने हमारा कार्य भुला दिया, हमारा उपकार भुला दिया, यथा—*'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥'* और हमारा बल भी भुला दिया। *'जेहि सायक मारा मैं बाली'* उस बाणकी उसको खबर नहीं है।

करु०, मा० म०—प्रभु प्रतिज्ञा करते हैं कि कल मारूँगा। संदर्भ यह कि यदि वह आज ही मेरे समीप आ जाय तो उसके प्राण बच जायँगे; नहीं तो कल अवश्य मारूँगा।

वै०—यह माधुर्यमें राजनीति है। राजा जिसके शत्रुको मारकर राज्य दिलाते हैं यदि वह भी बदकौल हुआ तो उसको भी दण्ड देते हैं, विरोधी होनेपर उसे भी मारते हैं। मित्रताकी हानि हुई। इसका दण्ड उसे अग्नि देता, क्योंकि वह साक्षी है, प्रभुने यह वचन कहकर उसको मित्र-द्रोहके पाप और दण्डसे बचा दिया; नहीं तो अग्निदेव उसे भस्म कर डालते। 'कल मारूँगा' इसीसे कहा कि वह तो आज ही आ जायगा।

पं०—वाली-वधकी प्रतिज्ञा की सो सत्य और वैसी ही प्रतिज्ञा अब की सो असत्य, यह कैसा? इसमें क्या अभिप्राय है? उत्तर—भगवान् भक्तोंके लिये अपनी प्रतिज्ञा अन्यथा कर देते हैं। सुग्रीव भक्त है, अतः आश्चर्य क्या? यही बात भीष्मपितामहजीने भगवान् कृष्णसे कही है। भगवान्ने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ भीष्मकी प्रतिज्ञा रखी। 'आज न आया तो कल मारूँगा और वह आज ही आ गया, इससे प्रतिज्ञा पूर्ण रही', ऐसा अर्थ करनेसे अर्थ तो बनता है पर इससे रघुनाथजीमें कोपका निश्चय होता है और भक्तोंपर प्रभुका दृढ़ कोप करना उचित नहीं। इसी बातकी पुष्टता शङ्करजी करते हैं।

मयूख—कार्तिकके पाँच दिन बीत गये, तब श्रीरामचन्द्रजीने कोपकी ओटसे सुग्रीवपर करुणा की।

शीला—सुग्रीवद्वारा शिक्षाहेतु रामजी यह चरित्र कर रहे हैं—(१) दिखाते हैं कि विषय कैसा प्रबल है कि वही सुग्रीव जो वाली-भयसे अहर्निश, चिन्तित और व्याकुल रहता था, अब वाली-वध होनेपर राज्य, स्त्री आदि पानेपर अपना वचन भूल गया कि *'सब परिहरि करिहौं सेवकाई।'* पास ही रहता है, तो भी तनकी कौन कहे, वचनसे भी सहायता उसने न की। ☞मुझमें और भक्तोंमें बीच डालनेमें विषय ऐसा प्रबल है, अतएव जो मुझे चाहे उसे उचित है कि विषयभोगका त्याग करे। पुनः, (२) प्रभु अपनी भक्तवत्सलताका एवं भक्तोंके अपराधका स्वरूप एकत्र करके सुग्रीवद्वारा दिखाते हैं। सुग्रीवका ऐसा अपराध कि अपना उपकार करनेवालेके कार्यको भूल गया; ऐसा कृतघ्न। उस अपराधके लिये उसे झूठ ही मारनेको और वह भी कल और झूठ ही क्रोध उसपर किया—ऐसा कृपालु कौन

* भा० दा०।

है? पुनः, (३) यहाँ यह भी दिखाया कि भगवान् अपने भक्तकी प्रतिष्ठा अपनेसे अधिक करते हैं। आपने सुग्रीवको मित्र बनाकर अभय दिया। पर परमभक्त लक्ष्मणजीद्वारा उसे अभय दिलानेपर फिर क्रोध आदि दिखावमात्रवाला भी न करेंगे। लक्ष्मणजीने सुग्रीवको आगे अभयदान दिया है, यथा—*'तब सुग्रीव चरन सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥'*

पां०—आशय यह है कि रघुनाथजी मानुषी लीला बरत रहे हैं। अत: उसी आचरणके अनुकूल रघुनाथजीका यह कथन है, इसीसे शङ्करजी कहते हैं कि इस लीला (चरित) को वही जाने जिसने रघुवीरचरणमें प्रीति की।

दीनजी—अर्थ यह है कि—'जिस बाणसे मैंने वालीको मारा है यदि मैं उसी बाणसे इसे भी मारूँ तो लोग कल ही मुझे मूढ़ कहने लगेंगे (कि मित्रता तो की पर तनिक-सी बातपर चिढ़ गये और मित्रताका निर्वाह न कर सके)।' यहाँ पर *'तेहि सर हतउँ मूढ़ कह काली'* को रामजीने उसी भावमें प्रयुक्त किया है जो ऊपर लिखा जा चुका है, पर लक्ष्मणजीने इसका दूसरा अर्थ लगाया कि रामजी प्रतिज्ञा करते हैं कि उसी बाणसे मैं इस मूढ़को कल मारूँगा। यहाँपर श्रीरामजीमें कुछ कोप-सा दर्शाया गया है। पार्वतीजी चकित हो गयीं, उन्होंने पूछा, यह क्या? ईश्वरको कोप कैसा? तब महादेवजी कहते हैं। और आगे कवि कहते हैं कि *'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना।'* इसमें स्पष्ट भाव यही है कि वस्तुत: रामजीमें क्रोध नहीं, लक्ष्मणजीको भ्रम हुआ कि उन्हें क्रोध आ गया है। *'जाना'* शब्द इसीलिये प्रयुक्त हुआ है।

नोट—१ भागवतदासजीका पाठ *'कह काली'* है। इस पाठसे दीनजीका अर्थ खूब बैठ जाता है। यह भाव शेषदत्तजीने दिया है। काशीकी प्रतिमें *'कहु'* पाठ है। उससे लोग एक अर्थ यह भी निकालते हैं कि 'हे काली (शेषावतार)! उससे जाकर कहो कि वालीको जिस बाणसे मारा है उसी बाणसे, अरे मूढ़! तुझे भी मारूँगा। *'काली'* का अर्थ 'कल' भी करते हुए ऐसा अर्थ कर सकते हैं कि उससे तुम जाकर कहो—यह अर्थ और भाव वाल्मीकीयसे पूर्ण सङ्गत है। यथा—**'उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल। मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः॥ न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः। समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः॥ एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया। त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम्॥'** (वाल्मी० ३०। ८०—८२) अर्थात् हे महाबली वीर! सुग्रीवसे जाकर कहो, और मेरे रोषका स्वरूप भी उसे बताओ, कि जिस मार्गसे वाली गया है वह मार्ग बन्द नहीं हो गया है; प्रतिज्ञाका पालन करो, वालीके रास्तेपर मत चलो। मैंने वालीको अकेला ही मारा था, पर तुमको सत्यके त्यागके कारण बन्धुवर्गसहित मारूँगा।—पर प्रधान अर्थ मेरी समझमें वही है जो अर्थमें दिया गया है। क्योंकि यदि ये अर्थ लें तो फिर *'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना',* यह अर्धाली व्यर्थ-सी हो जाती है अथवा कम-से-कम इसकी कुछ विशेषता रह ही नहीं जाती। पाठकोंका जिस अर्थमें मन भरे वे उसीको ग्रहण करें। अध्यात्ममें इसी प्रकारका कथन है जैसा कि मानसमें; भेद केवल इतना है कि उसमें *'काली'* वाली बात नहीं है। यथा—**'नायाति शरदं पश्यन्नपि मार्गयितुं प्रियाम्। पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम्॥ हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम्। वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत्॥ इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत्॥'** (अध्यात्म० ५। ९—११) अर्थात् शरदृतु आ गयी पर वह अबतक प्रियाके शोधमें चला हुआ नहीं दीखता। वह दुष्ट और कृतघ्न है कि पूर्व ही उपकार करनेवाले मुझको उसने भुला दिया। मैं उसे पुर और बान्धवोंसहित मारूँगा, जैसे पूर्व वालीको मारा था। इस प्रकार क्रोधयुक्त राघवको देखकर लक्ष्मणजी बोले।

गौड़जी—यहाँ 'हतहुँ' पूर्ण क्रिया नहीं है। 'हतहुँ=मारूँ। 'मारूँगा' के लिये हतिहौं' लिखते। यहाँ 'अगर मारूँ' या 'क्या मारूँ' यह अर्थ होगा। यहाँ भगवान् शुद्ध मायामनुष्यरूपका अभिनय कर रहे हैं। विरहसे पीड़ित मनुष्य जो कहता है, वही कह रहे हैं। वस्तुत: सुग्रीवकी रक्षा करके उसे राजा कर देना किसी स्वार्थभावसे तो था नहीं। स्वार्थ साधना होता तो वालीसे मित्रता करनेमें अधिक सौकर्य्य था। सुग्रीव आर्त्त और अर्थार्थी भक्त था। उसकी रक्षा ही वास्तविक बात थी। परन्तु यहाँ विरहातुरका अभिनय हो

रहा है। 'सुग्रीवका मतलब तो निकल गया न! देश, कोश, राज, रानी, सब कुछ पाकर अब मजेसे ऐश कर रहा है और मेरे कामको स्वार्थीने भुला दिया। जिस बाणसे वालीको मारा था उसीसे मूढ़को कल ही खतम कर दूँ तो सारी ऐशोइशरत खाकमें मिल जाय।' यह विरहातुरका वाक्य है। यह राम-सत्य-संकल्प-प्रभुका संकल्प नहीं है। रोषमात्र है। सो भी अभिनय है। माया है। इस मायाको लक्ष्मणजी क्या जानें? *'लछिमनहू यह मरम न जाना।'* यह विरहातुरका रोष भी तो उसी मायाके सिलसिलेमें है।

श्रीनंगे परमहंसजी—श्रीरामजीने सुग्रीवको मारनेके लिये सत्यसङ्कल्प नहीं किया था। बाह्य सङ्कल्प था; क्योंकि जब लक्ष्मणजी सुग्रीवका वध करनेके लिये तैयार हुए तो श्रीरामजीने उनसे यही कहा कि सुग्रीवको भय दिखाकर ले आओ। जैसे धनुषपर बाण चढ़ाकर समुद्रको सोखनेको कहा और नहीं सुखाया, यह सत्य-संकल्प नहीं कहलाता। सुग्रीव विषयसुखमें ऐसे आसक्त थे कि ज्ञान सिखानेसे नहीं निकलते और सुग्रीवका निकलना जरूरी था; क्योंकि नारदजीका वचन भगवान्‌को सत्य करना है कि *'करिहैं कीस सहाय तुम्हारी'* इसलिये सुग्रीवको साथ लेना है। अतः भय दिखाकर सुग्रीव निकाले गये; न तो सुग्रीवपर नाराजी थी, न क्रोध था, केवल लीला थी।

टिप्पणी—१ (क) *'जासु कृपा छूटहिं मद मोहा।'* यथा—*'क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहि सकल रामकी दाया॥'* (३। ३९। ३) यहाँ मद और मोह दोका ही छूटना कहा, क्योंकि ये दोनों क्रोधके मूल हैं। अतएव जब मूलका ही रामकृपासे नाश हो जाता है तब उनको स्वयं क्रोध जो मूल मद-मोहका कार्यमात्र है कैसे होगा? (ख) उमाको सन्देह हुआ कि ईश्वरको क्रोध कैसे हुआ, इसीसे महादेवजीने समाधान किया और *'उमा'* सम्बोधन दिया गया। (ग) ईश्वरको स्वप्न नहीं होता। स्वप्न अज्ञानता है। जो यहाँ स्वप्न कहा वह माधुर्य-लीलाके अनुकूल कहा है—[नोट—यहाँ यह ध्वनि है कि भगवान् नरलीलामें क्रोधका नाट्य कर रहे हैं। स्वप्नमें क्रोध न होना मुहावरा है, जिसका भाव यह है कि किसी अवस्थामें भी भगवान्‌को क्रोध नहीं हो सकता। यथा—**'मायया मोहितास्सर्वे जना अज्ञानसंयुताः। कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन्॥ कथां प्रथयितुं लोके सर्वलोकमलापहाम्॥' 'रामायणाभिधा रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः। क्रोधं मोहं च कामं च व्यवहारार्थं सिद्धये॥'** (अध्यात्म० ५। १९-२०, ३१) अर्थात् मायामोहित होकर लोग अज्ञानी हो गये। उनके मोक्षके लिये भगवान्‌ने लोकमें पापनाशिनी रामायण-नामकी कथाके विस्तारके लिये नररूप धारण किया और मनुष्य-व्यवहार निबाहनेके लिये काम, क्रोध और मोहको भी ग्रहण किया।]

वि० त्रि० का मत आगे (१८। ७) में है।

**जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥७॥**
**लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥८॥**

अर्थ—मुनि, ज्ञानी और जिन लोगोंने रघुवीर रामजीके चरणोंमें प्रीति मान ली है वे ही इस चरित्र (रहस्य) को जानते हैं* (कि सबको कृतार्थ करनेके लिये प्रभु यह नर-नाट्य कर रहे हैं, उनमें काम-क्रोध आदि कहाँ?)॥७॥ लक्ष्मणजीने जब प्रभुको क्रोधवन्त जाना तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाणको हाथमें लिया। अर्थात् सुग्रीवको मारनेको तैयार हुए॥८॥

वि० त्रि०—*'जानहिं यह चरित्र……'* इस अर्धालीसे स्पष्ट है कि रघुनाथजीने कहा कि 'उसी बाणसे कल मूढ़को मारूँगा जिससे वालीको मारा था।' श्रीरामजीको प्रतिज्ञाभ्रंशादि दोषसे विनिर्मुक्त करनेके लिये शब्दोंके तोड़ने-मरोड़नेका यत्न पण्डश्रम है। श्रीगोस्वामीजी यहाँ स्पष्ट कह रहे हैं कि इस चरितको ज्ञानी मुनि जानते हैं जो कि अभेददृष्टि रखनेपर भी लोकसंग्रहके लिये क्रोध करते-से, शाप देते हुए देखे जाते

* यथा—'विन्दन्ति मुनयः केचिज्जानन्ति जनकादयः। तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग्जानन्ति नित्यदा॥' (अध्यात्म० ५। २४) अर्थात् इसे कोई मुनि जानते हैं या जनकादि और निर्मल हृदयवाले भक्त अच्छी तरह नित्य प्रत्यक्ष करते रहते हैं।

हैं, पर वस्तुतः उन्हें क्रोधका लेश भी नहीं है। यथा—*'मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।'* वे ज्ञानी भक्त जानते हैं कि सरकारको क्रोधका लेश भी नहीं हो सकता और न ऐसा कहना प्रतिज्ञाकी दृष्टिसे देखा जाता है। दिन-रात डराने-धमकानेके लिये लोग बच्चोंसे ऐसी बातें कहा करते हैं; वे प्रतिज्ञाएँ नहीं हैं।

शंका—भगवान्‌को तो किसीपर क्रोध नहीं होता और विशेषकर भक्तोंपर तो कभी क्रोध नहीं होता। यथा—*'जेहि जन पर ममता अरु छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू॥'* *'जासु कृपा छूटै मद मोहा। ता कहँ उमा कि सपनेहु कोहा॥'* पर यहाँ श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी दोनोंका क्रोध करना देखा जाता है? दोनोंका समन्वय कैसे होगा?

समाधान (वे० भू०)—जिस तरह भगवान्‌का दिव्य विग्रह सदैव एक साथ ही माधुर्यैश्वर्यसे परिपूर्ण रहता है, इसी प्रकार उनके दिव्य गुण भी एक साथ ही सदैव माधुर्यैश्वर्यरससे सम्पन्न रहते हैं और तदनुसार भगवान् बर्तते भी हैं। जो जीव भगवच्छरणशून्य हैं, जिन्हें अपने बलका भरोसा है, उनके साथ भगवान् अपने ईशित्वगुणका प्रदर्शन करते हैं; अर्थात् नीतिशास्त्रका पालन करते हुए *'सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी॥'* उन्हीं लोगोंके लिये कहा है कि *'सब पर मोरि बराबरि दाया।'* जो भगवत्प्रपन्न हैं, उनकी प्रपत्ति स्वीकार करते हुए भगवान् अपने कृपादि माधुर्य गुणोंके पालन करनेका उद्घोष करते हैं—**'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'** *'जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥ तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥'* इत्यादि। सारांश यह कि भगवद्विमुखके लिये नीतिशास्त्र है और प्रपन्नके लिये कृपा आदि गुणोंका अनुवर्तन है। यथा—**'शास्त्रं विमुखविषयं कृत्वा कृपादिकमभिमुख्यविषयं कुर्यात्।'** (श्रीवचनभूषणसूत्र १४ का बरवरभाष्य।)

वाली भगवद्विमुख था, इसीसे उसे श्रीरामजीने अपराधका दण्ड दिया; पर ज्यों ही उसने *'सुनहु राम स्वामी'''''अंतकाल गति तोरि'* वचनोंद्वारा प्रपत्ति स्वीकार की, त्यों ही *'बालिसीस परसा निज पानी'* और अमर करनेको कहा, पर उसके स्वीकार न करनेपर *'राम बालि निज धाम पठावा।'* सुग्रीव और विभीषण तो पूर्णरूपेण भगवत्प्रपन्न हैं।

इस तरह प्रपत्तिशास्त्रके रहस्योंको अच्छी तरह अनुशीलनपूर्वक इस प्रसङ्गपर विचार करनेपर भक्तपक्षपालित्व दूषणावह नहीं ठहरता।

स्मरण रहे कि जैसे श्रीरामजी तथा श्रीजानकीजीमें तात्त्विक अभेद है; केवल विग्रहभेद नर-नाट्यार्थ है, उसी तरह श्रीराम चारों भाइयोंमें विग्रहभेद ही है, वह भी केवल लीलार्थ, वास्तवमें तात्त्विक भेद नहीं है। अतएव जैसे श्रीरामजीका सभी कार्य नर-नाट्यार्थ है, वैसे ही श्रीलक्ष्मणजीका भी है। इसीसे सुग्रीवने श्रीलक्ष्मणजीको नाथ कहा है—*'नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं।'* जैसे श्रीरामजीने सुग्रीवके लिये अपूर्ण क्रियार्थक शब्द कहा—*'तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली'*; वैसे ही लक्ष्मणजीने भी धनुषकी प्रत्यञ्चामात्र चढ़ाई थी, धनुषपर बाणका सन्धान नहीं किया था, क्योंकि बाण अमोघ है और किसीको मारना है नहीं, केवल नकली क्रोधका प्रदर्शनमात्र है। तात्पर्य कि लक्ष्मणजीका यह नाट्य भी लीलाके लिये ही है।

टिप्पणी—१ मुनिसे अधिक ज्ञानी जानते हैं और ज्ञानीसे अधिक उपासक जानते हैं। इसीसे क्रमसे प्रथम मुनिको, फिर ज्ञानीको और अन्तमें उपासकको कहा। [पं० रामकुमारजीका अर्थ अ० रा० के आधारपर जान पड़ता है। साधारणतया इसका अर्थ यह होता है कि 'ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्रीरघुवीर-चरणमें प्रेम किया है वे ही यह चरित्र जानते हैं।' प्र० स्वामीजी लिखते हैं कि जो मुनि दृढ़ ज्ञानी और रघुवीरचरणरत नहीं हैं वे इस रहस्यको नहीं जानते, उनके मनमें तो भ्रम हो जाता है। यथा—*'सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ।'* विशेष *'उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।'* (आ० मं० सो०) में देखिये। भाव यह है कि 'हे उमा! तुम ज्ञानी हो, पर तुममें अभी रामचरणानुराग नहीं है, इसीसे तुमको सुनकर आश्चर्य हुआ, इसका रहस्य हमारे कहनेपर भी तुमको ज्ञात न होगा। अतः शिवजीने रहस्य कहा भी नहीं। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—२ *'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना'* इति। (क) *'क्रोधवंत जाना'* का भाव कि प्रभु क्रुद्ध नहीं हैं, ऊपरसे क्रोध दिखाते हैं; पर लक्ष्मणजीने जाना कि वे क्रुद्ध हैं। इससे यह शंका होती है कि मुनि, ज्ञानी और उपासक जानते हैं कि क्रोध नहीं है और लक्ष्मणजीने जाना कि क्रोधित हैं, तो क्या लक्ष्मणजी ज्ञानी या रामचरणरत नहीं हैं? इसका समाधान यह है कि लक्ष्मणजीमें ये दोनों गुण हैं, यथा—*'बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी॥'* (१। १९८। ३) पर श्रीरामजी उनको यह चरित्र जनाया नहीं चाहते। क्रोधका मूल विरह है और विरहका मूल सीताहरण है, सो सीताहरणका मर्म भी तो उनको नहीं जनाया था। क्योंकि यदि लक्ष्मणजी जान जाते तो रामजीसे विरह आदि लीला न करते बनती।

पां०—रघुवीरचरणका भाव यह कि माधुर्यके उपासक ही जानेंगे और शङ्कर महाराज इसलिये नहीं कहते कि वे ऐश्वर्यके उपासक हैं। वाल्मीकिजीने चरितके विषयमें कहा ही है कि *'तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा॥'* आशय यह कि नरतनमें क्रोध-प्रमादि सब लगते हैं, इससे वैसा ही चरित्र करना आवश्यक हुआ। प्रभुने कहा भी है—*'मैं कछु करब ललित नर लीला।'* उसीका निर्वाह सर्वत्र करते जायेंगे।

**दो०—तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुनासीवँ।**
**भय दिखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीवँ॥ १८॥**

अर्थ—करुणाकी सीमा श्रीरघुनाथजीने तब भाईको समझाया कि 'हे तात! सुग्रीव सखा है, उसे भय दिखाकर ले आओ॥ १८॥ [अर्थात् समझाया कि सखाको मारना अनुचित है। वह अपना ही बनाया हुआ है, अपना बनाया आप ही न बिगाड़ना चाहिये। यथा—*'पालि कै कृपाल ब्याल-बाल को न मारिये औ काटिये न नाथ बिषहू को रूख लाइ कै।'* (क० उ० ६१)]'

टिप्पणी—१ *'अनुजहि समुझावा।'* *'अनुज'* पद देकर जनाया कि, यह भी समझाया कि सुग्रीव हमारे सखा हैं, अतः हमारे समान हैं और तुम्हारे द्वारा मान करनेयोग्य (मान्य) हैं, क्योंकि तुम हमारे छोटे भाई हो।

गौड़जी—भगवान् लक्ष्मणजीकी आतुरताका हाल जानते हैं कि नासमझीसे भरतको ही मार डालनेको तैयार थे। यहाँ भी नासमझीसे उठ खड़े हुए हैं। अतः समझाया।

नोट—१ वाल्मीकीय स० ३१ में लक्ष्मणजीका क्रोध और उनको श्रीरामजीका समझाना दस श्लोकोंमें है। उन्होंने यहाँतक कह डाला कि मैं असत्यवादी सुग्रीवका वध अभी करता हूँ। अङ्गद श्रीसीताजीको ढूँढ़ धनुष-बाणको लिये वेगसे चलते देख श्रीरामजीने समझाया कि—तुम्हारे-ऐसे मनुष्यको ऐसा पाप न करना चाहिये, कोपको विवेकसे वीरपुरुषोत्तम लोग शान्त करते हैं। तुम साधुचरित हो, सुग्रीवके प्रति मारनेकी बात तुमको न सोचनी चाहिये। स्मरण तो करो कि तुमने पहले मैत्री की है। काल बीत गया, इसके सम्बन्धमें कोमल वचनोंसे रुखाई दूरकर सुग्रीवसे कहना। यथा—**'नेदमत्र त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण। तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम्॥ सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन्।……'** (७-८)—यह सब भाव *'तात सखा सुग्रीव'* तीन शब्दोंमें ही जना दिया है। और अध्यात्ममें समझाना यह लिखा है कि वह हमारा प्रिय सखा है, उसे मारना नहीं, किंतु उसे भय दिखाना कि वालीकी तरह तुम्हारा भी वध होगा। यथा—**'न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा॥ किन्तु भीषय सुग्रीवं वालिवत्त्वं हनिष्यसे।'**—(सर्ग ५। १३-१४)

शीला—श्रीरामजीको कुपित जान लक्ष्मणजीने धनुष चढ़ाकर हाथमें बाण लिया। भाव यह कि उन्होंने सोचा कि ऐसे कृतघ्नको कल क्यों, आज ही मार डालेंगे और नगर भी जानेकी जरूरत नहीं, यहींसे वध कर देंगे। यह जानकर श्रीरामजीने समझाया कि ऐसा न करो; क्योंकि—(क) हमारे ऐसा करनेसे हमारी सनातन रीतिमें विरोध पड़ेगा। पुनः, (ख) वह सूर्यपुत्र है, सूर्य हमारे पुरुषा हैं। उसके वधसे गोत्रवध-

दोष होगा। पुनः, (ग) रावणवधमें नर-वानर दोनों कारण हैं, ऐसा वर रावणने माँगा है—*'बानर मनुज जाति दुइ बारे।'* सुग्रीव वानरराज है। बिना उसके बुलाये वानर कैसे आयेंगे। पुनः, (घ) हमें सुर-नर-मुनि किसीने सीताका हाल न दिया, सुग्रीवने ही दिया वह विपत्तिका साथी हुआ और सीताजीने भी उसपर कृपा की, इसीसे उसे पटभूषण दिये। सब लोग एवं सीताजी हमें क्या कहेंगी? पुनः, (ङ) हनुमान्‌जीसे सूर्यने गुरुदक्षिणामें सुग्रीवकी रक्षा माँगी और हनुमान्‌जीने वही वचन हमसे लिया। हनुमान्‌जी क्या कहेंगे? हनुमान्‌जीसे आगे सब कार्य लेना है।

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी समझाना इस प्रकार कहते हैं—*'मीत को दोष सहै बिनु मीतको, मीत बिना दुःख कौन मिटावै॥ मीत अनेक उपाय करै, अरु मीत को लाइ सुपंथ लगावै॥ मीत अनीत पै पाँव धरै, तब मीतहि कोपित ह्वै डरपावै। पै कतहूँ कबहूँ विजयानंद मीत की हानि हिए नहिं लावै॥ भोरी होत सुमति कविन्द और मुनिन्दहू की, विषय समीर की चपेटें जब चलतीं। भूलि जाते जोग जज्ञ संजम समाधि, नित्य नूतन अनंग की उमंगें चित चढ़ती॥ कौन हैं कहाँ हैं हम बिसरि सुरति जाते, माते मद सदियाँ निमेष की सी लगतीं। दुखिया दिनोंका आज सुखिया हुआ है ऐसे, विषय विधानमें सुकंठकी क्या गिनती।'*

टिप्पणी—२ *'रघुपति करुनासींव'* का भाव कि सभी रघुवंशी कारुणिक होते हैं और ये तो रघुवंशियोंके स्वामी हैं, अतएव ये करुणागुणमें सबसे श्रेष्ठ हैं। इस विशेषणसे जनाया कि सुग्रीवपर तो श्रीरामजीकी करुणा है, क्रोध नहीं है; इसीसे अनुजको समझाया।

प० प० प्र०—*'रघुपति करुनासींव'* का भाव उत्तरकाण्डके *'अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुनासींव। प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥'* (१८) इस दोहेसे स्पष्ट हो जाता है। भाव कि सुग्रीव सखा है, *'उठाइ उर लाने'* योग्य है, भला उसको मारना कैसा? ऐसा कहते ही *'सजल नयन राजीव'* हो गये।

## 'कपि-त्रास'—प्रकरण

**इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा। रामकाजु सुग्रीव बिसारा॥ १॥**
**निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥ २॥**

अर्थ—यहाँ (किष्किन्धा-नगरमें) पवनसुत हनुमान्‌जीने मनमें विचार किया कि सुग्रीवने रामकार्य भुला दिया॥ १॥ पास जाकर उन्होंने सुग्रीवके चरणोंमें माथा नवाया (प्रणाम किया) और साम, दाम, भेद और दण्ड चारों प्रकारकी नीति कहकर उनको समझाया॥ २॥

नोट—१ *'इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा।'''''* इति। (क) श्रीहनुमान्‌जी गोस्वामीजीके सर्वस्व हैं। इसीसे *'इहाँ'* (इधर) शब्द देकर इस समय कवि अपनी स्थिति उन्हींके साथ सूचित कर रहे हैं। नहीं तो 'उहाँ' शब्द देते। प्र० स्वामीजी तथा वि० त्रि० जी कहते हैं कि जब श्रीरामजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि *'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी'*, उसी समय *'इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा।'* (ख) *'पवन सुत'* का भाव कि पवनदेव भक्त हैं और ये उनके पुत्र हैं। अथवा, पवन प्राणरूपसे सबमें व्याप्त हैं और ये पवनात्मज हैं, अतः इनकी बुद्धिमें विचार उठा। (पं०) पवनसुत होनेसे ये बल-बुद्धि आदिमें उनके समान हैं, यथा—*'पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥'* (३०। ४) अतः स्वतः इनकी बुद्धिमें यह विचार उठा। (ग) *'रामकाजु सुग्रीव बिसारा'* यह विचार सुग्रीवजी और श्रीरामजीके वचनोंके स्मरणसे हुआ। सुग्रीवजीने कहा था कि *'तजहु सोच मन आनहु धीरा'*, *'सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥'* और श्रीरामजीने सुग्रीवसे कहा था कि *'गत ग्रीषम बर्षारितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥ अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू॥'* (१२। ८-९) श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि प्रभुकी यह आज्ञा थी, पर सुग्रीवने 'हृदय धरने' के बदले 'हृदयसे बिसार दिया।'

वि० त्रि०—विजयादशमी बीत जानेपर जबसे शरदृऋतु लगी है, तबसे हनुमान्‌जी सरकारकी भाँति प्रतीक्षा कर रहे हैं कि अब सुग्रीव सीताजीकी खोजके लिये प्रयत्न आरम्भ करते हैं, पर जब विजयादशमीको भी

कुछ न हुआ तो स्वामी और सेवकके हृदयमें एक ही समय यह भाव उदय हुआ कि *'रामकाजु सुग्रीव बिसारा।'* हनुमान्‌जी मन्त्री हैं, और सरकारसे कह चुके हैं कि *'सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥'* अत: सुग्रीवको याद दिलाना और सीताजीकी खोजके लिये सचेष्ट करना इनका कर्तव्य हो पड़ा। अत: एकादशीको सुग्रीवके पास गये। यहींसे आगामी घटनाओंकी तिथियोंका पता चलेगा।

टिप्पणी—१ (क) सुग्रीवने रामकार्य भुला दिया यह विचार मनमें इससे उत्पन्न हुआ कि शरद्‌ऋतु आ गयी और वे सुखभोगमें आसक्त हैं, यदि उनको कामकी सुध होती तो वे हमसे कार्यके लिये अवश्य कहते, पर उन्होंने उसकी चर्चा भी नहीं चलायी। (पंजाबीजी लिखते हैं कि 'राम' का भाव यह है कि जो सबको रमानेवाले हैं उनका काम न भूलना चाहिये था। और 'सुग्रीव' का भाव यह है कि यह सुष्ठु अर्थात् नम्र ग्रीववाला है, इसमें यह भूल उचित न थी।) (ख) सुग्रीव भूल गये, पर ये न भूले; क्योंकि रामकार्यके लिये तो इनका अवतार ही हुआ है, यथा—*'रामकाज लगि तव अवतारा।'*—[पुन:, १—ये तो सदा *'रामकाज करिबेको आतुर'* रहते हैं, इनके हृदयमें धनुषबाण धारण किये सदा ही श्रीरामजी बसते हैं, अत: ये कब भूलनेवाले हैं। दूसरे, इन्होंने सुग्रीवकी रक्षा (वालिवध कराके) श्रीरामजीके द्वारा करायी, इन्होंने मित्रता करायी और वचन दिया था कि आप उसे अभय करें वह श्रीसीताजीकी खबर मँगायेगा। पुन: श्रीरामजी हनुमान्‌जीको परम सम्मान देना चाहते हैं, अत: उरप्रेरक रघुवंश-विभूषणने इनको प्रेरणा की। वाल्मी० २९ में लिखा है कि हनुमान्‌जी विषयको ठीक-ठीक समझनेवाले, कर्तव्य-विषयमें संदेहरहित और समयको खूब जाननेवाले हैं। उन्होंने हितकारी, सत्य और उपकारी, साम, धर्म और नीतिसे युक्त, नम्रता और प्रेमसहित, शास्त्रोंमें विश्वास करनेवालोंके निश्चित वचन जाकर कहे।* पुन:, २—यहाँ हनुमान्‌जीको मन, कर्म और वचन तीनोंसे सुग्रीवका हितैषी दिखाया है।—*'पवन सुत हृदय बिचारा'* यह मन, *'जाइ चरनन्हि सिर नावा'* यह कर्म और *'कहि समुझावा'* यह वचनसे हित हुआ।]

टिप्पणी—२ *'निकट जाइ····'* इति। (क) बात समाजमें कहनेयोग्य नहीं है; अत: पास जाकर कहा जिसमें दूसरा न सुन सके। दूसरेके सुननेसे राजाकी लघुता होती है। (ख) श्रीरामकार्यके लिये सिखावन देना है और राजाके पास जानेपर प्रथम प्रणाम करके तब बोलनेकी रीति है, अत: प्रणाम करके बोले।

टिप्पणी—३ *'चारिहु बिधि······समुझावा'* इति। यथा—(क) श्रीरामजीने आपसे मित्रता वा प्रीति की, यह साम है। (ख) आपको राज्य दिया यह दाम है।—[पंजाबीजी लिखते हैं कि साम-विधि यह है कि ये रघुवंशी महानुभाव हैं, उसपर भी ईश्वर हैं कि जिनकी सेवाकी लालसा समग्र देवता किया करते हैं, सो तुम्हारे घर आये। ऐसे पूज्यकी सेवा कर्तव्य है, जिसमें वे प्रसन्न रहें। दाम यह कि तुम्हें राज्यादि दिलाया, उसका बदला शीघ्र देना उचित है। (पं०) वाल्मी० स० २९ में हनुमान्‌जीका समझाना इस प्रकार है—आपने राज्य और यश पाया······पर मित्रोंका कार्य अभी बाकी है, उसे आप करें। अवसर जाननेवाले मित्रके कार्यमें सदा तत्पर रहते हैं।····अतएव सन्मार्गमें स्थित, चरित्रवान्, आपको मित्रकार्यको भलीभाँति सम्पन्न करना चाहिये। मित्रकार्यमें आदरपूर्वक उद्योग न करनेवालेका उत्साह नष्ट हो जाता है और वह अनर्थ पाता है; समय बीत जानेपर कार्य करना नहीं समझा जाता। समय बीत रहा है। (९ से १५ तक) श्रीरामचन्द्रजी काल जानते हैं, पर बुद्धिमान् हैं, इसीसे उन्होंने समय बीतनेकी बात तुमसे नहीं कही। वे तुम्हारे कुलकी वृद्धिके हेतु हैं, बहुत दिनोंके लिये मित्र हैं, उनका प्रभाव अनुपम है। तुम्हारा काम पहले कर दिया है। आप उद्गनका काम अब कीजिये। जबतक वे कुछ नहीं कहते तबतक यदि हम कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीता न कहा जायगा। पर उनके कहनेपर समय बीता समझा जायगा।····आप शक्तिमान्

* 'निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञ: कालधर्मविशेषवित्॥ प्रसाद्य वाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमै:। वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मज:॥ हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत्। प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम्॥' (वाल्मी० २९। ६—८) अर्थात् वक्तव्य अर्थका निश्चय करके काल और स्वधर्मके मर्मको जाननेवाले, मनोरम तरह-तरहके वाक्योंसे खुश करके, वाक्यवित् हनुमान्‌जी हित, तथ्य, पथ्य, साम, धर्म, अर्थ, नीति, प्रेम और विश्वासभरे वचन बोले।

हैं, पराक्रमी हैं, तब उनको प्रसन्न करनेके लिये वानरोंको शीघ्र आज्ञा क्यों नहीं देते?·····वे आपकी प्रतिज्ञा देख रहे हैं, नहीं तो वे सुरासुर सभीको बाणोंसे अनायास वश कर सकते हैं। उन्होंने वालिवधके विषयमें किञ्चित् भी शंका न करके हम सबका बड़ा उपकार प्रथम ही किया है; अतएव उनका प्रिय आपको सब प्रकारसे करना चाहिये।] (ग) वाली अंगदको श्रीरामचन्द्रजीको सौंप गया है। यदि श्रीरामजी उसे राज्य दे दें तो आप क्या कर सकते हैं? यह भेद है। (घ) जिन्होंने वालीका वध किया, उनके सामने आप क्या चीज हैं? यह दंड है।

टिप्पणी—४ हनुमान्‌जीने रामकार्यमें मन, तन और वचन तीनों लगाये। मनसे स्वामीका हित विचारा, तनसे नम्र हुए और वचनसे हित कहा। यथा—*'पवन सुत हृदय बिचारा', 'चरनन्हि सिरु नावा'* और *'कहि समुझावा।'*

नोट—२ वाल्मी० २९ के विशेष भागमें हनुमान्‌जीका समझाना है। इसमें एवं अध्यात्ममें यह भी कहा है कि वे समस्त सुरासुरको मार सकते हैं, केवल तुम्हारी प्रतिज्ञा देख रहे हैं कि तुम कृतघ्न तो नहीं हो। कृतघ्न होनेपर वे वालीकी तरह तुम्हें भी मार सकते हैं।—**'न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे बालिवद्द्रुतम्'** (अ० रा० ४। ४८)

**सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हर लीन्हेउ ग्याना॥ ३॥**
**अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानरजूहा॥ ४॥**
**कहेहु पाख महुँ आव न जोई। मोरे कर ताकर बध होई॥ ५॥**

**अर्थ**—सुग्रीवने हनुमान्‌जीके वचन सुनकर अत्यन्त भय माना (अर्थात् अभीतक उनको किञ्चित् भय न था, अब बहुत भयभीत हो गये)। (और कहा—) विषयने मेरा ज्ञान हर लिया॥ ३॥ हे पवनपुत्र! अब जहाँ-जहाँ वानरोंके यूथ हैं वहाँ-वहाँ बहुत-से दूतोंको भेजो॥ ४॥ (दूतों एवं वानरयूथोंको यह) कहला दो कि जो कोई एक पक्ष अर्थात् १५ दिनमें न आ जायँगे उनका वध मेरे हाथों होगा॥ ५॥

नोट—१ *'हर लीन्हेउ ग्याना'* से जनाया कि पूर्व ज्ञान था। यहाँ लक्ष्य है सुग्रीवके इन वचनोंपर कि—*'उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला॥ सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥ ये सब रामभगतिके बाधक·······'* इत्यादि, जो दोहा ७ में कहे हैं। बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि जब चेत हुआ तब परम भयभीत हुआ कि उफ ओह! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, विषयने मुझे ऐसा वशमें कर लिया! विषयने ज्ञान हर लिया यही भय हुआ। विषयोंमें मनके लग जानेसे बुद्धिका उसी प्रकार हरण हो जाता है जैसे जलमें नौकाको वायु हर लेती है ऐसा गीतामें भगवान्‌ने कहा है। यथा—**'इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥'** (२। ६७)

नोट—२ *'मारुतसुत'* वा *'पवनसुत'* का प्रयोग वहाँ-वहाँ हुआ है जहाँ-जहाँ कार्य करनेमें शीघ्रता दरशानी होती है। सुन्दरकाण्डमें इसका प्रयोग प्रारम्भमें ही बहुत हुआ है, यथा—*'जात पवनसुत देवन्ह देखा', 'अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा', 'तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ'* इत्यादि। वहाँ इसके भाव लिखे जा चुके हैं। वैसे ही इस सम्बोधनसे सुग्रीवका तात्पर्य है कि तुम शीघ्र काम करनेवाले हो; अत: तुम शीघ्र यह काम करो, शीघ्र शीघ्रगामी वानरोंको बुलाओ, शीघ्रगामी दूतोंको भेजो। यथा—**'शीघ्रं कुरु ममाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम्।'** (अध्यात्म० ४। ५०)

प० प० प्र०—मानसमें जैसे श्रीरामजीके प्रत्येक नामका उपयोग कोई विशिष्ट भाव प्रकट करनेके अभिप्रायसे ही हुआ है, वैसे ही श्रीहनुमान्‌जीके नामोंका प्रयोग भी शब्द-व्युत्पत्तिकी ओर ध्यान रखकर ही किया गया है। जैसे—(१) जहाँ पावन करनेका कार्य सूचित करना होता है वहाँ 'पवनसुत' इत्यादि। (२) बल, सामर्थ्य, बुद्धिबल और अद्भुत कृत्य सूचित करनेके लिये 'हनुमान्'। (३) प्रबल प्रभंजनके समान जहाँ अतिवेग और विनाश आदि सूचित करना होता है वहाँ 'प्रभंजनसुत'। (४) वायुके समान

सामान्य गतिके लिये 'वायुसुत'। (५) 'प्राणोंके समान' भाव दरशानेके लिये *'अनिल सुत।'* (६) मारुत, मरुत् शब्दोंका अर्थ **'म्रियन्ते अनेन वृद्धेन विना वा'** ऐसा है अर्थात् जिसके बढ़ जानेसे अथवा जिसके बिना (लोग) मरते हैं वह। देखिये *'ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥'* (५।३।५) इसकी प्रतीति अगली अर्धालीमें मिलती है कि अवधिके भीतर न आनेवाले मारे जायँगे।

टिप्पणी—१ दूतोंकी संख्याके विषयमें अनेक मत हैं। अध्यात्ममें **'सहस्राणि दशेदानीं'**—(४। ५०), अर्थात् दस हजार और वाल्मी० ३७ में **'प्रेषिताः प्रथमं ये च मयाज्ञाता महाजवाः। त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं संप्रेषय हरीश्वरान्॥'''शतान्यथ सहस्राणि कोट्यश्च मम शासनात्। प्रयान्तु कपिसिंहानां निदेशे मम ये स्थिताः॥'** (१०, १३) अर्थात् प्रथम वेगवान् बहुत-से दूत भेजे गये थे, फिर हनुमान्‌जीसे यह आज्ञा की कि मेरी आज्ञा माननेवाले श्रेष्ठ वानर सैकड़ों-हजारों करोड़ों शीघ्र कार्य होनेके लिये और भी भेजो। इत्यादि। इसीसे सर्वमतरक्षक पूज्य कविने 'समूह' पद देकर सबके मतका निर्वाह कर दिया।

टिप्पणी—२ *'पठवहु जहँ तहँ'* कहकर गोस्वामीजीने स्थानका भी नियम नहीं रखा; क्योंकि इसमें भी अनेक मत हैं। अध्यात्ममें **'सप्तद्वीपगतान् सर्वान् वानरानानयन्तु ते'** (४। ५१) अर्थात् सप्तद्वीपनिवासी सब वानरोंको ले आवें, ऐसा लिखा है। और, वाल्मी० ३७ में महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्याचल इत्यादि अनेक पर्वतोंके नाम गिनाये हैं। यथा—**'महेन्द्रहिमवद्विन्ध्यकैलासशिखरेषु च। मन्दरे पाण्डुशिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः॥ तरुणादित्यवर्णेषु भ्राजमानेषु नित्यशः। पर्वतेषु समुद्रान्ते पश्चिमस्यां तु ये दिशि॥''''तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान्॥''''' ते गतिज्ञा गतिं गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः। आनयन्तु हरीन्सर्वांस्त्वरिताः शासनान्मम॥'** (२, ३, ९, १५) अतः गोस्वामीजीने *'जहँ तहँ'* पद दिया जिसमें सब मतोंका समावेश हो जाय। ['जूह' यूथका अपभ्रंश है]

मा० म०—वानरोंको भेजा रीछोंको नहीं, क्योंकि वानर हलके होते हैं, शीघ्रतासे जायँगे। रीछ भारी होते हैं, उन्हें देर लगेगी।

**तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥६॥**
**भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिरु नाई॥७॥**
**एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥८॥**

अर्थ—(जब सुग्रीवकी आज्ञा पायी) तब हनुमान्‌जीने दूतोंको बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके॥६॥ सबको भय, प्रीति और नीति दिखायी। सब वानर चरणोंमें मस्तक नवाकर चले॥७॥ इसी समय (जब हनुमान्‌जी दूतोंको भेज चुके तत्पश्चात्) लक्ष्मणजी नगरमें आये। उनका क्रोध देखकर वानर जहाँ-तहाँसे दौड़े॥८॥

टिप्पणी—१ *'तब हनुमंत बोलाए'* से सूचित किया कि वे बिना राजाज्ञाके कुछ न कर सकते थे। [*'करि सनमान बहूता'* इति। अर्थात् कहा कि तुम सदाके विश्वासी सेवक और मित्र हो, सदा अवसर पड़नेपर तुम ही काम आये हो। (पं०) अध्यात्ममें दान-मानसे तृप्त करना कहा है। यथा—**'पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूतानतिरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान्।'** (४। २४) अर्थात् पवनके प्रियपुत्र हनुमान्‌जीने दान-मानसे तृप्तकर दूतोंको भेजा ! पुनः सबका नाम आदरसे लेना भी सम्मान है, यथा—*'लै लै नाम सकल सनमाने।'* (२। १९१। ८)। उचित आसन देना, आदरसे कुशल-प्रश्न करना, इत्यादि सब सम्मान है]

टिप्पणी—२ भय, प्रीति और नीति दिखायी। यथा—(क) पक्षभरमें जो न लौटकर आ जायगा उसका वध राजा स्वयं करेंगे,यह भय दिखाया। शीघ्र आनेवालेपर राजा प्रसन्न होंगे, यह प्रीति दिखायी और सेवकका धर्म है 'स्वामि-सेवकाई', यह नीति दिखायी—[पुनः नीति यह भी कि वालीके बाद सुग्रीवका राज्य होनेपर इनका प्रथम कार्य, जो तुमको सौंपा गया, यही है; इससे तुम्हारी परीक्षा भी हो रही है कि तुम विरोधी

पक्ष तो नहीं रखते। बाबा हरिहरप्रसादजी कहते हैं कि भय और प्रीति ये दोनों नीतियाँ दिखायीं—] (ख) सुग्रीवकी आज्ञा भय दिखानेकी है। अतः प्रथम भय दिखाया; प्रीति और नीति अपनी ओरसे दिखायी। [दीनजी—सम्मान करके प्रेम दर्शाया और फिर उन्हें दूतोंकी नीति बतलायी।]

वि० त्रि०—*'एहि अवसर''''''कपि धाए'* इति। एहि अवसरका अर्थ यह नहीं है कि जिस समय हनुमान्‌जी दूत भेज रहे थे उस समय। इसका अर्थ यह है कि हनुमान्‌जीके दूत भेजनेके बाद और दूतोंके वापस आनेके पहिले। यथा—*'एहि बिधि भए सोच बस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥ लीन्ह नीच मारीचहिं संगा। भयउ तुरत सो कपट कुरंगा॥ करि छल मूढ़ हरी बैदेही।'* इसका अर्थ यह नहीं है कि यह सब घटनाएँ उसी समय हुईं जब महादेवजी सोचके वश हो रहे थे, बल्कि इन घटनाओंके बाद जब कि सरकार सीताजीको खोजने चले, महादेवजी सोचवश हो रहे थे। इसी भाँति लछिमनजीका आना दूतोंके भेजनेके चौदह दिन बाद हुआ, क्योंकि आगे चलकर कहेंगे कि *'एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ'* उन लोगोंके आनेकी अवधि सुग्रीवजीने एक पक्ष दिया। वह उसी दिन पूरा हो रहा था। सरकार इस निश्चयके बाद भी कि मेरे कामको सुग्रीवने भुला दिया, कुछ दिन और प्रतीक्षा करते रहे। (आगे दोहा २१ भी देखिये)

टिप्पणी—३ *'क्रोध देखि।'* 'देखि' से जनाया कि लक्ष्मणजी भय-प्रदर्शन करनेके लिये क्रोधकी चेष्टा किये हैं, नेत्र लाल है, त्योरी चढ़ाये हैं, कठोर रोदाका शब्द कर रहे हैं। यथा—**'ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान्।'** (अ० रा० ४। ५। २५) (सम्पूर्ण वानरोंको भयभीत करते हुए धनुषकी प्रत्यञ्चाका भयङ्कर टङ्कार किया।)

नोट—*'जहँ तहँ कपि धाए'* अध्यात्मके **'चक्रुः किलकिलाशब्दं धृतपाषाणपादपाः। तान् दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा॥'** (५। २७) (अर्थात् शहरपनाहके वानर उनको देखकर शिलाएँ और वृक्ष ले-लेकर किलकिला शब्द करने लगे, यह देखकर लक्ष्मणजीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये।), इस श्लोकसे *'धाए'* का भाव लड़नेके लिये दौड़े, यही सिद्ध होता है। कोई महानुभाव ऐसा कहते हैं कि वे सुग्रीवकी रक्षाके लिये मोरचाबंदी करने लगे कि कहीं उनको जाकर मारें नहीं। (वाल्मी० ४। ३१) में लिखा है कि लक्ष्मणजीने देखा कि महाबली वानर हाथोंमें वृक्ष लिये हुए शहरपनाहके बाहर खड़े हैं, इससे उनका क्रोध बढ़ गया। यथा—**'ततस्तैः कपिभिर्व्याप्तां द्रुमहस्तैर्महाबलैः। अपश्यल्लक्ष्मणः क्रुद्धः किष्किन्धां तां दुरासदाम्॥ ततस्ते हरयः सर्वे प्राकारपरिखान्तरात्। निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तु तस्थुराविष्कृतं तदा॥** (२६-२७) **॥ ददर्श वानरान् भीमान् किष्किन्धायां बहिश्चरान्॥'** (१७) अर्थात् हाथमें उखाड़े हुए पेड़ लिये हुए बन्दरोंसे व्याप्त, दुर्गम किष्किन्धाको लक्ष्मणजीने देखा। फिर वे सब वानर परकोटेकी खाईसे बाहर निकल स्पष्टरूपसे खड़े हो गये और उन्होंने वहाँ भयङ्कर-भयङ्कर बन्दरोंको देखा।

## दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार।
## ब्याकुल नगर देखि तब आएउ बालिकुमार॥ १९॥

अर्थ—तब (अर्थात् जब वानरोंको लड़नेकी तैयारी करके दौड़ते किलकिला शब्द करते देखा) लक्ष्मणजी धनुष चढ़ाकर बोले कि (अग्निबाणसे) नगरको जलाकर राख कर दूँगा। नगरवासियोंको व्याकुल देखकर वालिपुत्र अङ्गद उनके पास आये॥ १९॥

नोट—१ (क) *'धनुष चढ़ाइ'* से जनाया कि पूर्व धनुष जो चढ़ाया था, (यथा—*'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥'* वह श्रीरामजीके समझानेपर उतार लिया था। यद्यपि रोदाका उतारना कहा नहीं गया तथापि यहाँ पुनः प्रत्यञ्चाका चढ़ाना बिना प्रथम उतारनेके नहीं हो सकता था। रा० प्र० कार लिखते हैं कि सुग्रीवको केवल भय दिखानेके लिये आये थे, इससे प्रत्यञ्चा उतार दी थी। पर यहाँ देखा कि सब लड़नेके लिये तैयार हैं, यह दुष्टता देख धनुष चढ़ाकर उन्होंने नगरभरको

भस्म कर देनेको कहा। अ० रा० सर्ग ५ में भी ऐसा ही कहा है—**'तान् दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा। निर्मूलान् कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान्॥ ततः शीघ्रं समाप्लुत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम्॥ निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तमः।'** (२७—२९)—अर्थात् उन वानरोंको देखकर लक्ष्मणजीके नेत्र लाल हो गये। वे बलवान् धनुषको चढ़ाकर वानरोंको निर्मूल करनेको तैयार हुए, तब उनका आगमन जानकर मन्त्रिश्रेष्ठ अङ्गदने शीघ्र आकर सब वानरोंको हटा दिया।

नोट—२ *'व्याकुल नगर'* में लक्षित लक्षणा है।

नोट—३ वाल्मीकीयमें श्रीलक्ष्मणजीके क्रोधका अच्छा रूपक यहाँपर है। **'स दीर्घोष्णमहोच्छ्वासः कोपसंरक्तलोचनः। बभूव नरशार्दूलः सधूम इव पावकः॥' 'बाणशल्यस्फुरज्जिह्वः सायकासनभोगवान्। स्वतेजो विषसम्भूतः पञ्चास्य इव पन्नगः॥' 'तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम्।'** (कि० ३१। २९—३१) अर्थात् वे बहुत गर्म और लम्बी साँस लेने लगे। क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं। वे धूमयुक्त अग्निके समान मालूम पड़े। लक्ष्मण बड़े मुँहवाले सर्पके समान मालूम पड़े। बाणका अग्रभाग लपलपाती जीभके समान था और धनुष सर्पके शरीरके समान। श्रीलक्ष्मणजीका तेज ही विषके समान था। कालाग्निके समान ज्वलित, हाथीके समान क्रोधित थे।

टिप्पणी—१ *'जारि करौं पुर छार'* इस कथनसे ज्ञात होता है कि नगरभरके वानर युद्ध करने आये, इसीसे नगरभरको जलानेको कहते हैं। पुनः; ***'कहा'*** पद देकर जनाया कि भयदर्शनके लिये ऐसा मुखसे कहकर डरवा रहे हैं और इस कथनमात्रका प्रभाव भी वैसा ही पड़ा; ये शब्द सुनते ही सारा नगर व्याकुल हो गया। श्रीरामजीका आदेश कि ***'भय देखाइ……'*** यहाँ चरितार्थ किया।

टिप्पणी—२—***'बालिकुमार'*** का भाव कि यह वालीके समान बुद्धिमान् है—जैसे वालीके वचनसे प्रसन्न होकर श्रीरामजीने उसके सिरपर हाथ फेरा था, वैसे ही अङ्गदके वचनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मणजीने इसको अभय बाँह दी अर्थात् निर्भय किया। वाली नगरका रक्षक था, इस समय अङ्गदने भी नगरको लक्ष्मणजीके क्रोधसे बचाया।

पं०—***'बालिकुमार'*** का भाव कि—(क) लक्ष्मणजीको कुपित तो जाना पर यह विचार किया कि मुझे श्रीरामजीको सौपा हुआ शिशु जानकर सबपर कृपा ही करेंगे। अतः आया। वा, (ख) यह सोचा कि यद्यपि क्रोध बहुत है तथापि मेरे पिताने शरणागत होकर मेरी बाँह इनको पकड़ाई है, अतः मेरे जानेसे दया ही करेंगे। वा, (ग) सोचा कि यद्यपि पुरीका स्वामी इस समय सुग्रीव है, फिर भी इसे सुखपूर्वक मेरे पिताने ही बसाया था, इससे इनका दुःख मुझसे कैसे देखा जा सकता है; उनकी रक्षा मेरा कर्तव्य है, अतः आया। पुनः (घ) इस पदसे जनाया कि लक्ष्मणजीका कोप और नगरकी व्याकुलता देख इसका भी अधीर हो जाना सम्भव था, पर यह वालीका पुत्र है, अतः अधीर न हुआ। यह धैर्य, विनय आदि गुणोंमें पिताके समान ही है।

दीनजी—यहाँ पहले अङ्गदका आना राजनीतिसे परिपूर्ण है। पहली बात यह है कि श्रीरामजीने अङ्गदको युवराज बनाया, अतएव अपने किये हुए युवराजपर दया अवश्य करेंगे। दूसरे, इस समय सुग्रीव राजा हैं, अतएव वे स्वयं स्वागतार्थ नहीं जा सकते। राजकुमार लक्ष्मणके स्वागतके लिये युवराजको भेजना ही राजनीतिकी दृष्टिसे उचित और उपयुक्त था।—(पर वह स्वयं आया है, सुग्रीवने नहीं भेजा। यह बात *'आयउ'* और *'व्याकुल देखि'* से स्पष्ट है।)

**चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥ १॥**
**क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना॥ २॥**
**सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥ ३॥**

अर्थ—अङ्गदने लक्ष्मणजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर विनती की (अर्थात् अपराध क्षमा कराया)। तब

श्रीलक्ष्मणजीने उसे अभय बाँह दी। (अर्थात् भयसे बचानेका वचन दिया, उसे अपने क्रोधसे निर्भय कर दिया; कहा कि तुमको कोई भय नहीं, तुम तो अपने ही हो, तुम्हें तो तुम्हारे पिता ही हमें सौंप गये थे, हम वचन देते हैं कि नगर न जलायेंगे )॥ १॥ अपने कानोंसे लक्ष्मणजीको क्रोधवंत सुनकर कपिपति सुग्रीव अत्यन्त भयसे व्याकुल होकर (हनुमान्‌जीसे) बोले—हे हनुमन्त! सुनो। ताराको साथ ले जाकर विनती करके राजकुमारको समझाओ (शान्त करो)॥ २-३॥

नोट—१ *'अभय बाँह देना'* मुहावरा है। पर पंजाबीजी कहते हैं कि 'मुखसे क्यों न कहा ? भुजासे अभय क्यों जनाया ?' और उत्तर देते हैं कि 'वचनसे इसमें विशेषता मानी जाती है। दूसरा भाव यह है कि लक्ष्मणजीने विचारा कि यह सुग्रीवका भेजा हुआ नहीं है, इससे सब कोप अभी निवृत्त करना उचित नहीं। अतः हाथसे उसका आश्वासन किया और मुखका कोप बनाये रखा; क्योंकि अभी सुग्रीवको भय दिखाना है।'

नोट—२ मिलान कीजिये—'**गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दण्डवत्। ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः। उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय॥ ममागतं राघवेण चोदितं रौद्रमूर्तिना। तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत्॥ लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिःस्थितः। तच्छ्रुत्वातीव संत्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः॥ प्रेषयित्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः॥ त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः।**......' (अ० रा० स० ५। २९—३१, ३४-३५) अर्थात् अङ्गदने लक्ष्मणजीके समीप जाकर दण्डवत्-प्रणाम किया, तब प्रियजनकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मणजी उन्हें हृदयसे लगाकर बोले—हे वत्स! जाकर अपने चाचासे कहो कि रघुनाथजीने क्रोधयुक्त होकर लक्ष्मणजीको भेजा है। 'बहुत ठीक' ऐसा कहकर अङ्गदने शीघ्र जाकर सब वृत्तान्त सुग्रीवसे निवेदन किया कि लक्ष्मणजी क्रोधसे लाल आँखें किये पुरद्वारके बाहर खड़े हैं। यह सुनकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए।......हनुमान्‌जीको भेजकर तारासे बोले कि लक्ष्मणके समीप जाकर कोमल वाणीसे उनको समझाओ।

अ० रा० में *'बिनती कीन्ही'* की जोड़के शब्द नहीं हैं। *'अभय बाँह तेहि दीन्ही'* में 'ततोऽङ्गदं **परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः**' का भी भाव आ जाता है। *'सुनि काना'* से '**उवाच वत्स गच्छ त्वं**' से लेकर 'तच्छ्रुत्वा' तकका सब वृत्तान्त सूचित कर दिया गया। *'कपीस अति भय अकुलाना'* ही '**अतीव सन्त्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः**' है। *'सुनु'* का भाव 'प्रेषयित्वा' में आ जाता है। *'हनुमंत'* शब्द दोनोंमें है।

वाल्मी० में लिखा है कि लक्ष्मणका क्रुद्ध होना सुनकर सुग्रीवका मुख सूख गया, भयसे उनका मन व्याकुल हो गया। यथा—'**बुबुधे लक्ष्मणं प्राप्तं मुखं चास्योपशुष्यत।**''**त्राससम्भ्रान्तमानसः।**' (३३। ३०-३१) वे क्रोधका कारण न समझ सके। समझे कि मेरे शत्रुओं, मेरे अपकारियोंने, मेरी त्रुटियाँ देखकर मेरे दोष लक्ष्मणको सुनाये हैं। बिना कारण मित्रका कुपित हो जाना घबराहट पैदा करता है। मित्र बनाना सरल है, उसका निबाहना कठिन है, क्योंकि चित्तका कोई ठिकाना नहीं। थोड़े कारणपर भी वह प्रीति टूट जाती है। इसलिये मैं डर रहा हूँ। (सर्ग ३२ श्लोक ३—८)

टिप्पणी—१ *'सुनि काना'* का भाव कि वानरोंने उनका क्रोध देखा, यथा—*'देखि क्रोध जहँ तहँ कपि धाए'*; पर सुग्रीव महलके भीतर हैं इससे उन्होंने देखा नहीं, वरन् औरोंसे सुना। किससे सुना ? पहले अङ्गदका आगमन और अभयदान कहकर तब उसके आगेके ही चरणमें सुग्रीवका सुनना कहा, ऐसा करके कवि जनाते हैं कि अङ्गदने जाकर सुग्रीवको खबर दी। अध्यात्मरामायणसे यह भाव प्रमाणित होता है। वाल्मी० में भी अङ्गदको ही लक्ष्मणजीने भेजा है। उसने ही समाचार कहा पर सुग्रीव निद्रित था। प्लक्ष और प्रभाव इन मन्त्रियोंने समाचार सुग्रीवसे कहा और यह भी कहा कि लक्ष्मणजीने अङ्गदको तुम्हारे पास भेजा है।

टिप्पणी—२ *'अति भय अकुलाना'* भाव कि हनुमान्‌जीके ही समझानेपर वे परम भयको प्राप्त हुए थे, यथा—*'सुनि सुग्रीव परम भय माना'*; और अब लक्ष्मणजीका क्रोध सुना इससे *'अति भय'* से अकुला उठे। (नोट—२ देखिये) [पं०—अकुलानेका कारण कि रामजी होते तो वे मित्र थे, उन्हें हम समझा भी लेते; पर ये भाईके नातेको मानें या न मानें, इनसे मेरा वश नहीं।]

## * 'संग लै तारा०'*

मा० त० भा०—१ स्त्रीपर महात्मा क्रोध नहीं करते। यथा—'**नहिं स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम्।**' (वाल्मी० ३३। ३६) अर्थात् महात्मा लोग स्त्रीपर कठोरता नहीं करते। वा, २—ताराको बड़ी बुद्धिमान् समझकर भेजा कि वह लक्ष्मणजीको समझाकर प्रसन्न कर देगी।—(पूर्व लिखा जा चुका है कि इसकी प्रशंसा वालीने सुग्रीवसे करते हुए कहा था कि इसकी रायसे चलना।'—११ (१-२) देखिये। और हनुमान्‌जीको बुद्धिविवेक-विज्ञानके निधान समझकर भेजा।

वि० त्रि०—क्रोधके वेगमें लक्ष्मणजीके सामने सुग्रीवजी नहीं जाना चाहते। जब वेग कुछ शान्त हो तो सामने जायँ। सब बातें हनुमान्‌जीके बीचमें तय हुई हैं, अतः समझानेके लिये हनुमान्‌जीका भेजना प्राप्त है, पर कोई अपना अत्यन्त निकट सम्बन्धी भी साथ चाहिये। अङ्गदको भेजते, सो वह सबसे पहिले जा मिले और अपने लिये अभय दान भी प्राप्त कर लिया। अतः अब तो हनुमान्‌जीके साथ या तारा जाय या रुमा जाय। तारापर सरकारकी कृपा है, भक्तिका वरदान भी दे चुके हैं, अतः लक्ष्मणजी ताराका अनादर नहीं कर सकते। अतः ताराके साथ हनुमान्‌जीको भेजा और आदेश दिया कि विनती करके राजकुमार (लक्ष्मण) को समझाओ, तर्क-वितर्कसे नहीं। (यही बात वाल्मी० में उन्होंने तारासे कही है। यथा—'**त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम्। ततः कमलपत्राक्ष द्रक्ष्याम्यहमरिन्दमम्॥**' (३३। ३७) अर्थात् कोमल वचनोंद्वारा तुम्हारे शान्त करा देनेपर और उनके प्रसन्न हो जानेपर, कमलपत्राक्ष लक्ष्मणको मैं देखूँगा।)

दीनजी—ताराको लक्ष्मणजीके पास समझाने भेजना भी रहस्यमय है। क्योंकि रामजीने ताराको राजमहिषी बनाया था। अब यदि लक्ष्मणजी कोप करके नगर जला दें या कुछ और अनिष्ट उत्पात करें तो उन्हें रामजीद्वारा निर्धारित कार्यका खण्डन करना पड़ेगा, जो वे कर नहीं सकते। साथ ही ताराको भेजकर सुग्रीवकी गम्भीर राजनीतिसे अनभिज्ञताका भी कुछ परिचय दिया गया है। (इसपर प्र० स्वामी कहते हैं कि ताराके भेजनेमें सुग्रीवकी नीतिनिपुणता सूचित होती है। देखिये, जब भीष्माचार्यने पृथ्वीको निःपाण्डव करनेकी प्रतिज्ञा की तब भगवान् कृष्ण स्वयं सेवकका रूप धरकर द्रौपदीको उनके दर्शन कराने ले गये थे। तारा स्त्री है और लक्ष्मणजी ब्रह्मचर्यव्रत धारण किये हुए हैं, अतः ये उसपर क्रोध न करेंगे। और भी जो कारण महानुभावोंने ताराको साथ भेजनेके दिये हैं, वे सब सुग्रीवके सुविचार ही सिद्ध करते हैं।)

गौड़जी—हनुमान्‌जीने मैत्री स्थापित करायी और तारा सनाथा की गयी। सुग्रीवके मारे जानेसे दोनों बातें नष्ट हो जायँगी, यह भाव है।

पां०—१ स्त्रीकी विनतीसे दया शीघ्र और अधिक होती है। श्रीकृष्णने नागपत्नीकी विनतीसे नागका वध न किया। २—ताराका रूप देखकर समझ जायँगे कि इसपर सुग्रीव आसक्त होकर भूल गया।

वै०—उसको सौभाग्यवती करके अब सौभाग्यहीना न करेंगे।

पं० प्र०—मुझे उन्मत्त जानकर मुझपर कृपा न करेंगे, यह समझकर इन्हें भेजा। हनुमान्‌जी प्रभुके कृपापात्र हैं।

श्री० मि०—हनुमान्‌जीने चारों प्रकारसे समझाया ही था, उसपर यह सुना कि अङ्गद जाकर मिला है और वे उसको अभय बाँह दे चुके हैं। अतएव घबड़ाकर ताराको साथ ले जानेको कहा; इस विचारसे कि अङ्गदकी माता जानकर क्रोध त्याग देंगे और इसकी विनय सुनकर मुझे उसका पति जानकर मेरा अपराध भी क्षमा करेंगे। (मा० शं०)

टिप्पणी—३ (क) '*करि बिनती समुझाउ*' अर्थात् जब विनयसे शीतल हो जायँ तब समझाना। (ख) '*कुमार*' अर्थात् राजकुमार हैं। इनको नीतिशास्त्रसे समझाना, यों कि नीति यह है कि अपने बनायेको आप ही न बिगाड़े, विचारिये तो कि आपने अपने हाथसे सुग्रीवका तिलक किया है। पुनः, ['*कुमार*' पद देकर जनाया कि इस प्रकार समझाना कि सुग्रीवकी मैत्री रामजीसे है, तुम रामजीके छोटे भाई हो, अतएव तुम्हें सुग्रीवका सम्मान बड़े भाईके तुल्य करना चाहिये। (पं०)]

**तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥ ४॥**
**करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥ ५॥**

अर्थ—तारासहित जाकर हनुमान्‌जीने श्रीलक्ष्मणजीके चरणोंकी वन्दना करके प्रभुका सुयश वर्णन किया॥ ४॥ विनती करके उन्हें महलमें ले आये; तथा चरणोंको धोकर पलंगपर बिठाया॥ ५॥

नोट—१ मिलान कीजिये '**गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत्। एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशंकितम्॥' 'प्रविश्य राजदारादीन्दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च॥**' (अ० रा० ५। ३७-३८) अर्थात् सिर नवाकर भक्तिपूर्वक स्वागत करते हुए बोले—'हे महाभाग! वीरवर! निःशङ्क होकर आइये, यह घर आपहीका है। इसमें पधारकर राजमहिषियोंसे और सुग्रीवजीसे मिलिये। *'संग लै तारा'* और *'तारा सहित'* से हनुमान्‌जीको प्रधान रखा, वाल्मी० में तारा प्रधान है। उसने लक्ष्मणजीसे बहुत कुछ कहकर अन्तमें यह कहा कि सुग्रीव बहुत दिनोंसे विछुड़ी हुई स्त्रीको और मुझको पाकर आसक्त हो गया, उसे क्षमा कीजिये। आइये, मित्रको समझाना चाहिये। आपने मर्यादाकी रक्षा की कि किसीके घरमें जहाँ स्त्रियाँ हों न जाय; पर मित्रके यहाँ जानेमें दोष नहीं और न सद्भावसे देखनेमें दोष है, यथा—'**तदागच्छ महाबाहो चरित्रं रक्षितं त्वया। अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम्॥**'(वाल्मी० ३३। ६१) यह आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी भीतर गये।

टिप्पणी—१ (क) *'जाइ हनुमाना'* इति। लक्ष्मणजी दरवाजेके बाहर हैं और ये भीतर अन्तःपुरमें थे, अतः चलकर लक्ष्मणजीके पास आकर मिले। इसीसे *'जाइ'* कहा। (ख) *'प्रभु सुजस'* यथा—*'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥'*, *'न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।'* (क० ७। ६०) जिसको एक बार अपना लिया फिर उसके दोषपर दृष्टि नहीं डालते। यथा—*'अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरेउ।'* (दो० ४७) इत्यादि। पुनः, यह कि प्रभुके समान कोई दीनहितकारी नहीं है। दीन गृध्र, शबरी और सुग्रीवका उन्होंने कैसा हित किया। इत्यादि।

नोट—२ रामभक्तको प्रसन्न करनेका यह सहज नुसखा है कि उसे भगवद्यश सुनावे। देखिये, विभीषणजीको हनुमान्‌जीने प्रभुका यश सुनाया, कालनेमिने हनुमान्‌जीको रोकनेके लिये प्रभुका यश सुनाया, इत्यादि। कारण यह है कि रामगुणग्राम रामभक्तका जीवनधन है, यथा—*'राम भगत जन जीवन धन से।'* (१। ३२। १२) *'सेवक मन मानस मराल से।'* (१। ३२। १४) *'सेवक सालि पाल जलधर से।'* (१। ३२। १०) और *'संत समाज पयोधि रमा सी।'* (१। ३१। १०) इत्यादि।

नोट—३ *'मंदिर लै आए'* इस कथनसे जनाया कि सुग्रीवकी आज्ञा थी कि उन्हें महलमें ले आना। यथा अध्यात्म—'**सान्त्वयन् कोपितं वीरं शनैरानय मन्दिरम् ( सादरम् )।**'—(५। ३४) अर्थात् सुग्रीवने हनुमान्‌जीसे कहा कि कुपित वीरको शान्त करते हुए धीरे-धीरे मन्दिरमें ले आओ! ('विषयासक्त कृतघ्न सुग्रीवके राजभवनको 'मन्दिर' कहना कहाँतक उचित है जब कि भवानीके देवालयको भी मन्दिर नहीं कहा गया।' यह प्रश्न उठाकर उसका उत्तर प्र० स्वामीजी यह देते हैं कि यहाँ 'मन्दिर' शब्दसे 'श्रीरामजीकी मूर्ति जिनके हृदयमें है ऐसे लक्ष्मण संतका ही ग्रहण करना उचित है। इसी भावनासे हनुमान्‌जीने उनका पाद-प्रक्षालन किया।) जैसे यहाँ चरण-प्रक्षालन करना कहा है, वैसे ही अ० रा० में सुग्रीवका अर्घ्य और पाद्य आदिसे लक्ष्मणजीकी भली प्रकार पूजा करना लिखा है। यथा—'**सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मणं समपूजयत्।**'(५। ५७) मानसमें श्रीहनुमान्‌जीने चरणप्रक्षालन किया है, उसके पश्चात् सुग्रीव आकर मिले हैं। मन्दिरमें ले आनेसे लक्ष्मणजीका अधिक सम्मान हुआ और सेवा बनी कि चरण धोये और पलंगपर बिठाया। स्मरण रहे कि विशेष उदासी वेष और नगरमें न जानेका वर केवल श्रीरामजीके लिये माँगा गया था। इसीसे राज्यतिलक करनेके लिये किष्किन्धा और लङ्कामें श्रीलक्ष्मणजी ही भेजे गये। इसी तरह लक्ष्मणजीके लिये भक्तकी रुचि रखनेके लिये पलंगपर बैठनेमें भी कोई अनौचित्य नहीं है। प्र० स्वामीका मत है कि यहाँ *'पलँग'* से व्रतीका आसन अर्थ करना चाहिये। '**पर्यङ्को मञ्च पल्यङ्क वृषी पर्यस्तिकासु च।**' इति (मेदिनी कोष) व्रतीके आसनको वृषी कहते हैं जिसका पर्याय पलंग है। लक्ष्मणजी व्रती, तपस्वी हैं। तपस्वीको शय्या पलंग आदिपर बैठना मना है।

श्रीनंगे परमहंसजी—'लक्ष्मणजी तो ब्रह्मचर्यमें रहे। पलंगपर कैसे बैठे? समाधान यह है कि 'यदि वे ब्रह्मचर्य व्रतका धारण किये होते तो श्रीरामजी शूर्पणखाको उनके पास न भेजते। यदि कहिये कि शूर्पणखाकी तो हँसी होती थी तो उत्तर यह है कि ब्रह्मचर्य व्रतमें हँसी नहीं होती है। अतः लक्ष्मणजीको पलंगपर बैठना निषेध नहीं हो सकता। फिर सुग्रीव तो राजा थे। राजाओंके यहाँ अनेक पलंग रहते हैं जैसे कि बेंतके, नेवाड़के इत्यादि। अतः लक्ष्मणजीका पलंगपर बैठना निर्दोष है।

**तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥ ६॥**

अर्थ—(जब समझाने, रामयश सुनाने और सेवासे लक्ष्मणजी शान्त हुए) तब सुग्रीवने चरणोंमें मस्तक नवाया। और लक्ष्मणजीने हाथ पकड़कर उनको गलेसे लगाया॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) ***'कपीस'*** का भाव कि ये राजा हैं, नीति जानते हैं, नीतिके अनुकूल ऐसा ही करना चाहिये जैसा इन्होंने किया। इन्होंने क्रमसे लक्ष्मणजीका क्रोध शान्त किया—प्रथम अङ्गद आये और विनती की, फिर हनुमान्‌जी और ताराने आकर चरणोंपर पड़कर विनती की, तब सुग्रीव उनके चरणोंपर पड़े। ***'कंठ लगावा'*** से प्रेम दरसाते हुए सूचित किया कि वस्तुतः मैं तुमपर रुष्ट नहीं हूँ, तुम तो हमारे प्रिय मित्र हो।

पं०—सुग्रीव महलसे बाहर ही मिलने क्यों न गये? कारण कि यदि बाहर प्रजाके सामने कहीं लक्ष्मणजी उनका निरादर कर देते तो प्रजामें उनका मान घट जाता और एकान्तमें निरादर करें वा जो कुछ भी कह डालें तो उचित ही है। बाहरवाले न जान पायँगे, घरकी घरहीमें रहेगी। यह समझकर घरमें और वह भी कोपनिवृत्ति होनेपर मिले।

**नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै छन माहीं॥ ७॥**
**सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा॥ ८॥**

अर्थ—(सुग्रीवने कहा—) हे नाथ! विषयके समान और कोई मद नहीं है, यह मुनियों (मननशीलों) के मनको भी क्षणभरमें मोहित कर लेता है॥ ७॥ श्रीसुग्रीवके नम्र वचन सुनकर लक्ष्मणजीने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार समझाया॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) ***'नाथ'*** सम्बोधनमें भाव कि मैं तो अनाथ था, आप दोनों भाइयोंने वालीको मारकर मुझे सनाथ किया। पर विषयने मुझे फिर अनाथ करना चाहा था, अब आपकी कृपासे मैं पुनः सनाथ हुआ। (ख) ***'विषय सम मद कछु नाहीं।'*** विषय-समान दूसरा मद नहीं है। तात्पर्य कि और मद तो अज्ञानियोंको मोह लेते हैं पर विषयरूपी मद ज्ञानियोंके भी मनको मोहित कर लेता है। विषय मनको मलिन करता है, यथा—***'काई बिषय मुकुर मन लागी'***; इसीसे ***'मन मोह करै'*** कहा।

नोट—१ इस स्थानपर वाल्मी० ३५ में ताराके वचन लक्ष्मणजीसे इसी विषयके बोधक हैं। वही भाव यहाँ सुग्रीवके वचनोंका है। ताराने कहा था कि सुग्रीवने बहुत दुःखके बाद सुख पाया, इससे उन्हें समयका अन्त न जान पड़ा। विश्वामित्र ऐसे महामुनि भी घृताचीपर आसक्त हो गये थे तो उनको दस वर्ष एक दिन प्रतीत हुआ। जब ऐसे महामुनियोंको विषयासक्तिमें कालका ज्ञान न रहा तब साधारण मनुष्य क्या चीज है। यथा—'**सुदुःखशयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम्। प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥ घृताच्यां किल संसक्तो दशवर्षाणि लक्ष्मण। अहो मन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः॥**' (सर्ग ३५। ६-७)

नोट—२ ***'बहु बिधि'*** कि तुम भय न मानो, हमने तुमपर क्रोध नहीं किया, तुम तो श्रीरामजीके सखा हो और तुमपर उनकी कृपा है। अब तुम उनके पास चलो।

नोट—३ ***'सुनत बिनीत बचन'····'बहु बिधि समुझावा'*** इति। इसमें वाल्मी० का एक पूरा सर्ग आ गया। वाल्मी० ३६ में सुग्रीव और लक्ष्मणजीकी बातचीत यों दी हुई है।— 'सुग्रीव लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेवाले नम्र वचन बोले। यह श्री, कीर्ति और सनातन राज्य सभी मैंने रामचन्द्रजीकी कृपासे पुनः पाया। उनका थोड़ा भी बदला चुकानेको कौन समर्थ है? वे तो अपने तेज, बलसे रावणवध कर सीताको पायेंगे। सप्ततालोंके वेधनेवालेको सहायककी आवश्यकता कहाँ? मैं तो दासकी तरह उनके पीछे-पीछे चलूँगा। विश्वासके वा स्नेहके

कारण यदि कुछ अपराध दाससे हुआ तो उसे क्षमा करो; दासोंसे अपराध हुआ ही करते हैं।' वस्तुतः ये '**विनीत वचन**' हैं। इनसे लक्ष्मणजी प्रसन्न भी हुए और यह कहा कि सुग्रीव! मेरे भाई तुमको पाकर सनाथ हुए। उत्तम लक्ष्मीका भोग करनेयोग्य तुममें प्रताप और शुद्ध हृदय है; तुम्हारी सहायतासे रामजी शीघ्र ही सीताको पावेंगे। धर्मज्ञ, कृतज्ञ, रणमें पीठ न देनेवालोंके ऐसे ही वचन होते हैं। आप विक्रम और बलमें रामजीके समान हैं, इसीसे देवताओंने आपको सदाके लिये उनका सहायक बनाया है। अब आप शीघ्र मेरे साथ चलें और सीतावियोगसे दुःखी अपने मित्रको समझावें। शोकसे पीड़ित रामजीके वचनोंको सुनकर जो कठोर वचन मैंने कहे हैं, हे मित्र! आप उन्हें क्षमा करें।

अध्यात्ममें लक्ष्मणजीका वचन है कि मैंने जो कुछ कहा वह प्रेमके कोपसे कहा, उसे क्षमा करो। यथा—'**सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किंचिन्मयोदितम्॥ तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषितं मया॥**' (५। ६०) श्रीरामचन्द्रजी सीता-विरहसे अत्यन्त दुःखी हैं। अतः इसी समय उनके पास चलना चाहिये। (५। ६१)

वि० त्रि० जी समझाना इस प्रकार लिखते हैं—

**'तुम ते मीत पुनीत लहि भे सनाथ रघुनाथ। ऐसइ भव्य स्वभाव को होन चहिय कपिनाथ॥**
**अवसि जीतिहहिं रावनहिं तव प्रताप बल राम। धर्म धुरंधर धीर सम बचन कहेउ अभिराम॥**
**ह्वै समर्थ निज दोष गुनि कौन सकै अस भाखि। कै रघुपति कै कीसपति और न शंकर साखि॥**
**बल बिक्रम में रामके सरिस तुहीं कपिराय। समुझि सुरन्ह दीन्ह्यौ हमहि तुम सन सबल सहाय॥**
**करिय बीर अब बेर नहिं चलिय हमारे साथ। धीरज दै समुझाइये तिय बिरही रघुनाथ॥'**

## पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥ ९॥

अर्थ—हनुमान्‌जीने सब कथा सुनायी जिस प्रकार दूतोंके समूह गये थे अर्थात् चारों दिशाओंमें वानरोंके जानेकी कथा और संख्या कही॥ ९॥

टिप्पणी—१ श्रीहनुमान्‌जीने लक्ष्मणजीको कुपित जानकर यह सब कथा प्रथम नहीं सुनायी थी; अब सुअवसर समझकर सुनायी। सुग्रीवने स्वयं इससे न कहा कि लक्ष्मणजीको विश्वास न होगा; वे समझेंगे कि हमारे भयसे ये बात बनाकर कह रहे हैं, अभी दूत भेजे नहीं गये। इसीसे हनुमान्‌जीसे कहलाया। (पं० प्र०—हनुमान्‌जी वाक्य-विशारद हैं, परम वाग्मी हैं, मन्त्री हैं और इन्होंने दूत भेजे हैं, अतः ये ही ठीक समाचार उसका कह सकते थे।)

पाण्डेजी—यहाँ '*पवनतनय*' इससे कहा कि इनके वचन सुनकर लक्ष्मणजी शीतल हो गये। (प्र० स्वामीका मत है कि कुछ पवित्र कार्यकी कथा सुनायेंगे, अतः पवनतनय कहा। सीताशोधसम्बन्धी कार्य वह पवित्र कार्य है।)

## दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
## रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ॥ २०॥

अर्थ—तब अङ्गद आदि वानरोंको साथ लेकर श्रीरामजीके छोटे भाई श्रीलक्ष्मणजीको आगे करके हर्षित होकर सुग्रीव चले और जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं वहाँ आये॥ २०॥

नोट—१ (क) '**भेरीमृदङ्गैर्बहुऋक्षवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः। नीलाङ्गदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः॥**' (अध्यात्म० ५। ६३), इस श्लोकके भाव '*हरषि*' आदि पदसे जना दिये गये हैं। अर्थ यह है कि 'भेरी' मृदंग, बहुत-से रीछ और वानर, श्वेत छत्र और चमरसे शोभित तथा अङ्गद, नील और हनुमानादि प्रधान वानरोंसे घिरे हुए वे श्रीरामजीके समीप आये। (ख) '*अगंदादि कपि साथ*' इति। अङ्गद राजकुमार एवं युवराज हैं और श्रीरामजीने सुग्रीवसे कहा था कि '*अगंद सहित करहु तुम्ह राजू*', अतएव अङ्गदको सादर साथ लेना योग्य ही था। इसीसे उसको स्पष्ट लिखा। (पं०)

(ग) अ० रा० में हनुमान्जी प्रधान हैं और मानसमें अङ्गद। वाल्मी० में किसीके नाम नहीं आये हैं। (घ) *'रामानुज आगे करि'* इति। रामभक्त लक्ष्मणका पीछा पकड़ा, अतएव उनके बलसे निर्भय चले। रामभक्तका अनुचर होनेसे मनुष्य सबसे अभय हो जाता है। (प्र०)

टिप्पणी—१ रामकार्य प्रारम्भ हुआ, दूत भेज दिये गये; इसीसे सुग्रीव हर्षित होकर चले। लक्ष्मणजी रामानुज हैं, अत: श्रीरामजीके समान समझकर उनको आगे किया, उनके पीछे सुग्रीव हैं और सुग्रीवके पीछे अङ्गद फिर और सब वानर हैं; यह चलनेका प्रकार दिखाया।

**नाइ चरन सिर कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥ १॥**

अर्थ—श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीव बोले—हे नाथ! मेरा कुछ दोष नहीं है॥ १॥

टिप्पणी—१(क) हाथ जोड़ना और प्रणाम करना यह मुद्रा श्रीरामजीको प्रसन्न करनेकी है, यथा—*'भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै। ततकाल तुलसीदास जीवन जन्म को फल पाइहै॥'* (वि० १३५) ☞ क्षमा करानेका भी उपाय यही है; इसीसे अङ्गद, तारा, हनुमान्जी और सुग्रीव चरणोंपर पड़े और विनती की थी, यथा—*'चरन नाइ सिर बिनती कीन्ही'* (अङ्गद), *'चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना।'* (तारा और हनुमान्जी), *'चरन पखारि पलँग बैठाए'* (तारा), *'तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा।'* तथा यहाँ *'नाइ चरन सिर कह कर जोरी।'* (ख) सुग्रीवसे अपराध हुआ, उसे सुग्रीव माया आदिके सिर डालकर आप निरपराध होते हैं—*'मोहि कछु नाहिंन खोरी।'* यह कहकर आगे उनका नाम लेते हैं जिनका दोष है।

नोट—१ मेरा कुछ दोष नहीं। भाव कि आपकी मायाका दोष है। कारण कि माया आपकी है, आपकी प्रेरणासे ही वह सब कुछ करती है। भाव यह है कि आप ही फँसानेवाले हैं, आप ही छुड़ा सकते हैं, यथा—*'तुलसिदास यहि जीव मोहरजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै।'* (वि० १०२) मैंने प्रथम ही प्रार्थना की थी कि *'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिन राती॥'* पर आपने कृपा ही न की; उलटे माया डाल दी। अब कृपा कीजिये कि आगे मोहमें न फँसूँ। —*'काल करम गति अगति जीव कै सब हरि हाथ तुम्हारे। सो कछु करहु हरहु ममता मम फिरउँ न तुम्हहिं बिसारे॥'* (वि० ११२)

**अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥ २॥**
**बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥ ३॥**

अर्थ—हे देव! आपकी माया अत्यन्त प्रबल है। हे श्रीराम! जो आप कृपा करें तो छूटे॥ २॥ हे स्वामी! सुर , नर, मुनि, सभी विषयके वश हैं, (तब) मैं पाकर (=नीच, तुच्छ, निर्बुद्धि) अत्यन्त कामी कपि पशु किस गिनती हूँ?॥ ३॥

नोट—१ *'अतिसय प्रबल'*, यथा—*'सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।'* (७। ६२) *'जाकी माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।'* (वि० ९८) 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा:।' यहाँ 'शुद्धापह्नुति अलंकार है।

नोट—२ *'करहु जो दाया'* अर्थात् आपकी कृपाके सिवा और किसी देवतादिकी कृपासे नहीं छूट सकती और न किसी साधनसे छूटे। साधनसे छूटती तो *'मुनि विज्ञानधाम'* के मनमें क्षोभ न पैदा कर सकती। यथा—*'सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि। छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहौं पद रोपि॥'* (उ० ७१) प्रभुकी कृपासे छूटती है क्योंकि प्रभुकी दासी है, यथा—*'मायापति सेवक सन माया'*, *'माधव असि तुम्हारि यह माया। करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥ सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै। जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव दारुन बिपति सतावै॥ जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै। सपने परबस पर्‌यो जागि देखत केहि जाय निहोरै॥ ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै। तौ कत मृगजलरूप विषय कारन निसिबासर धावै॥ ज्ञान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं। तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं॥'* (विनय० ११६। १—५)

पुनः यथा—'*अस कछु समुझि परत रघुराया। बिनु तव कृपा दयालु दासहित मोह न छूटै माया॥ वाक्यज्ञान अत्यन्त निपुन भवपार न पावै कोई। निसि गृहमध्य दीपकी बातन्ह तम निबृत्त नहिं होई॥ जैसे कोउ एक दीन दुखी अति असनहीन दुख पावै। चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै॥ षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै। बिनु बोले संतोषजनित सुख खाइ सोई पै जानै॥ जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु बिषय आस मन माहीं। तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं॥*' (वि० १२३। १—५)' यहाँ 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है।

टिप्पणी—१ '***बिषयबस्य सुर नर मुनि***' इति। (क) यथा—इन्द्रने अहल्यासे संग किया, मनुष्योंमें आदिपुरुष मनुजी अपने ही लिये कहते हैं कि '***होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन***', और मुनियोंमें देवर्षि नारद और विश्वामित्रजी ही हैं; नारदजीकी कथा मानसमें आ ही चुकी, विश्वामित्रजी घृताची और उर्वशीके जालमें पड़ गये थे। पुनः (ख) सुर-नर-मुनिको कहकर जनाया कि देवता जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न एवं ज्ञानके स्वरूप हैं; मनुष्य जिनका शरीर गुणज्ञानका निधान है और मुनि जो मननशील हैं, जब ये ही सब विषयके वश हैं तब तुच्छ पशु किस गिनतीमें हैं, वानर-जाति अति कामी होती ही है। (वाल्मी० सर्ग ३३ में ऐसा ही ताराने लक्ष्मणजीसे कहा है। यथा—'**महर्षयो धर्मतपोऽभिरामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः। अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा॥**' (५७) अर्थात् धर्म और तपस्यासे शोभित महर्षि जिन्होंने मोहको दूर कर दिया है वे भी कामकी अभिलाषा करने लगते हैं तब कपि जो स्वभावसे ही चञ्चल है वह वानरराज सुखमें कैसे न आसक्त हो जाता? इसमें आश्चर्य ही क्या? मानसमें स्वयं सुग्रीवने यह कहा है।) यहाँ '**सार** अलंकार एवं काव्यार्थापत्ति' है।

टिप्पणी २—सुग्रीवने जैसे लक्ष्मणजीसे निष्कपट बात कही थी वैसे ही श्रीरामजीसे कही; इसीसे दोनों भाई उनपर प्रसन्न हुए; क्योंकि श्रीमुखवचन है कि '***मोहि कपट छल छिद्र न भावा।***'

(श्रीलक्ष्मणजीसे)—'***नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै छन माहीं॥***'

(श्रीरामजीसे)—'***बिषयबस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥***'

टिप्पणी ३—रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—ये पाँच विषय हैं, बाह्येन्द्रियाँ इनके वश होती हैं और अन्तःकरण काम-क्रोध-लोभके वश होता है, यही आगे कहते हैं।

**नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥ ४॥**

**लोभ पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥ ५॥**

अर्थ—स्त्रीका नयन बाण (नेत्र-कटाक्षरूपी बाण) जिसके नहीं लगा, जो भयंकर क्रोधरूपी अँधेरी रातमें जागता रहता है (अर्थात् क्रोधका मौका होनेपर भी सावधान बना रहता है)॥ ४॥ लोभरूपी पाश (फाँसी, फंदा, बंधन) से जिसने अपना गला नहीं बँधाया अर्थात् जो लोभमें नहीं फँसा, हे रघुनाथजी! वह मनुष्य आपहीके समान है॥ ५॥

☞ मिलान कीजिये—'**कान्ताकटाक्षविशिखा न लुलन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः। कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैर्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥**' इति। (भर्तृहरिशतक) अर्थात् स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाण जिसको नहीं बेधते, कोपाग्निका ताप जिसके चित्तको नहीं जलाता, सम्पूर्ण विषय जिसे लोभपाशसे नहीं खींचते, वह धीर पुरुष त्रैलोक्यमें जय पाता है।

पुनः—'**विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनास्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः। शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवास्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत्सागरम्।**' (भर्तृहरि)

अर्थात् विश्वामित्र-पराशरादि बड़े-बड़े ऋषि जो वायु, जल और पत्ते खा-पीके रह जाते थे वे भी स्त्रीके मुख कमलको देखकर मोहित हो गये तब जो लोग अन्न, दूध, घी आदि उत्तम व्यञ्जन भोजन करते हैं, उनकी इन्द्रियाँ यदि वशमें हो जायँ तो समुद्रपर विन्ध्याचलके तैरनेमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् वे इन्द्रियोंको कठिनाईसे वशमें कर सकते हैं।

पुनः—'*को न क्रोध निरदह्यो काम बस केहि नहि कीन्हों। को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन कर दीन्हों॥ कवन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारिनयनसर। लोचनजुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कवन नर॥ सुर नागलोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हों जय न। कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन॥*' (क० ७। ११७) '*भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि बिलोकनि बान ते बाचे। कोप-कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥ लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे। नीकै हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥*' (१८)

टिप्पणी—१ (क) नारिनयनका बाणसे रूपक बाँधा; क्योंकि स्त्रीके नेत्रोंके कटाक्ष बाणकी तरह हृदयको बेधते हैं। कामदेव भौंहरूपी कमान चढ़ाकर नेत्ररूपी बाणसे लोगोंको मारता है। (पं०—बाण शरीरको बेधते हैं, नारिनयनसर हृदयको बेधते हैं। विशिखपर भी विष चढ़ता है और यहाँ अञ्जन विष है।) सुग्रीव कामके वश हुए, इसीसे उन्होंने प्रथम 'नारिनयनसर' कहकर कामकी प्रबलता कही। (ख) क्रोधको अँधेरी रात्रि कहा, क्योंकि दोनोंमें कुछ नहीं सूझता। क्रोधके आवेशमें लोग अनुचित कर्म कर बैठते हैं, यथा—'*लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल। जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं विश्व प्रतिकूल॥*'(१। २७७)

टिप्पणी—२ '*लोभ पास*......' इति। (क) लोभ नट है, आशा पाश है, यथा—'*लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि।*' (विनय० ११८) पुनः यथा—'*लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे।*' (क० ७। ११८) (ख) '*गर न बँधाया*' का भाव कि वानर अपना गला आप ही बँधाता है। वैसे ही जीव आशामें आप ही बँधता है। (ग) यहाँ काम, क्रोध और लोभ तीनको कहा, क्योंकि ये तीन अत्यन्त प्रबल हैं, यथा—'*तात तीन अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥*' (३। ३८)

## *सो नर तुम्ह समान रघुराया*

पां०—यह बात सुग्रीवकी व्यङ्गभरी सख्यभावसे समझ पड़ती है, क्योंकि रघुनाथजीने जानकीजीके विरहसे विकल हो उनकी प्राप्तिके लिये क्रोधकर लक्ष्मणजीको उनके पास भेजा, उससे ये तीनों बातें पायी जाती हैं। और लक्ष्मणजी उसे बाँह देकर लाये सो उनकी स्तुति इसी बातसे प्रकट होती है; क्योंकि वे तीनों बाधाओंसे रहित हैं। आगे रघुनाथजीके हँसनेसे भी व्यङ्गभाव सिद्ध होता है। सखाका व्यङ्गपूर्ण वचन था, इसीसे प्रभु हँस दिये। यथा—'*तब बोले रघुपति मुसुकाई।*'

प्र०—'*सो नर*' अर्थात् वह पराक्रमी है, अबला वा नपुंसक नहीं है।

दीनजी—भाव यह कि ईश्वरके सिवा कोई दूसरा ऐसा है ही नहीं जिसके शरीरमें काम-क्रोध-लोभ न हों। यहाँ इन अर्धालियोंमें सार, काव्यर्थापत्ति और रूपककी संसृष्टि है।

करु०—जीवको परमेश्वरके समान क्यों कहा? यहाँ ध्वनि यह है कि काम-क्रोध-लोभसे कामका सहायक मद है और बनिता स्थायी है, क्रोधका सहायक मोह है और अहङ्कार स्थायी है, और लोभका सहायक ईर्ष्या है और दम्भ स्थायी है; इनको जो जीतें और श्रीरामजीका भजन करें वे सारूप्यको प्राप्त होते हैं। अतः जीवको रामके समान कहा। यहाँ 'प्रथम निदर्शना अलङ्कार' है।

**यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥ ६॥**
**तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई॥ ७॥**

अर्थ—यह गुण साधनसे नहीं प्राप्त हो सकता, आपकी कृपासे ही कोई-कोई पाता है॥ ६॥ तब रघुनाथजी हँसकर बोले—हे भाई! तुम मुझे भाई भरत-जैसे (सदृश) प्रिय हो॥ ७॥

टिप्पणी—१ (क) '*यह गुन*' अर्थात् अन्य गुण क्रिया-साध्य हैं, यथा—'*धर्म ते बिरति योग ते ग्याना*......।' परंतु यह गुण क्रियासाध्य नहीं है, कृपासाध्य है। काम, क्रोध और लोभको जो अपने पुरुषार्थसे जीत

ले वह आपके ही समान है, यह कहकर अब पुरुषार्थका तिरस्कार करते हैं कि यह गुण साधनसे नहीं होते अर्थात् साधन करनेवाले तुम्हारे समान नहीं हैं। *'तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई'* अर्थात् तुम्हारे कृपापात्र ही तुम्हारे समान हैं। [जैसे लक्ष्मणजी, हनुमान्‌जी आदिने पाया—(पां०)]

☞ (ख) *'क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया॥'* (३। ३९। ३) में जिन पाँच विकारोंको छूटना श्रीरामकृपासे बताया गया है, वही सब यहाँ सुग्रीव भी गिनाकर सबको कृपासाध्य कह रहे हैं। यथा क्रमसे—१ *'घोर क्रोध तम निसि जो जागा।'* २ *'नारि नयन सर जाहि न लागा।'* ३ *'लोभ पास जेहि गर न बँधाया।'* ४ *'बिषयबस्य सुर नर मुनि स्वामी'* (*'नाथा बिषय सम मद कछु नाहीं।'* (२०। ७), ५ *'अतिसय प्रबल देव तव माया'* ६ *'छूटहिं सकल करहु जौं दाया।'*

टिप्पणी २—*'तब रघुपति बोले मुसुकाई'*......' इति। *तब*=जब सुग्रीवने कहा कि कामादि विकार आपकी कृपासे छूटते हैं और मैं कामके वश हो गया था। इन वचनोंसे सुग्रीवने सूचित किया कि मुझपर आपकी कृपा नहीं है। यह सुनकर रघुनाथजीने हँसकर जनाया कि मेरी कृपा तुमपर है। हँसी यहाँ कृपाका द्योतक है यथा—*'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥'* (१। १९८। ७) इस समय हँसकर प्रसन्नता जनानेका कारण यह है कि सुग्रीव यह न समझें कि हमसे अपराध हुआ है इससे रघुनाथजी हमपर अप्रसन्न होंगे।

नोट—१ मुसकानेका कारण यह भी कहा जाता है कि जीव जब भूलता है तब युक्तिसे हमपर ही दोष रखता है। यथा—*'लोभ मोह मद काम क्रोध रिपु फिरत रैनि दिन घेरे। तिन्हहिं मिले मन भयो कुपथ रत फिरै तिहारेहि फेरे॥ दोषनिलय यह बिषय सोकप्रद कहत संत श्रुति टेरे। जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥'* (वि० १८७। २-३) अपने गुरु श्रीमुरारिदासजीसे राजाने भी ऐसा ही कहा है—('भक्तिरसबोधिनी' टीका कवित्त ५०६) यथा—*'ठाढ़ो हाथ जोरि मति दीनतामें बोरि कीजै दंड मोपै कोरियों निहारि मुख भाषिए। घटती न मेरी आप कृपा ही की घटती है बढ़ती सी करी ताते न्यूनताई राखिए॥'*

## 'भरत जिमि भाई'

मा० त० भा०—(क) भरत सदृश कहनेका भाव कि हनुमान्‌जी सुग्रीवके मन्त्री हैं, यथा—*'मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥'*(४। ५। ३) हनुमान्‌जीको प्रभुने लक्ष्मणजीके समान कहा है, यथा—*'सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥'*(४। ३। ७) मन्त्रीको लक्ष्मणसमान कहा। अतएव राजाको भरत समान कहा। भरतजी लक्ष्मणजीसे बड़े हैं। (पं०) (ख) *'प्रिय भरत जिमि भाई'* अर्थात् जैसे भरतजी हमको प्रिय हैं वैसे ही तुम प्रिय हो, जैसे वे भाई वैसे ही तुमको मैं भाई समझता हूँ, यथा—**'सुग्रीवः पञ्चमो भ्राता', 'त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः।'** (वाल्मी० ६। १३०। ४५) यहाँ उदाहरण अलङ्कार है।

पाँडेजी—*'भरत जिमि भाई'* कहनेका दूसरा भाव यह है कि जैसे भरतजी दूर होते हुए भी अतिप्रिय हैं, वैसे ही तुम भी हो चाहे पास रहो चाहे दूर।

प्र०—*'भरत जिमि भाई'* कहा क्योंकि दोनोंको राज्याधिकार दिया। पुनः, वे दूर हैं तो भी समीपही-से हैं, लक्ष्मणजी अनन्य प्रेमान्ध हैं और भरतजी ज्ञानरूप रामपरछाईं हैं।

वि० त्रि०—सरकारने देखा कि अपने दोषको स्मरण करके सुग्रीवजी लज्जित हैं, अपनेको पामर, पशु कामी कह रहे हैं, और समझ रहे हैं कि मैं अप्रसन्न हूँ, अतः अपनी कृपाको द्योतित करते हुए मुसकराकर बोले। यथा—*'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरिन मनोहर हासा॥'* मुसकुराना ही मनोहरहास है। सरकारका स्वभाव है, *'निज करतूति न समझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥'* अतः उनके संकोचको मिटानेके लिये कहते हैं कि तुम मुझे भाई भरतके समान प्रिय हो। जिस भाँति मैंने भरतके गले राज बाँध दिया, उसी भाँति तुम्हारे गले बाँध दिया। भरत भी राज नहीं चाहते थे, तुम भी नहीं चाहते थे, अतः तुम भरत भाईके समान प्रिय हो। समानका अर्थ ही 'इषत्-न्यून' है।

श्रीनंगे परमहंसजी—भरत-समान प्रिय कहनेका भाव यह है कि 'भरतजी विषयासक्त नहीं हैं और न इन्द्रियोंके वशमें बद्ध हैं। यथा—*'अवध राज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन लखि धनद लजाहीं॥ तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥'* इसलिये रघुनाथजीने सुग्रीवको भरतजीकी बराबरी देकर विषयबद्ध (दोष) से रहित सूचित किया।'

दीनजी—रामचन्द्रजीका *'भरत जिमि भाई'* और *'लखन जिमि भाई'* आदि कहना भी रहस्यमय है। प्रेमभक्तिके भावोंमें जिसकी उत्कृष्टता दिखानी होती है, उसे 'भरतके बन्धुत्वके' सदृश स्वीकार करते हैं, पर जिसमें सेवाभावकी उत्कृष्टता दर्शानी होती है उसे 'लक्ष्मणके बन्धुत्व' से मिलाते हैं। इसी काण्डमें हनुमान्‌जीके लिये श्रीरामजी कह आये हैं—*'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'* वही नियम सर्वत्र जानना चाहिये।

☞ *'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना'* से यहाँतक *'कपि त्रासा'* प्रसङ्ग है, क्योंकि जब श्रीरामजीने हँसकर उनको भरत-समान कहा तब सुग्रीवका भय जाता रहा। अब आगे—*'जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए'* की भूमिका है।

**'रामरोष कपित्रास-प्रकरण' समाप्त हुआ।**

## 'जेहि बिधि कपिपति कीस पठाये'—प्रकरण

### अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥८॥

अर्थ—अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस प्रकार सीताजीकी खबर मिले॥८॥

पं०—रघुनाथजीको तो कहना चाहिये था कि मैंने तुम्हें सुख दिया है, तुम यत्न करके अब सीताको ले आओ (जैसा सुग्रीवने वचन दिया था कि *'जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई'* ) पर यह न कहकर केवल सुध मँगानेको कहा। इसमें आशय यह है कि उत्तम पुरुषोंको कार्यसाधनके लिये ऐसा कहना योग्य नहीं कि मैं तुम्हारे आश्रित हूँ, तुम्हारे ही रखे रहता और मारे मरता हूँ। अथवा, सर्वज्ञ प्रभुने विचारा कि इन्हें तो केवल सुधि ही लाना है और सीताका लाना तो मेरे गये बिना हो ही नहीं सकता; इसलिये उन्होंने यथार्थ बात कही।

प्र०—*'जतनु करहु मन लाई'* अर्थात् जो मन विषयमें लगाये हुए थे उसे अब सीताशोधमें लगाओ। अब विषयमें न फँसना।

नोट—१ *'अब सोइ जतनु करहु मन लाई'* में भाव यह है कि जो हुआ सो हुआ, अब विषय और विषय-चर्चा छोड़ कार्यमें लगो। वाल्मी० ४। ३८। २०—२३ में इस स्थानपर सुग्रीवको श्रीरामजीने राजधर्मका उपदेश किया है। वह यह कि—'जो अर्थ-धर्म-कामका समयपर अनुष्ठान करता है, इनके लिये जो समयका विभाग करता है, वही राजा है। जो अर्थ-धर्मको छोड़ केवल कामकी सेवा करता है, वह वृक्षकी शाखापर सोये हुएके समान गिरनेपर ही समझता है। जो शत्रुओंका वध और मित्रोंका संग्रह करता है, वही अर्थ-धर्म-कामका फल भोगता है। हमलोगोंके उद्योगका यही समय है।' यथा—**'धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते॥ विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम। हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते॥ स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते। अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः॥ त्रिवर्गफलभोक्ता च राजा धर्मेण युज्यते।'** (२०—२३) मानसके *'अब' 'मन लाई'* में इस उपदेशका ग्रहण कर सकते हैं।

### दो०—एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
### नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥२१॥

अर्थ—इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि वानरोंके यूथ आ गये। सब दिशाओंमें अनेक रंग और जातिके वानरोंके झुंड-के-झुंड दिखायी पड़ते हैं॥२१॥

नोट—१ *'बतकही'* शब्दका प्रयोग मानसमें सात स्थानोंपर किया गया है और विलक्षणता यह है कि प्रत्येक काण्ड या उस काण्डका प्रसङ्ग दूसरे किसी काण्डमें आनेपर यह शब्द प्रयुक्त हुआ है, इस तरह प्रत्येक काण्डके प्रसङ्गमें एक बार आया है। परमार्थ-वार्ताके ही प्रसङ्गमें यह शब्द लिखा गया है। भाव पूर्व बालकाण्डमें भी दिये जा चुके हैं, उदाहरण ये हैं—

बालकाण्ड—*'हंसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही॥'* (१।९।२)

*'करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लुभान।'* (१।२३१)

अरण्यका प्रसंग—*'दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही॥'* (७। ६६। ५)

किष्किन्धा—*'एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ'।*

सुन्दरका प्रसंग—*'तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भयमोचनि॥'* (६। १६। ७)

लङ्का—*'काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई॥'* (६। १७। ८)

उत्तर—*'निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥'* (७। ४७। ८)

टिप्पणी—१ हनुमान्‌जीने दूत भेजे उसी अवसरमें लक्ष्मणजी किष्किन्धानगरमें पहुँचे और उसी दिन सुग्रीवको रामजीके पास ले आये, यथा—*'तब हनुमंत बोलाए दूता।'''''चले सकल चरनन्हि सिरु नाई॥ तेहि अवसर लछिमन पुर आए।'* इससे संदेह होता है कि क्या उसी दिन, दिनके दिनहीमें चारों दिशाओंसे वानर आ गये? सुग्रीवकी आज्ञासे स्पष्ट जान पड़ता है कि १५ दिनके भीतर लौटना कठिन था। (वाल्मीकीयमें ताराके वचनोंसे जो उसने लक्ष्मणजीसे कहे हैं, यह स्पष्ट जान पड़ता है कि) दूतोंके भेजे जानेके कई दिन पीछे लक्ष्मणजी सुग्रीवके पास भेजे गये थे, यथा—'**उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम। कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने॥**'(३३। ५९) अर्थात् हे पुरुषोत्तम! कामके वश होनेपर भी आपके कार्य-साधनके लिये पहिले ही सुग्रीव उद्योग करनेकी आज्ञा दे चुके हैं। पुनः, यथा—'**त्वत्सहायनिमित्तं हि प्रेषिता हरिपुङ्गवाः। आनेतुं वानरान्युद्धे सुबहून्हरिपुङ्गवान्॥ तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान्सुमहाबलान्। राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः॥ कृता सुसंस्था सौमित्रे सुग्रीवेण पुरा यथा। अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः॥**' (सर्ग ३५। १९—२१) अर्थात् आपकी सहायताके लिये प्रधान-प्रधान वानरोंको बुलानेके लिये बहुत-से वानर भेजे गये हैं और उन पराक्रमी महाबली वानरोंकी सुग्रीव प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसीसे ये अभी बाहर नहीं निकले थे। जैसी सुग्रीवने व्यवस्था की है उसके अनुसार वानर आज ही आ जायँगे।

(पं० वि० त्रिपाठीजीका भी यही मत है। वे लिखते हैं कि विजयादशमी बीतनेपर आश्विन शुक्ल ११ को हनुमान्‌जीने सुग्रीवजीको समझाया और उनकी आज्ञा पाकर जहाँ-तहाँ वानर-समाजमें दूत भेजे, और सबको एक पक्षकी अवधि दी कि इसके भीतर चले आवें, यथा—*'कहेउ पाख महँ आव न जोई। मोरे कर ताकर बध होई॥'* सो आज पंद्रह दिन पूरे हुए कार्तिक कृष्ण एकादशीको चारों दिशाओंसे वानरी सेना आयी। क्योंकि यही अवधिका अन्तिम दिन था।)

टिप्पणी-२— *'नाना बरन'* इति। इनका उल्लेख वाल्मीकीयमें ३७ से ४० तक चार सर्गोंमें है। अध्यात्म० ६। ९-१० में लिखते हैं कि कोई तो अञ्जनके पर्वतके समान नील वा काले, कोई स्वर्ण-पर्वतके समान, कोई अत्यन्त लाल मुखवाले, कोई बड़े-बड़े बालवाले, कोई श्वेतमणिके-से और कोई राक्षसोंके समान भयङ्कर युद्धके इच्छुक इत्यादि अनेक वानर आये। यथा—'**केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः। केचिद्रक्तान्तवदना दीर्घबालास्तथापरे॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाः केचिद्राक्षससन्निभाः। गर्जन्तः परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिणः॥**' (९-१०) *'सकल दिसि'* में देख पड़ते हैं, यह कहकर सूचित किया कि सब दिशाके वानर बुलाये गये थे वे सब आये हैं।'

प्र०—*'नाना बरन सकल दिसि देखिअ''''''* ' का भाव कि बतकही छोड़कर दृष्टि देखनेमें लग गयी। वानर यूथोंका आना हुआ मानो बतकही फलित हुई।

**बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन* चह लेखा॥ १॥**
**आइ रामपद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा॥ २॥**
**अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥ ३॥**
**यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्व रूप ब्यापक रघुराई॥ ४॥**

अर्थ—हे उमा! मैंने वह वानरी सेना देखी है, जो उसकी गिनती किया चाहे वह मूर्ख है (अर्थात् असंख्यकी कोई संख्या करना चाहे तो मूर्खता ही तो है, वह तो असंख्य थी, अपार थी)॥ १॥ सब वानर आ-आकर श्रीरामजीके चरणोंमें माथा नवाते हैं और प्रभुके श्रीमुखका दर्शन करके कृतार्थ होते हैं॥ २॥ सेनामें एक भी बंदर ऐसा न था जिससे श्रीरामजीने कुशल न पूछी हो॥ ३॥ यह प्रभुकी कुछ बड़ी बात नहीं है, (क्योंकि) रघुराई श्रीरामजी विश्वरूप और सर्वव्यापक हैं॥ ४॥ †

टिप्पणी—१ (क) *'मैं देखा'* अर्थात् सुनी या लिखी देखी नहीं कहता वरं अपनी आँखों देखी कहता हूँ। प्रवर्षण-गिरिपर सब देवता-मुनि-सिद्ध आये हैं, यथा—*'मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभुकी सेवा॥'* इन्हींमें शिवजी भी आये हैं, इसीसे कहते हैं कि हमने देखा है। [मानसाचार्य यहाँ लेखा करनेवालेको मूर्ख कहते हैं और आगे इसी काण्डमें लेखा है। यथा—*'अस मैं श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥'* इसका समाधान यह है कि यह कोई सिद्धान्त नहीं है, सुनी हुई बात है, निश्चय नहीं; दूसरे यह निशिचरकी कही हुई है।—(१८ पद्म यूथप बताया है। वह पूरी सेनाकी संख्या नहीं देता। सेना न जाने कितनी है। (प्र०)] (ख) सब श्रीरामजीके चरणोंमें आकर मस्तक नवाते हैं और मुखारविन्दका दर्शन करके कृतार्थ होते हैं। [ब्रह्माकी आज्ञा थी कि *'बानरतन धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ।'* सब देवता वानर तन धरकर प्रभुकी राह देखते रहे कि जिनके सेवक होकर सेवा करना है, वे प्रभु कब आवें—*'हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥ गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥'* (१। १८८) वे ही सब आकर अब अपने स्वामीके मुखारविन्दका दर्शन पा रहे हैं। अतः कृतार्थ हुए। अभीतक नाथका दर्शन न होनेसे अनाथ थे। अब नाथको पा गये, अतः सनाथ होना कहा। (प्र०) मिलान कीजिये—*'अब हम नाथ सनाथ सब भये देखि प्रभु पाय। भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय॥'* (२। १३५) '......*हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥'* (३) सब वानर देवताओंके अंशसे हैं, अतः *'होहिं सनाथा'* से यह भी सूचित किया कि अब देव रावणके भयसे मुक्त होकर सनाथ होंगे। (प० प० प्र०)] यह भी 'रामरहस्य' है। पार्वतीजीने प्रश्नमें 'रामरहस्य' भी पूछा है, इसीसे शिवजीने यहाँका भी रहस्य बताया। रहस्य=प्रभुत्व। सब आकर मस्तक नवाते हैं और श्रीरामजी प्रत्येकसे कुशल पूछते हैं। जिस सेनाकी लेखाकी इच्छा भी शिवजीने नहीं की उस सेनामें श्रीरामजीने सबकी कुशल पूछी। सेवकका धर्म है स्वामीके चरणकी वन्दना करना और स्वामीका धर्म है सेवकका सम्मान करना, कुशल पूछना सम्मान है। [इससे श्रीरामजीका स्वभाव और उनकी प्रभुतामें सावधानता दिखायी। यथा—*'बड़ी साहिबीमें नाथ बड़े सावधान हौ'* (प्र०)] (ग) सबसे कुशल पूछना यह माधुर्यमें श्रीरामजीकी अधिक महिमा है। इसीसे आगे ऐश्वर्यमें घटाते हैं, इस प्रकार कि *'यह कछु नहि प्रभु कै अधिकाई'*।' ऐश्वर्यमें यह महिमा कुछ नहीं है।

टिप्पणी २—विश्वरूप और व्यापक हैं। विराट्‌रूप से विश्वरूप हैं और परमात्मारूपसे सबमें व्याप्त हैं; तब उनका सबसे कुशल पूछना यह कुछ अधिक बड़ाई नहीं है। यहाँ दिखाया कि व्यापक-व्याप्य दोनों रूप रघुनाथजीके ही हैं।—[विश्वरूप=विश्व जिनका रूप है एवं जो परमात्मा विश्वरूपमें भासते हैं।]

* 'करन'—(भा० दा०, छ०) कर (ना० प्र०)।

† १ यथा—श्वेताश्वतरोपनिषद्—'यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश। य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥' (२। १७) अर्थात् उन आप रामजीको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ जो अग्निमें, जलमें, ओषधिमें, वनस्पतियोंमें, समस्त लोकोंमें विश्वव्यापकरूपसे उपस्थित हैं।

नोट—१ *'आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥*
*जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी॥*
*सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूर दुख दारुन दाहू॥*
*येहि बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥'* (अ० २४४। १—४)
*'प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥*
*अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥'* (उ० ६। ४-५)

और यहाँ *'बिस्वरूप ब्यापक रघुराई।'* इन तीनोंका मिलान कीजिये और शब्दोंके भेदको विचारिये।

गौड़जी—*'पदुम अठारह जूथप बंदर'* यह तो केवल यूथपतियोंकी संख्या थी। सिपाहियोंकी संख्याका अन्दाजा तो यूथकी संख्यासे हो सकेगा। परन्तु यूथ कितने-कितने वानरोंका था, कौन कह सकता है? यदि सौ-सौका मानें तो १८०० और दस-दसका मानें तो १८० पद्म वानर होते हैं। ऋक्षोंकी तो गिनती अलग थी। *'बनचर देह धरी छिति माहीं'*, यदि देवताओंने वनचर देह धरी तो वह तो ३३ करोड़ ही माने जाते हैं। बहुतोंके मतसे कोटिका अर्थ जाति है, अर्थात् ३३ जातिके हैं, उनकी आबादीका तो पता नहीं है। फिर युद्धमें देवता लोग विमानपर चढ़े तमाशा देखते हैं, वह कहाँसे आये, जब कि सब-के-सब वनचररूपसे फौजमें दाखिल हो चुके हैं? इनका जो हिसाब करनेका प्रयत्न करे वह मूढ़ है; क्योंकि जब देवताओंको भी एक-से अनेक होनेकी शक्ति है और वृद्धि ही प्रवृत्तिमार्ग है तो संख्याकी मर्यादा कहाँ मिल सकती है। भगवान्‌के सगुण विग्रहके बनानेवाले सायुज्यमुक्ति प्राप्त जीव वा वह देवता जो शाश्वतरूपसे भगवद्विग्रहमें रहते हैं, कौन कह सकता है कि कितने हैं। वह सभी पूर्ण भगवत्‌रूप भागवत हैं। परात्परकी लीलोन्मुख प्रवृत्ति देखकर उनके साथ आवश्यकतानुसार एक वा अनेक, सूक्ष्म वा स्थूल, अणु वा महान् सभी रूपोंमें अवतार लेते हैं। रामावतारकी लीलामें भी युद्धका अभिनय करनेको वही विग्रही देवता, एक-एक असंख्यरूप धारण करके वनचररूपमें पहलेसे मौजूद हैं। यह तो भगवदंश हैं। इसीलिये सेनामें एक भी ऐसा कपि न था जिससे भगवान्‌ने कुशल न पूछी हो। साधारण सुननेवालेको शंका होती है कि क्या हर एक वानर भगवान्‌को जानता था? इसका समाधान यह है कि जिसके यशका विस्तार जितना ही बड़ा होगा उतने ही अधिक उसके जाननेवाले होंगे? आज महात्मा गाँधीको भारतका बच्चा-बच्चा जानता है। परंतु वास्तविक समाधान तो यह है कि यह सब वानर तो भगवान्‌की बाट देख रहे थे, लीलामें अपना-अपना अभिनय करनेको तैयार बैठे थे कि कब सूत्रधारकी आज्ञा हो और हम रंगमंचपर आ जायँ। इस स्थलपर मानसकारने अगली ही चौपाईमें समाधान कर दिया है कि यह कोई प्रभुताकी बात नहीं है, लोकमें यशस्वियोंका जो प्रभुत्व ऐसा कराता है, सो बात यहाँ नहीं है। यह जो रघुकुलके राजा हैं वह वस्तुतः विश्वरूपसे व्याप रहे हैं, अर्थात् विश्वमें यहाँ जो संख्यातीत अपार वानरसेना है, उसके एक-एक शरीरके प्रेरक आत्मा प्राणों-के-प्राण जीवों-के-जीव वही हैं, व्याप रहे हैं, उनकी यह सहज लीला है। विग्रहसम्बन्धी देवोंके *'निज निज धाम'* पर पहुँचनेके प्रसङ्गमें भी इसी तरहका समाधान मानसकारने *'जगनिवास' 'अखिललोक बिश्राम'* कहकर किया है; अन्यत्र भी *'अखिल लोक दायक बिश्रामा'* और पुरुषसूक्तमें तो सारे सूक्तमें विराट्‌का ही वर्णन है, जिसमें **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि'** और श्रीमद्भगवद्गीतामें **'न त्वहं तेषु ते मयि'** से विराट् विभुकी व्यापकताके प्रकारका निदर्शन किया है।

आजकलके विज्ञानलवदुर्विदग्ध शिक्षितलोग वानरोंका मनुष्योंका-सा आचरण वर्णित देखकर बड़े पेचोताबमें पड़ जाते हैं और हनुमान्-सुग्रीवादि वानरोंको जंगली जातियाँ करार देते हैं, और इतनी भारी संख्याको अत्युक्ति मानकर आसानीसे सब शङ्काओंका निवारण कर देते हैं। वे समझते हैं कि विज्ञानसे तो ये बातें ठीक नहीं उतरतीं, अतः सत्य नहीं हो सकतीं। इस तरहके तर्कशैलीमें भारी भ्रम है, उससे सावधान रहनेकी आवश्यकता है। बाहुल्य-भयसे यहाँ यह विषय संक्षेपसे दिया जाता है।

विज्ञान सतत वर्धमान, नास्तिक और आसुरी विद्या है। हमारे विचार उसको सत्य और निश्चल मानकर

न तो बनने चाहिये और न अपने यहाँके वर्णनोंको पाश्चात्य विज्ञानकी कसौटीपर कसना चाहिये। हाँ, यदि विज्ञानसे हमारी किसी बातका समर्थन होता हो तो उसे हम केवल कुतूहल-शान्तिके लिये काममें ला सकते हैं। प्रस्तुत प्रसङ्गमें मनुष्योंकी तरह बोलने-चालने, रहन-सहन, आचार, विचारवाले वनचर और पक्षी आदिका वर्णन देखकर कई विद्वानोंकी धारणा यह हो गयी है कि प्राणी वस्तुतः किसी और देशके, जैसे द्राविड़ी मनुष्य थे जिन्हें आर्य कवियोंने तिरस्कारतः वानर, ऋक्ष, गृध्रादि कहा है। परंतु यह बात उलटी-सी लगती है; क्योंकि तिरस्कारके बदले इनका तो बहुत भारी सम्मान है। राक्षस शत्रु हैं, परंतु उनके सम्राट् रावणको बराबर वाल्मीकिने 'महात्मा' रावण कहा है। यह भिन्न-भिन्न योनियाँ हैं सही, परंतु मनुष्यके समकक्ष हैं। शारीरिक बलमें, तामसी छलमें और मायामें मनुष्यसे बढ़े-चढ़े हैं,परंतु मस्तिष्क और सात्त्विक बुद्धिकी दृष्टिसे मनुष्य ही बढ़ा हुआ है। इसपर आधुनिक सन्देहकर्ता पूछता है कि 'आजकल तो राक्षस कहीं मिलते नहीं और वानरोंमेंसे कोई जाति मनुष्योंसे बातचीत नहीं कर सकती?' यह प्रश्न इसी भ्रमपर उठता है कि एक तो आधुनिक विज्ञानलवदुर्विदग्ध यह माने बैठा है कि संसारमें जैसी सृष्टि आज है, जो परिस्थिति अब है वैसी ही सृष्टि, वही परिस्थिति पूर्वयुगोंमें भी थी, और वर्तमान सृष्टि और परिस्थितिको तो विज्ञानीने हस्तामलकवत् अनुशीलन कर लिया है। यह दोनों महाभयंकर भ्रम हैं। विज्ञानी तो बारम्बार यही एकरार करता है कि वर्तमान जगत्का हम अत्यन्त थोड़ा अनुशीलन कर पाये हैं। उसके आधारपर जो निष्कर्ष निकालते हैं उसमें सभी विज्ञानी एकमत नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि सभी विज्ञानी इस बातमें एकमत हैं कि बहुत पूर्वकालकी सृष्टि वर्तमान कालकी सृष्टिसे बहुत भिन्न थी, भिन्न योनियोंके प्राणी पूर्वकालमें हो चुके हैं, पूर्वकालकी परिस्थितियाँ भी भिन्न थीं और इन भिन्नताओंका पता लगा लेना आज असम्भव है। चट्टानोंके स्तरोंसे परिशीलित इतिहाससे जो कुछ पता लगता है उसकी रचना अनुमानके अधारपर की जाती है। अनेक भिन्न योनियों और जातियोंके लोगोंका लोप हो चुका है। इस विषयको कुछ अधिक विस्तारसे भूमिका-भागमें देनेका प्रयत्न किया गया है। इस स्थलपर हम नीचेका ही अंश पर्याप्त समझते हैं।

जिस त्रेतायुगमें भगवान्का सबसे पिछला रामावतार हुआ है, वह इसी श्वेतवाराहकल्पके किसी मन्वन्तरका त्रेतायुग था। यह आवश्यक नहीं है कि यह वैवस्वत मन्वन्तरके सत्ताईसवें ही त्रेतायुगकी घटना हो। भगवान्का रामावतार प्रत्येक कल्पमें होता है परंतु प्रत्येक त्रेतायुगमें नहीं होता। होता है तो त्रेतायुगमें ही। वैवस्वत मन्वन्तरमें ही यदि मानें तो वर्तमान चतुर्युगीतक सत्ताईस त्रेतायुग बीत चुके हैं। हिसाबसे पिछले सत्ताईसवें त्रेतायुगके बाद मन्वन्तरका अट्ठाईसवाँ द्वापर लगा। अब अट्ठाईसवाँ कलियुग है। परंतु वर्तमान श्वेतवाराहकल्पके अबतकके बीते चार सौ छप्पन त्रेतायुगोंमेंसे किस युगमें हुआ, यह निश्चितरूपसे कहना अत्यन्त कठिन है। हाँ, इतनी अवधि अवश्य बँध जाती है कि पहली चतुर्युगीके त्रेतासे लेकर पिछली चतुर्युगीके त्रेतातकमें कोई भी हो सकता है। अतः रामावतार हुए कम-से-कम सोलह लाख और अधिक-से-अधिक एक अरब अट्ठानबे करोड़ वर्ष हुए। सबसे पिछले विकास विज्ञानियोंकी धारणा है कि इस धरतीपर जीवनका आरम्भ हुए एक अरब वर्ष हो गये होंगे। उसका विकास होते-होते बड़े जन्तुओंकी उत्पत्तिको अबसे पचास करोड़ वर्ष हो चुके होंगे। आदिम मनुष्यकी उत्पत्ति तो अबसे ३-४ करोड़ वर्षके लगभगसे लेकर अबसे ३८ लाख वर्ष पहलेतकके समय भिन्न-भिन्न मतोंके समन्वयके साथ समझी जाती है। अर्थात् विज्ञानके अनुसार छठे मन्वन्तरकी छाछठवीं चतुर्युगीसे लेकर वर्तमान चतुर्युगीके सतयुगके आरम्भतककी अवधिमें कभी आदिम मनुष्यकी उत्पत्ति मानी जाती है। आजकलका मनुष्य उसी आदिम मनुष्यकी एक शाखामें है। आदिम मनुष्यका मूलवंश और उसकी कई शाखाओंका तो उद्भव, विकास, ह्रास और लोप कबका हो चुका है, जिसकी स्मृति इतिहासको नहीं है और जिसका प्रमाण पत्थरकी चट्टानोंपर प्रकृतिके कलमसे लिखे इतिहाससे ही विज्ञानियोंको मिलता है।

वर्तमान मनुष्यजातिकी शाखा आजसे ५ लाख वर्षोंसे लेकर बीस लाख वर्षोंके बीचमें आरम्भ हुई

मानी जाती है। इससे पहलेकी मनुष्यकी शाखाएँ कबकी नष्ट हो चुकी हैं। आदिम मनुष्यके विकासकालमें ही मानववृक्ष वा महाशाखासे ही कुछ अर्द्धमानव शाखाएँ निकलीं, जिनके चिबुक था और सभी अङ्ग वर्तमान मनुष्योंके-से थे, केवल मस्तिष्क मनुष्यके मस्तिष्ककी अपेक्षा छोटा था। आजकल वानर, लंगूर, गोरिल्ला आदि जातिके प्राणी मौजूद हैं वह चिबुकहीन हैं, 'हनुमान्' नहीं हैं। ऐसी कम-से-कम दो शाखाएँ आदिम मनुष्यके पूर्ण विकासके कालमें निकलीं, उनका पूर्ण विकास हुआ और फिर काल पाकर उनका लोप भी हो गया। इनके लिये अनुमान किया जाता है कि इनका रहन-सहन, सभ्यता सब कुछ आदिम मनुष्योंकी तरह होगी। मनुष्योंकी अपेक्षा इनमें अधिक जंगलीपन होगा।

रामावतारके कुछ काल पूर्व राक्षस योनिका आरम्भ जान पड़ता है। इनके उपद्रवसे तंग आकर ही देवोंने भगवान्से इनके नाशके लिये प्रार्थना की। ब्रह्माने आकाशवाणीके अनन्तर वनचरके रूपमें समस्त देवताओंको अवतार लेनेका आदेश दिया। तदनुसार भालू और वानरकी नयी योनियाँ उत्पन्न हुईं। राक्षस और वानर ऋक्ष तथा उस समयके गीध आदि दानवाकार पक्षी सभी एक-दूसरेकी भाषा बोलते समझते थे। राक्षस और वानर भी शिक्षा पाते थे। विद्वान होते थे। राक्षस मनुष्यतकको भोजन कर जाते थे। वानर फल-शाकाहारी थे। राक्षस योनिवालोंको चिबुक नहीं होते थे या नाममात्रको थे। वानरोंको चिबुक होते थे। चिबुकके टेढ़े हो जानेसे पवनपुत्रका नाम हनुमान् पड़ा था। राक्षस तथा वानर आदि प्राणियोंका रामावतारकालमें पूर्ण विकास हुआ और प्रायः श्रीरामचन्द्रजीके साकेतप्रयाणतक ही उस विशेष वानरयोनिका लोप हो गया। फिर द्वापरके अन्तमें महाभारतके समयमें उस प्रकारके वानरोंकी कहीं चर्चा भी नहीं आयी है। राक्षस तो श्रीरामजीके साकेत-गमनके बाद भी बचे-खुचे मौजूद थे और महाभारतकालमें इक्के-दुक्कोंकी चर्चा जरूर आती है।

वे वानर तो श्रीरामावतारके समयमें ही अपने पूर्ण विकासको पहुँच चुके थे। उनका जन्म विशेष प्रयोजनसे ही था। अतः उनकी आबादीका संख्यातीत हो जाना भी स्वाभाविक था; क्योंकि वह उनके विकासकी पराकाष्ठा थी। किसी प्राणीकी आबादी उसी-उसी समय अत्यधिक बढ़ जाती है, जब वह ऊँचे-से-ऊँचे विकासतक पहुँच जाता है। इसीके बाद उसके विनाशका भी समय आता है। जिस प्राणीका अभ्युदय होता है, वृद्धि होती है; उसका एक दिन नाश भी होना अनिवार्य है। उन वानरोंका नाश लगभग भगवान्के साकेतप्रयाणके समय हुआ। कारण तो स्पष्ट ही है कि उन्हें भी साकेत लोकको जाना था, क्योंकि *'मोक्ष सब त्यागि'* सङ्ग रहनेके लिये आये थे। सबके देखनेमें वह दूर रहते थे, परंतु उनका तो विराट् विभुमें सतत निवास रहता था। वानर-शरीर तो निमित्तमात्र था। इति।

**ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥ ५॥**
**रामकाजु अरु मोर निहोरा। बानरजूथ जाहु चहुँ ओरा॥ ६॥**
**जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥ ७॥**
**अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए। आवइ बनिहि सो मोहि मराए॥ ८॥**

अर्थ—आज्ञा पाकर सब जहाँ-के-तहाँ खड़े हुए, तब सुग्रीवने सबको समझाकर कहा॥ ५॥ यह श्रीरामजीका काम है और मुझपर तुम्हारा उपकार (एहसान) है एवं तुमसे मेरा अनुरोध है। हे वानरयूथो! तुम चारों ओर जाओ॥ ६॥ हे भाई! जाकर जनकसुताका पता लगाओ और महीनेभरमें आ जाना॥ ७॥ जो कोई बिना पता लगाये (महीनाभरकी) अवधि बिताकर आयेगा उसको हमसे वध कराये ही बनेगा, मुझे उसको मरवाते ही बनेगा अर्थात् हमें उसका वध करवाना पड़ेगा॥ ८॥

टिप्पणी—१—(क) चलनेका सावकाश नहीं था, इसीसे आज्ञा दी कि जो जहाँ हैं वहीं खड़े रहें। (ख) *'आयसु पाई'* देहलीदीपकहै। श्रीरामजीकी आज्ञा पाकर वानरयूथ जहाँ-के-तहाँ खड़े हो गये और श्रीरामजीकी आज्ञा पाकर सुग्रीवने सबको आज्ञा दी। [यथा—**'यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम्। त्वत्सैन्यं**

**त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि॥'''''''तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः। बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत्॥ ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा। स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः॥ त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर॥ त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम्। त्वं हि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः॥'** (८—११, १३-१४) अर्थात् सुग्रीवने कहा कि ये सब वानर आ गये हैं, हे नरश्रेष्ठ! जो इस कालके लिये आप उचित समझते हों उसकी आज्ञा दीजिये, यह सब सेना आपकी है और आपके अधीन है। यह सुनकर उनका आलिङ्गन करके श्रीरामजी बोले—सौम्य! पता लगाना चाहिये कि वैदेही कहाँ हैं, जीवित हैं या नहीं, वह देश कहाँ है जहाँ रावण बसता है''''इस कार्यके कारण (कर्ता) और स्वामी तुम्हीं हो। कार्यका निश्चय करके और यह विचारकर कि क्या करना है, आप ही आज्ञा दें। आप मेरे कार्यको जानते हैं इसमें सन्देह नहीं। वाल्मी० सर्ग ४०] वाल्मी० सर्ग ४० में लिखा है कि सुग्रीवने पृथ्वीका हाल वानरोंसे समझाकर कहा, यह बात गोस्वामीजीने *'समुझाई'* पदसे सूचित कर दिया और भी जो समझाया वह आगे कहते हैं—*'रामकाज'''''* इत्यादि।

टिप्पणी-२—*'रामकाज अरु मोर निहोरा।'* रामकार्य मुख्य है, अतः उसे प्रथम कहा और *'मोर निहोरा'* पीछे। *'रामकाज'* का भाव कि इसके करनेसे परलोक बनेगा और हमारा उपकार करनेसे लोक बनेगा, जो माँगोगे वही हम देंगे।

नोट—१ वाल्मी० सर्ग ४३ में जो कहा है कि '**अस्मिन्कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये। ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वर॥ कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना। तस्य चेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत्॥ अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत्। तस्य स्यात्सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः॥ ७॥ एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा। तथा भवद्भिः कर्त्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः॥**' (५—८) अर्थात् रामकार्य होनेपर हम सब ऋणमुक्त और कृतार्थ हो जायँगे। उन्होंने हमारा प्रिय कार्य किया है, उसका बदला हम दे दें तो हमारा जीवन सफल हो। जिसने अपने साथ कुछ उपकार न किया हो उसके साथ भी उपकार करनेसे जन्म सफल होता है; फिर उपकार करनेवालेकी तो बात ही क्या है? इस विचारानुसार हमारा हित चाहनेवाले आपलोग जानकीजीको ढूँढ़ें। पुनः—'**ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः। चरिष्यथोर्वीं प्रतिशान्तशात्रवाः सहप्रिया भूतधराः प्लवङ्गमाः॥**' (६१) अर्थात् यह प्रिय कार्य करनेपर बड़े उत्तम और मनोरम पदार्थोंसे मैं सबको सन्तुष्ट करूँगा, आपका कोई शत्रु न रह जायगा, आप स्त्रियोंसहित मुझसे जीविका पावेंगे और प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीपर विहार करेंगे।—यह सब *'रामकाज अरु मोर निहोरा'* का भाव है।

टिप्पणी—३ *'जनकसुता कहुँ खोजहु''''''* इति। यह रामकार्य है जो करना है। *'जनकसुता'* का भाव कि जनकमहाराजने श्रीरामजीको जनकसुता दी और यशके भागी हुए। इसी तरह इनका पता लगानेसे तुम भी वैसे ही यशके भागी होगे, मानो तुमने ही जनकसुता श्रीरामजीको दी। श्रीजनकजीको सुयश प्राप्त हुआ, यह उन्होंने स्वयं श्रीविश्वामित्रजीसे कहा है। यथा—*'जो सुख सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥ सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी।'* (१। ३४३)

[दीनजी—यहाँ *'जनकसुता'* शब्द बड़े मार्केका है। भाव यह है कि श्रीसीताजीको अपने जनक (पिता) की सुता अर्थात् अपनी सगी बहिन समझकर खोजना। जैसे तुम अपनी सगी बहिनको खोजते, उसी व्याकुलता और तत्परतासे खोजना। आगेका *'भाई'* शब्द भी इसी ओर इशारा करता है।]

नोट—२ *'जनकसुता कहुँ''''आयेहु'* से मिलता हुआ श्लोक अ० रा० में यह है—'**विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम्। मासादर्वाङ्निवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः॥**'(६। २५) *'खोजहु'* में '**विचिन्वन्तु प्रयत्नेन**' का भाव है। अर्थात् बड़े प्रयत्नसे ढूँढ़ो, पता लगाओ *'मास दिवस महँ आयेहु'* ही '**मासादर्वाङ्निवर्तध्वं**' है। अर्थात् मासके भीतर।

टिप्पणी—४ *'मास दिवस महँ आएहु भाई।'* यहाँ सबको *'भाई'* सम्बोधन देकर मित्ररूपसे उपदेश

जनाया। आगे अवधि *'मेटि'* यह प्रभुरूपसे उपदेश है। भय और प्रीति दोनों दिखाना चाहिये। इससे दोनों दिखाये। पुनः, *'मास दिवस महुँ आएहु'* के साथ *'भाई'* सम्बोधनका भाव कि जो श्रीसीताजीका पता लगाकर महीनेभरमें आ जायगा वह हमारा भाई है, हम उसे अपने समान सुख देंगे। [वाल्मी० सर्ग ४१ में जो कहा है—'**यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्ट्वा सीतेति वक्ष्यति। मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति॥ ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः। कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति॥**' (४७-४८) (अर्थात्) जो मास बीतनेके पूर्व लौटकर कहेगा कि मैंने सीता देखी, वह मेरे समान ऐश्वर्य और भोगोंका सुख प्राप्त करेगा। उससे बढ़कर हमारा कोई प्रिय न होगा, वह हमको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होगा। बहुत-से अपराध भी किये हों तो भी वह हमारा 'भाई' ही होगा।—यह सब भाव इस चरणसे कह दिये गये हैं।]

टिप्पणी—५ *'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए'* अर्थात् पता लगनेपर यदि एक मासकी अवधि बीत जाय तो भय नहीं है और पता न लगे और एक मासके भीतर आ जाय कि पता नहीं लगा तो भी भय नहीं; वध तभी होगा जब पता भी न लगा और अवधि भी बिता दी। यही बात समझकर तीन दिशाओंके वानर अवधिके भीतर ही आ गये। [यथा—'**तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः। कपिराजेन संगम्य निराशाः कपिकुञ्जराः॥ विचिन्त्य तु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह। अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः॥ दिशमप्युत्तरां सर्वां विविच्य स महाकपिः। आगतः सह सैन्येन भीतः शतबलिस्तदा॥ सुषेणः पश्चिमामाशं विविच्य सह वानरैः। समेत्य मासे पूर्णे तु सुग्रीवमुपचक्रमे॥**'—(वाल्मी० ४७। ६—९) अर्थात् प्रस्थानके दिनसे मास पूर्ण होते ही वानर-सेनापति निराश होकर प्रस्रवण पर्वतपर कपिराजके पास आ गये। सुग्रीवके आदेशानुसार समस्त पूर्व दिशाको ढूँढ़कर विनत नामक महाबली वानर मन्त्रियोंसहित सीताजीको न देखकर लौट आया। समस्त उत्तर दिशाको ढूँढ़कर महाबली शतबलि डरता हुआ सेनासहित आ गया। सुषेण पश्चिम दिशाको ढूँढ़कर महीना पूरा होनेपर सुग्रीवके पास वानरोंके साथ लौट आया। अ० रा० में इस अर्धालीसे मिलता हुआ श्लोक यह है—'**सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत्। तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः॥**' (६। २६) अर्थात् बिना देखे जो माससे एक दिन भी अधिक बीतनेपर आवेगा वह मुझसे प्राणान्तक दण्ड पावेगा।]

शीला—*'कह सुग्रीव सबहि समुझाई'* इति। समझाया कि भक्त चार प्रकारके हैं—उत्तम, मध्यम, नीच, लघु। मास दिवस श्लेषार्थी है। चारोंमें यों घटता है कि—जो सीताजीकी सुधि लेकर मास (=१२) दिनमें आवे वह उत्तम; जो मास (=१२)+ दिवस(=७)=१९ दिनमें खबर लेकर आवे वह मध्यम; जो मास (=३०) दिनमें खबर लेकर आवे वह नीच भक्त है, पर है यह भी तीसमार; क्योंकि करारके भीतर आ गया, और जो मास बिताकर सुरति लेकर आवे वह लघु है; क्योंकि करारके बाहर चलना लघुका काम है। एवं जो वादा बिताकर बिना सुध लिये आया वह तो मेरा शत्रु है, वध होनेको ही आवेगा।

नोट—३ यह तो जटायु और सुग्रीवसे मालूम ही हो गया था कि रावण ले गया और दक्षिण दिशामें गया एवं उधर ही वह रहता भी है; तब चारों दिशाओंमें वानरोंको क्यों भेजा? इसका समाधान अरण्यकाण्डमें आ चुका है। तथापि यहाँ पुनः संक्षिप्तरूपसे लिखा जाता है। रावण चोरीसे ले गया है। यथा—*'इत उत चितइ चला भड़िहाई।'* चोर वस्तु छिपाकर ही रखता है; इससे न जाने सीताजीको कहाँ रखा हो; यही कारण है कि श्रीराम-लक्ष्मणजी जटायुजीसे यह समाचार पानेपर भी वनकी प्रत्येक झाड़ी इत्यादिमें ढूँढ़ते फिरे।

**दो०—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।**
**तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत॥ २२॥**

**सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥ १॥**
**सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥ २॥**

अर्थ—श्रीसुग्रीवजीके वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ चल दिये। तब सुग्रीवने अङ्गद, नल और हनुमान्‌जीको बुलाया॥ २२॥ (और उनसे बोले—) हे नील, अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान्! सुनिये। आप सब धीरबुद्धि और चतुर हैं॥ १॥ आप सब सुभट मिलकर दक्षिण दिशाको जायें और सब किसी (सभी) से श्रीसीताजीका पता पूछें॥ २॥

नोट—१ *'सब बानर'* से पूर्व, उत्तर और पश्चिम तीन दिशाओंमें जो यूथपति अपने यूथोंके सहित भेजे गये, उन्हें जनाया। वह ये हैं—**'उत्तरां तु दिशं रम्यां गिरिराजसमावृताम्॥ प्रतस्थे सहसा वीरो हरिः शतबलिस्तदा। पूर्वां दिशं प्रतिययौ विनतो हरियूथपः॥ पश्चिमां च दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः। प्रतस्थे हरिशार्दूलो दिशं वरुणपालितम्॥'** (वाल्मी० ४५। ४-५, ७ अर्थात् हिमालय वा बड़े-बडे पर्वतोंसे युक्त रमणीय उत्तर दिशामें शतबलि नामक वीर वानरोंने प्रस्थान किया। वानरयूथपति विनत पूर्व दिशाको गया और वानरोंमें सिंहरूप (श्रेष्ठ) सुषेण वानरपति वरुणसे पालित भयानक पश्चिम दिशाको गया। चौथी दिशावाला समाज यह है, जिसे अब नाम लेकर सम्बोधन कर रहे हैं, यथा—**'तारांगदादिसहितः प्लवगः पवनात्मजः। अगस्त्याचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः॥'** (६) अर्थात् तार, अङ्गद आदिसहित पवनपुत्र हनुमान्‌जी अगस्त्यजीकी दक्षिण दिशाको गये।

अङ्गदके साथके मुख्य वानर ये हैं—गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान्, जाम्बवान्, और तार इत्यादि। यथा—**'परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः। गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः॥ मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवानपि। अंगदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः॥'** (वाल्मी० ५०। ५-६) मानसानुसार नल, नील, कुमुद, गद आदि भी मुख्य हैं।

टिप्पणी—१(क) *'जहँ तहँ चले'* अर्थात् जिनको जिस दिशामें जानेकी आज्ञा हुई थी वे उस दिशामें गये। *'तुरंत'* शब्दसे जनाया कि सबको रामकार्य करनेमें उत्साह है और अपने स्वामीका निहोरा भी है। ☞ जो वानर तीन दिशाओंमें गये वे चलते समय प्रणाम करना भूल गये, क्योंकि इनके द्वारा सीतासुधि नहीं मिलनी है और जो वानर दक्षिण दिशाको चले वे प्रणाम करके चले, यथा—*'आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥'* क्योंकि इनके द्वारा श्रीसीताजीकी खबर मिलनी है। रामाज्ञामें कहा है—*'तुलसी करतल सिद्धि सब सगुन सुमंगल साज। करि प्रनाम रामहि चलहु साहस सिद्धि सुकाज॥'* (३। ४२) *'संग नील नल कुमुद गद जामवंत जुबराजु। चले रामपद नाइ सिर सगुन सुमंगल साजु॥'* (३। ४४) (ख) सब वानरोंके नाम लेनेका भाव यह है कि नीतिकी आज्ञा है कि कार्यके समयमें वीरोंका सम्मान करे, सबका नाम लेना सम्मान है; यथा—*'देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥'* (पं०)

नोट—२ *'सुनहु नील अंगद'''''* इति। (क) बुलानेमें अङ्गदको प्रथम कहा था। यथा—*'तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत।'* और सम्बोधन करनेमें नीलको प्रथम कहते हैं तब अङ्गद आदिको, नलका नाम ही नहीं लिया। बुलानेमें अङ्गदको प्रथम कहा, क्योंकि वह युवराज है, अपना प्रिय पुत्र है, इसके नेतृत्वमें सब सुभटोंको भेजेंगे जिसमें सबका उत्साह बढ़े। ये ही सबके नायक बनाकर भेजे गये थे, यह जाम्बवान्‌जीके *'जामवन्त कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सब ही कर नायक॥'* (३०। २) इन वचनोंसे स्पष्ट है। वाल्मी० ५३ में अङ्गदने भी यही कहा है—**'मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षप्रतिचोदिताः॥'** (११) अर्थात् पीली आँखवाले सुग्रीवकी आज्ञासे मेरी अधिनायकतामें आप लोग आये हैं। अतः बुलानेमें इनको प्रधान रखा। (ख) सम्बोधन करनेमें नीलका नाम प्रथम कहा, इसमें मुख्य कारण तो छन्दानुरोध ही है। दूसरे यह भी हो सकता है कि वह अग्निका अवतार और बड़ा भारी यूथप एवं मुख्य सेनापति है। आगे सेतु-बन्धनमें भी यह मुख्य होगा और लङ्काके संग्राममें चतुर्थ होगा। इससे इसका नाम यहाँ प्रथम लिया! (पं०)। अङ्गद युवराज हैं। श्रीहनुमान्‌जी महान् वीर हैं। जाम्बवन्त वृद्ध मन्त्री हैं, यथा—*'जामवंत मंत्री अति बूढ़ा।'* (६। २३। ४) प्रजापति (ब्रह्मा) का अवतार जानकर इनको *'मति धीर सुजान'* विशेषण दिया। इन्होंने सम्पातीसे भयभीत होनेपर सबको सावधान किया और हनुमान्‌जीको

बलका स्मरण कराके उनका उत्साह बढ़ाकर उनसे रामकार्य कराया। (प्र०) ☞ स्मरण रहे कि श्रीजाम्बवान्‌जीका घबड़ाना कहीं नहीं पाया जाता। श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगी तब इन्होंने सुषेण वैद्यका पता बताया था, यथा—*'जामवन्त कह बैद सुषेना। लंका रहइ'''''।'* (६। ५४) जब मेघनादने सबको नागपाशमें बाँध दिया, तब भी *'जामवन्त कह खल रहु ठाढ़ा।'''''मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥ पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥'* (६। ७३) इत्यादि। इसीसे 'मतिधीर सुजान' विशेषण यथार्थ ही है। (ग) 'नल' का नाम एक बार दे चुके, उसका नाम पुनः न देकर *'सकल सुभट'* में ही उसे भी कह दिया। प्रथम उसका नाम दिया था, यहाँ उसके भाई नीलका नाम भी दे दिया।

टिप्पणी—२ *'सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू'''''* ' इति। (क) दक्षिणकी खबर जटायुसे मिली है; यथा—*'लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं।'* यह दिशा विशेष निश्चित है। स्वयं भी दक्षिणकी ओर ले जाते देखा था, इसीसे सब सुभटोंको उधर भेज रहे हैं, क्योंकि वहाँ रावणसे युद्धकी सम्भावना है। (ख) *'मिलि'* का भाव कि शत्रुसे युद्ध करनेके वास्ते सब इकट्ठे रहना। मिले रहनेसे भारी कार्य भी साधारण ही साध लिया जा सकता है। (प्र०) (ग) *'सकल सुभट'* का भाव कि एक-एक दिशामें एक-एक सुभट गया है। पूर्व दिशामें विनत नामका वानर गया, पश्चिममें सुषेण, उत्तरमें शतबलि गया। दक्षिणमें सब सुभट-ही-सुभट जाओ (साधारण भट कोई न जाय। तथा जितने भी सुभट हैं वे सब जायँ)। (घ) सबसे पूछनेको कहा, क्योंकि न जाने किससे पता मिल जाय। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच कोई भी हो।

**मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु । रामचंद्र कर काज सवाँरेहु॥ ३॥**

अर्थ—मन, कर्म और वचनसे वह उपाय विचारना, (जिससे उनका काम हो और विचारकर) श्रीरामचन्द्रजीका काम भली प्रकार करना॥ ३॥

टिप्पणी—यत्न विचारना मनका काम है, कार्य 'सँवारना' कर्म है और सबसे सीताजीकी सुध पूछना 'वचन' है। जैसी आज्ञा सुग्रीवने दी, वैसा ही वानरोंने किया भी। यथा—(क) *'इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥'* (२६। १) (ख) *'चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।'* (२३) यह कर्म है और, (ग) *'सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥'* (२६। १) यह वचन है।

[पुनः, मन, यथा—*'कह अंगद बिचारि मन माहीं।'* कर्म, यथा—*'राम काज कीन्हे बिना मोहि कहाँ बिश्राम।'* वचन, यथा—*'राम काज करि फिरि मैं आवउँ।'* सीता— इत्यादि। (पं०)]

१—*'रामचंद्र कर काज सवाँरेहु'*, यहाँ चन्द्रमा कहा; *'भानु पीठि सेइअ उर आगी'*, यहाँ सूर्य और अग्निका नाम दिया और *'मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु'* यहाँ मन, कर्म और वचन कहे। ☞ इन शब्दोंके देनेका तात्पर्य यह है कि मन, कर्म और वचनके साक्षी क्रमसे चन्द्रमा, भानु और अग्नि हैं। रामचन्द्रका कार्य सँवारनेमें तुम्हारे मनका साक्षी चन्द्रमा है, कर्मका साक्षी सूर्य है और वचनका साक्षी अग्नि है; इसीसे स्वामीको सब भावसे छल-कपट त्यागकर भजो; मन, कर्म, वचनसे छल न रहे। नहीं तो चन्द्र, भानु और अग्नि तुम्हें दण्ड देंगे। [ *'रामचन्द्र कर काज'* कहनेका भाव कि ये श्रेष्ठ हैं। श्रेष्ठके कार्य करनेका श्रेष्ठ फल भी मिलता है; यथा—*'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।'* (प्र०)]

**भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी॥ ४॥**

अर्थ—सूर्यको पीठसे और अग्निको उर (छातीसे) सेवन करना चाहिये (अर्थात् धूप खाना, घाम तापना हो तो सूर्यकी ओर पीठ करके बैठे, सामने छातीपर धूप न पड़े और अग्नि तापना हो तो अग्निके सम्मुख बैठकर अग्नि तापे; अग्निकी ओर पीठ न देकर बैठे, यह वैद्यकका नियम है। इसके विपरीत करनेसे हानि होती है।) (परन्तु) स्वामीकी सेवा सब भावसे छल छोड़कर करनी चाहिये॥ ४॥

टिप्पणी—१(क) सूर्य पीठसे सेवन करनेसे सुखदाता है, अग्नि उरसे सेवन करनेसे सुखदाता है, और स्वामी सब भावसे (माता, पिता, गुरु, स्वामी, भाई इत्यादि सभी भावोंसे) छल त्यागकर सेवन करनेसे

सुखदाता हैं। (ख) *'छल त्यागी'* का भाव कि सूर्यको पीठसे और अग्निको छातीसे सेनेमें छल है; वह यह कि सूर्यका सेवन पीठसे इसलिये करते हैं कि उससे शीत और वायु नहीं रहते, सूर्यसेवनमें यह स्वार्थ होता है। सम्मुखसे उसका सेवन करनेसे दृष्टिकी हानि होती है। इसी प्रकार अग्निको उरसे सेवन करनेसे जठराग्नि बढ़ती है और पीठसे सेवन करनेसे 'काम' की हानि होती है। यही समझकर लोग अपने हितके अनुकूल सेवन करते हैं—यही छल है। इसीसे कहते हैं कि स्वामीकी सेवा छलरहित करे। अर्थात् स्वामिसेवामें दुःख-सुख न विचारे, निःस्वार्थ और निश्छल भावसे करे।

टिप्पणी २—सूर्य और अग्नि इन दोनोंके दृष्टान्त देनेका भाव यह है कि सूर्यका सेवन लोग पीठसे ही अर्थात् पीछेसे करते हैं और अग्निका आगेसे ही; यह बात स्वामीसेवामें न होनी चाहिये। उनकी सेवा आगे-पीछे एक ही तरह करनी चाहिये, जैसी सेवा उनके सामने करे, वैसी ही उनके पीछे भी करे। यह न करे कि आगे तो कोमल वचन बनाकर कहे और पीछे अनहित करे, यथा—***'आगे कह मृदु बचन बनाई। पीछे अनहित मन कुटिलाई॥'***

टिप्पणी ३—इस चौपाईकी जोड़का श्लोक वृद्धचाणक्यमें है। मिलान यथा—

| | |
|---|---|
| *भानु पीठि सेइअ उर आगी* | **पृष्ठेन सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्** |
| *स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी* | **स्वामिनं सर्वभावेन** |
| *तजि माया सेइअ परलोका* | **परलोकहितेच्छया** |

दीनजी—भाव यह कि स्वामीकी सेवा पीठ और उर किसी विशेष अङ्गसे नहीं बल्कि मन-वचन-कर्म सब प्रकारसे करनी चाहिये। अग्निको उरसे सेवनमें यह स्वार्थ है कि पीठसे सेवनमें जल जानेका भी भय रहता है। (करु०, पां०)

पं० रा० व० श०—सूर्य और अग्निका एक विशेष अङ्गसे सेवन देहकी ममता एवं स्वार्थसे लोग करते हैं कि जठराग्नि बढ़े, रोग दूर हों। सुग्रीवजी कहते हैं कि स्वामीके कार्यमें देहका भी ममत्व न करो, स्वार्थ उसमें छू भी न जाय, मन-तन-वचन उसमें लगा दो, शरीरका भान भी न रहे। और ऐसा ही इन महात्माओंने किया भी। यथा—*'राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥'* (१३) यही भाव यहाँ है।

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

नोट—१ उ० ८७ में भुशुण्डिजीके प्रति यह श्रीमुखवचन है कि—***'पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥'*** वही 'सर्वभाव' और 'छल (कपट) त्यागी' यहाँ भी है। बैजनाथजी लिखते हैं कि ज्योतिषके मतसे यात्रा एवं युद्धमें रविका सम्मुख होना अमङ्गल है और वैद्यकमतसे रुजवर्द्धक है। इसलिये सूर्यको पीठसे सेवन किया जाता है और अग्निकी आँच वायु-कफ चोट आदि को हरती है और जठराग्निको उदरमें शुद्ध रखती है; इसलिये उसका सेवन उरसे करना चाहिये।

पां०—मुख्य अर्थ यही है (जो ऊपर दिया गया है)। सूर्यके साथ आगेका और अग्निके साथ पीछेका कपट लगा हुआ है। दूसरा अर्थ और सुनिये—'बाहरका छल-कपट रघुनाथजी सूर्यरूपसे देखते हैं और अन्तःकरणका अग्निरूपसे। इसलिये छल-कपट, बाह्यान्तर दोनोंको; छोड़कर रामचन्द्रका काम करो।' पुनः तीसरा अर्थ यह है कि—'सूर्य कपट-छलको छोड़ पीठ अर्थात् रास्तेको सेवते हैं—क्योंकि यदि सूर्य सावधानी न रखें तो रात-दिनमें अन्तर पड़े और जो अग्नि छल-कपट करे तो अन्न न पचे, वा देह जल जाय—ऐसे ही सावधान होकर रघुनाथजीकी सेवा करो।

नोट—२ यह चौपाई 'वज्र तेरही' वालीमेंसे एक है। भाव तो इसका स्पष्ट है और प्रमाण सिद्ध है, फिर भी लोगोंने अनेक क्लिष्ट कल्पनाएँ की हैं। पाठकोंकी जानकारी एवं विनोदार्थ उनमेंसे कुछ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं, पाठक स्वयं भी विचार देखें—

१ मा० म०—भानुपीठ=सूर्यमुखी पत्थर। इसको टकटोरकर देखो तो उसके भीतर कुछ न दिखायी

देगा, परन्तु वह अग्निको धारण किये हुए है। वह भानुपीठ केवल उदरमें अग्निको सेवता है।

२ महादेवदत्तजी, वै०+भानुपीठ= चकोर। यह अपने स्वामी चन्द्रमाके वियोगमें दुःखसे उरमें अग्नि सेवता है, अग्निको खा लेता है कि मैं भस्म हो जाऊँ तो मेरी चिताकी भस्म यदि शिवजी लगा लें तो मेरी क्षार चन्द्रढिगतक पहुँच जायगी। इसी प्रकार स्नेहसे छल-कपट छोड़कर स्वामीकी सेवा करनी चाहिये। यह शरीर क्षणभङ्गुर है, कभी-न-कभी नष्ट होगा ही, यदि स्वामिकार्यमें छूट जाय तो रामजीकी प्राप्ति हो जायगी।

३ शीला—भानुपीठ अर्थात् सूर्यमुखीका इष्ट भानु है, उसे जलमें रख दो तो भी वह हृदयमें अग्नि बनाये रखता है। जैसे ही जलसे निकाला गया और सूर्यके सम्मुख हुआ कि उसमेंसे अग्नि प्रकट हुई, जल अग्निका नाशक है। ऐसे ही सेवकको अनेक कष्ट पड़े तो भी स्वामीके कार्यको न भुलावे।

४ शीला, मा० शं०—भानुपीठ=भानुका सिंहासन=पूर्व दिशा। उर-आगी=माताकी जठराग्निमें। अर्थात् जिस स्वामीने पूर्व ही माताकी जठराग्निमें तुम्हारी रक्षा की, उनका काम छल-कपट छोड़कर करना चाहिये, इत्यादि।

५ करुणासिंधुजीने भानुपीठका अर्थ सूर्य-मुखी और सूर्यमण्डलमध्यस्थ राम इत्यादि किये हैं। इसी तरह और भी कई तरहसे लोगोंने इस अर्धालीको क्लिष्ट बना दिया है।

**तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥ ५॥**
**देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥ ६॥**
**सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥ ७॥**

अर्थ—माया (अर्थात् तन, धन, स्त्री, पुत्र, घर इत्यादिकी ममता) का त्याग करके परलोक सेवन करे, (तो) (भव=संसार,जन्म-मरण) से उत्पन्न जितने शोक हैं वे सब मिट जायँ॥ ५॥ हे भाई! देह धरनेका यही फल है कि सब काम एवं कामनाएँ छोड़कर श्रीरामजीका भजन करे॥ ६॥ जो श्रीरघुवीरचरणोंका प्रेमी है वही गुणवान् है और वही बड़भागी है। (भाव यह कि आप सब तो रामकार्यमें ही लगने जा रहे हैं, तब आपसे बढ़कर भाग्यवान् कौन हो सकता है)॥ ७॥

नोट—१ भवसम्भवशोक मायाकृत हैं, मायाजनित विकार हैं; यथा—'*एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥*'(३। १५। ५) इससे कहते हैं कि उसका त्याग करनेसे भवसे छुटकारा होगा। माया, यथा—'*मैं अरु मोर तोर तैं माया।*' संसारमें ममत्व ही माया है, इसीको त्याग करनेको कहते हैं, यथा—'*सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। सब की ममता तजि कै समता सजि संत सभा न बिराजहि रे॥*' (क० उ० ३०)

नोट—२ '*सेइअ परलोका।*……' इति। अर्थात् परलोक बना लो, मोक्ष प्राप्त करनेका उपाय कर लो। यही श्रीरामजीने 'पुरजन गीता' में कहा है। '*बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥ साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥ सो परत्र दुख पावइ*……।' (७। ४३)

टिप्पणी—१ '*देह धरे कर यह फल भाई*……' इति। (क) '*यह फल*', कहनेका भाव कि रामसेवा इस समय जो प्राप्त हुई है, वही इस देह धारण करनेका फल है। यहाँपर 'देह धरनेका फल' बताते हैं कि निष्काम होकर एवं सब काम छोड़कर रामभजन (रामसेवा) करे और पुरजनगीतामें भगवान्ने स्वयं ही यह भी बताया है कि देह धारण करनेका फल क्या नहीं है। यथा—'*एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥ नर तन पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥ ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥*' (७। ४४। १—३) (ख) '*भाई*' नम्रता, प्रियत्व और सम्मानका सूचक है। बड़े लोग नम्रतापूर्वक उपदेश देते हैं। दूसरे इस वानरयूथमें '*सकल सुभट*' अर्थात् सब प्रधान हैं, इसमें मन्त्री और युवराज भी हैं, ब्रह्मा और शिव ही जाम्बवान् और हनुमान्‌रूपसे यहाँ हैं, अतः इनको प्रीतिसूचक '*भाई*' पद देकर सम्बोधन किया। (ग) ☞ प्रधान वानरोंको प्रीति दिखाते

हैं—*(देह धरे कर यह फलु भाई)*। सामान्य वानरोंको भय और प्रीति दोनों दिखाते हैं—(*जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥'* यह प्रीति है। और *'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए। आवइ बनिहि सो मोहि मराए॥'* यह भय है)। प्रधान वानरोंको प्रत्यक्ष भय नहीं दिखाया, पर उनके सामने ही सामान्य वानरोंको भय दिखाया है। इस प्रकार उनके द्वारा इनको भी वही भय सूचित कर दिया है—यह बड़ोंकी रीति है। [इसी प्रकार शिवजीने सामान्य देववृन्दके उपदेशद्वारा ब्रह्माको भी श्रीसिय-रघुबीर-विवाह-समय उपदेश दिया था, यथा—*'बिधिहि भयेउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥ सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु। हृदय बिचारहु धीर धरि सियरघुबीर बिआहु॥'* (१। ३१४) २—इन सुभटोंके लिये भी वह दण्ड है, यह बात काण्डके अन्तमें अङ्गदके वचनोंसे सिद्ध है, यथा—*'इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई॥'* (२६। ४)]

प० प० प्र०—*'भानु पीठि सेइअ''''''* से लेकर *'भजिअ राम''''''* तक चार साधन कहे गये हैं। उनमेंसे दो तो ऐहिक सुख (ऐश्वर्य आदि) की प्राप्ति करानेवाले हैं और दो परमार्थ एवं परम परमार्थकी प्राप्ति कराते हैं। *'भानु पीठि सेइअ उर आगी'* का केवल वाच्यार्थ लेनेसे इसमें सूर्य या अग्निकी सेवा (भजन) नहीं है। अतः लक्षणार्थ ही लेना चाहिये। यथा—'**अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः। करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः॥**' (द्वादशपञ्जरिका) अतः इससे पञ्चाग्नि साधनादि तपश्चर्या ध्वनित है।—*'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।'* और तपोबलसे सिद्धियाँ प्राप्त होनेपर ऐहिक सुख प्राप्त होता है। यह सबसे कनिष्ठ साधन है। इससे श्रेष्ठ साधन द्वितीयार्धमें बताते हैं—*'स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी।'* सर्वभावसे और निष्कपट बुद्धिसे सेवा करना भी एक बड़ी तपश्चर्या है। ऐसी विनम्र सेवासे स्वामी (राजा) के प्रसन्न होनेपर ऐहिक सुखका लाभ होता है। इन दो साधनोंसे भवभयहरण नहीं होता। अतः आगे मोक्षका साधन कहते हैं—*'तजि माया सेइअ परलोका''''''*। परलोक=मोक्ष। मायाका त्याग कहनेसे मोहादि मायाजनित समस्त विकारोंका त्याग कह दिया गया। मोह नाशसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष होता है; पर मोक्ष सुख बिना रामभक्तिके स्थिर नहीं रह सकता। यथा—*'तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रह न सकइ हरिभगति बिहाई॥'* अतः सर्वोत्तम और सबसे सुलभ साधन रामसेवा, रामभजन आगे बताते हैं।

☞ बालकाण्ड २३ (४) में *'सम यम नियम फूल'* का वर्णन किया। यदि फूलका उपभोग न किया जाय तो *'फल ज्ञाना'* की प्राप्ति [२३(५)में] होती है। और जबतक फलमें रस नहीं पैदा होगा तबतक स्वाद और तोष नहीं मिलेगा। अतः *'हरि पद रति रस'* का वर्णन *'देह धरे कर फल''''''* इस अर्धालीमें है। रामसेवासाधन ऐसा उत्कृष्ट है कि शम-दमादि फूल न होनेपर भी इसमें *'फल ज्ञाना'* लग जाता है और श्रीरामकृपासे ही 'रतिरस' भी पैदा होता है। रामसेवासे *'मिटहिं सकल भव संभव सोका'* और ऐहिक सुखकी भी प्राप्ति होती है, यह विशेष है।

श्रीनंगे परमहंसजी—इन चौपाइयोंमें चार वस्तुओं, सूर्य, अग्नि, स्वामी और परलोकका सेवन करना बता रहे हैं। ये चारों अपने स्वार्थके लिये सेवन की जाती हैं। उसीमें नीति दिखला रहे हैं कि सूर्य पीठकी तरफसे, अग्निका छातीकी तरफसे सेवन किया जाता है, और स्वामीकी सेवा सर्वाङ्गसे, सर्व भावोंसे करना चाहिये, यही नीति है। परलोकका सेवन माया तजकर करना चाहिये तब उससे भवजनित समस्त शोक मिट जायँगे। सुग्रीवजी वानरोंको बाहर भेज रहे हैं, इसीसे उन्हें नीति सिखा रहे हैं, जिसमें उन्हें किसी बातका डर न हो, वे सावधान रहें।

टिप्पणी—२ *'सोइ गुनग्य सोई बड़भागी।''''''* इति। (क)—*'जो'* पदसे जनाया कि रामचरणानुरागी होनेमें जाति, योनि, वर्ण, आश्रम, स्त्री, पुरुष, नपुंसक इत्यादि किसीका नियम नहीं है। कोई भी हो यदि वह रामचरणानुरागी है तो वही गुणज्ञ और बड़भागी है। (ख) *'सोइ'* का भाव कि रामचरणानुराग न हुआ और समस्त गुण हुए एवं सारे संसारमें उसकी प्रीति हो तो अन्य समस्त गुणोंसे सम्पन्न होनेसे वह गुणज्ञ नहीं माना जा सकता और संसारभरके पदार्थोंमें प्रेम होनेपर भी वह बड़भागी नहीं हो सकता।

—यहाँ 'तृतीय तुल्ययोगिता' अलङ्कार है।

नोट—३ वही बड़ा भाग्यवान् है जिसका श्रीरामचरणारविन्दमें अनुराग है। इस बातको रामचरितमानसके प्रत्येक काण्डमें दिखाया जा चुका है। रामचरणानुरागियोंको सर्वत्र बड़भागी कहा है। यथा—बालकाण्डमें श्रीअहल्याजी—*अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही'*; श्रीजनकजी—*'ते पद पखारत भागभाजन जनक जय जय सब कहहिं।'* अयोध्याकाण्डमें श्रीलक्ष्मणजी—*'भूरिभागभाजन भयउ मोहि समेत बलि जाउँ। जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल कीन्ह रामपद ठाउँ॥'*(तथा उत्तरकाण्डमें भी *'अहह धन्य लछिमन बड़भागी। रामपदारबिंद अनुरागी॥'* ) श्रीनिषादराज—*'नाथ कुसल पदपंकज देखे। भएउँ भागभाजन जन लेखे॥'* अरण्यमें श्रीसुतीक्ष्णजी—*'परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेममगन मुनिबर बड़भागी॥'* लङ्कामें श्रीअङ्गद-हनुमान्जी—*'बड़भागी अंगद हनुमाना। चरनकमल चाँपत बिधि नाना॥'* इत्यादि।

☞ जो रामपद-विमुख हैं वे *'अभागी'* हैं, यथा—*'ते नर नरक रूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी॥'*(वि० १४०)

नोट-४ मिलान कीजिये—*'जो अनुराग न राम सनेही सों। तो लह्यो लाहु कहा नर देही सों॥'''ज्ञान बिराग जोग जप तप मख जग मुद मग नहिं थोरे। राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग जल जलधि हिलोरे॥ लोक बिलोकि पुरान बेद सुनि समुझि बूझि गुरु ज्ञानी। प्रीति प्रतीति रामपद पंकज सकल सुमंगल खानी॥'* (वि० १९४) *'सूर सुजान सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इँदारुन के फल तजत नहीं करुआई॥ कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।'*(वि० १७५) इन पद्योंमें श्रीरामचरणानुरागरहित कीर्ति कुल-ज्ञान-वैराग्य आदि कैसे हैं यह बताया है।

**आयसु मागि चरन सिरु* नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥८॥**
**पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काजु प्रभु निकट बोलावा॥९॥**

अर्थ—आज्ञा माँगकर चरणोंमें सिर नवाकर सब प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए चले॥८॥ (सबके) पीछे श्रीहनुमान्जीने प्रणाम किया। इनके द्वारा कार्यका होना जानकर प्रभुने उनको अपने पास बुलाया॥९॥

टिप्पणी—१ *'आयसु मागि''''*' इति। (क) सुग्रीवजी तो आज्ञा दे ही रहे हैं कि *'सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू',* उससे आज्ञा नहीं माँगी। यहाँ जो *'आयसु मागि'* कहते हैं उससे श्रीरामजीकी आज्ञा अभिप्रेत है। उन्हींसे अब चलनेकी आज्ञा माँग रहे हैं। उन्हींको प्रणाम कर रहे हैं और उन्हींका स्मरण करते चले; यह बात *'सुमिरत रघुराई'* और *'पाछे पवनतनय सिरु नावा। जानि काजु''''*' से स्पष्ट हो जाती है। (ख) 'हर्ष' दो बातें जनाता है। एक तो रामकार्य करनेको मिला, अतः अपनेको बड़ा भाग्यवान् समझकर हर्षित हुए, दूसरे प्रस्थानके समयका हर्ष कार्यकी सफलता सिद्ध करता है, यह शकुन है। (ग) यहाँ दिखाते हैं कि सबके मन, कर्म और वचन तीनों श्रीरामजीमें लगे हैं। *'हरषि सुमिरत रघुराई'* (मनका धर्म), *'चरन सिरु नाई चले'*(कर्म वा तन) और *'आयसु मागि'* वचन है। (घ) रामस्मरणसे कार्य सिद्ध होते हैं, अतः *'सुमिरत चले।'*

टिप्पणी-२—सुग्रीवने जो तीन बातें कहीं उनको यहाँ घटाते हैं—

| तीन उपदेश | चरितार्थ |
|---|---|
| सेवा—*'तजि माया सेइअ परलोका'* | आयसु मागा। *'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।'* |
| भजन—*'भजिय राम सब काम बिहाई'* | *'सुमिरत रघुराई'* (स्मरण भजन है) |
| पदप्रेम—*'जो रघुबीर चरन अनुरागी'* | *'चरन सिरु नाई'* (पदप्रेम हुआ) |

* सिर—भा० दा०।

टिप्पणी ३—*'पाछे पवनतनय सिरु नावा'''''* इति। (क) पीछे प्रणाम करनेका कारण यह है कि सब वानरोंको समझाकर फिर सुग्रीव हनुमान्‌जीसे और भी बातें करते रहे, इसीसे ये सबके पीछे श्रीरामजीके पास गये, यथा—**'विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान्। स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने॥ अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम्। सुग्रीवः परमप्रीतः प्रभुः सर्ववनौकसाम्॥ न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये। नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव॥ सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः। विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः॥ गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे। पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥ तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते। तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥ त्वय्येव हनुमन्नास्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः। देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥'** (वाल्मी० ४४। १—७) अर्थात् सुग्रीवको निश्चय था कि हनुमान्‌जीसे कार्य सिद्ध होगा, इससे वे पवनसुत पराक्रमी हनुमान्‌से प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे हरिपुङ्गव! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, अमर—देवताओंके लोकों एवं जलमें भी आपकी गतिको रुकावट नहीं है। असुर, गन्धर्व, नाग, देवता, सागर और पर्वतसहित सब लोकोंको आप जानते हैं। आपमें आपके पिता मरुतके समान गति, वेग, तेज और हलकापन है। आप-सा तेजस्वी पृथ्वीमें नहीं है। अतएव जिस प्रकार श्रीसीताजी मिलें वह आप ही सोचें। हे हनुमान्! आपमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकालका अनुवर्तन और नीतिका ज्ञान वर्तमान है। [(ख) पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी लिखते हैं कि सब सुभट सुग्रीवजीके सामने खड़े हैं, यथा—*'सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत।'* वहींसे आज्ञा माँगकर और सिर नवाकर सब हर्षित होकर चले। श्रीहनुमान्‌जी *'सबहि मानप्रद आपु अमानी'* हैं, इसलिये इन्होंने सबके पीछे बिदा होनेके लिये सिर नवाया। (ग) प० प० प्र० का मत है कि *'उरप्रेरक रघुबंसबिभूषन'* की प्रेरणासे ऐसा हुआ। अथवा, धीरोंकी यह रीति है कि सबका मर्म लेकर पीछे काम करते हैं। अथवा, ये अपनेको सबसे लघु मानते हैं, इससे सबके पीछे प्रणाम किया। (मा० म०) (घ) पंजाबीजी लिखते हैं कि अत्यन्त प्रेमी सबसे पीछे बिदा होते हैं, जितनी देर साथ रहे उत्तम है। अथवा, परम सेवकने स्वामीका रुख लखा कि कुछ देंगे, अतः पीछे मिले। अथवा, प्रभु इन्हींको मुद्रिका देना चाहते हैं। सबके बीचमें इनको मुद्रिका देनेसे औरोंका अपमान होगा, यह विचारकर प्रभुने ऐसी प्रेरणा कर दी। (ङ) हनुमान्‌जी सदा परमविनीत रहते हैं, इसीसे वे दीनबन्धुको परमप्रिय हैं। शुकसारनने भी यही देखकर रावणसे कहा था कि *'सकल कपिन्ह महँ तेहि बल थोरा।'* ]

श्रीरामजीने जान लिया कि हनुमान्‌जीसे हमारा कार्य सिद्ध होगा, यथा—*'जानसिरोमनि जानि जिय कपि बल-बुद्धि-निधानु। दीन्ह मुद्रिका मुदित प्रभु पाइ मुदित हनुमानु॥'* (रामाज्ञा० ३। ४१)

नोट—१ *'जानि काज'* इति। यथा—**'अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम। जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव॥'** (अध्यात्म० ६। २९) अर्थात् इस कार्यमें तुम्हीं प्रधान हो, तुम्हारे सब सामर्थ्यको मैं जानता हूँ, जाओ, मार्ग तुम्हें सब प्रकार मङ्गलकारी हो! वाल्मीकिजी लिखते हैं कि सुग्रीवका इनपर अधिक विश्वास और हनुमान्‌जीका स्वयं अपने ऊपर दृढ़ विश्वास देखकर श्रीरामजीने जान लिया कि इनसे अवश्य कार्य सिद्ध होगा। यथा—**'सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः। निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने॥ तदेव प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः। भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः॥'** (सर्ग ४४। ९-१०) सर्ग ३ में हनुमान्‌जी (वटुरूप) के प्रश्न कर चुकनेपर श्रीरामजीने लक्ष्मणजीसे इनकी प्रशंसा की है और अन्तमें कहा है कि जिस राजाके पास ऐसा गुण-सम्पन्न दूत हो उसके कार्य दूतके वचनसे ही सिद्ध हो सकते हैं, शत्रु भी उसके वचन सुनकर प्रसन्न हो जाय—(वाल्मी० ४। ३। ३३—३५) वह भी *'जानि काज'* का कारण है। यथा—**'कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥ एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु। सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ॥ एवं गुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः। तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः॥'** (वाल्मी० ४। ३। ३३—३५)

नोट—२ जान लिया कि कार्यसिद्धि इन्हींके द्वारा होगी। अतः *'प्रभु'* शब्द दिया। पं० वि० त्रि० जी लिखते हैं कि जितने बन्दर भेजे गये हैं वे सब राजनीतिकी रक्षाके लिये भेजे गये, काम करनेके लिये

हनुमान्‌जी ही भेजे जा रहे हैं—यह *'जानि काज······'* का भाव है।

नोट—३ *'प्रभु निकट बोलावा।'* (क) जब चरणोंमें सिर नवाया तब निकट तो थे ही, फिर निकट बुलाना कैसा? निकट बुलाना लिखकर कविने आशयसे सूचित किया कि मस्तक नवाकर हनुमान्‌जी चल दिये थे, तब रघुनाथजीने बुलाया, यथा—**'गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत्'**—(अध्यात्म० २८) अर्थात् पवननन्दनको जाते देख श्रीरामजी ये वचन बोले। (ख) निकट बुलाया—कानसे लगकर गुप्त बात कहनेके लिये। यथा—*'कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमान की। कहँ हरि सिव अज पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरति वह लगनि कान की॥'* (गी० ५। ११)

**परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि* जन जानी॥१०॥**
**बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥११॥**

अर्थ—प्रभुने अपना करकमल हनुमान्‌जीके सिरपर फेरा। अपना जन (सेवक) जानकर उन्हें अपने हाथकी अँगूठी दी॥१०॥ (और कहा—) बहुत तरहसे सीताजीको समझाना और हमारा विरह एवं बल कहकर तुम शीघ्र लौट आना॥११॥

टिप्पणी—१ *'परसा सीस सरोरुह पानी'* इति। (क) जिस करकमलके स्मरणमात्रसे भवसागर पार करना सुगम हो जाता है, वही करकमल श्रीहनुमान्‌जीके सिरपर फेरा। इससे समुद्र पार करना अत्यन्त सुगम कर दिया। यथा—*'सुमिरत श्रीरघुबीर की बाहैं। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं॥'* (गी० उ० १३) पुनः विनयपत्रिकामें लिखा है कि *'सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति ताप पाप माया।'* (पद १३८) इससे यह सूचित करते हैं कि हनुमान्‌जीको अग्निकी ताप, लङ्कापुरी जलानेका पाप और सुरसा, सिंहिका, मेघनाद आदिकी माया कुछ न व्यापेगी। (ख) *'जन जानी'* का भाव कि सिरपर हाथ फेरना, मुद्रिका देना और कानमें लगकर बात कहना, ऐसी कृपा 'निज जन' पर ही करते हैं।

प्र०—मुद्रिका मुखमें रख ली, यथा—*'गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायउ।'* (गी० ५। १) जिसमें जो इस मुखसे वचन निकलें वे मानो रामजीकी मुहर छाप-सरीखे प्रमाण हों। कोई-कोई कहते हैं कि *'परसा सीस सरोरुह पानी'* उपक्रम है और इसका उपसंहार सुन्दरमें,*'सिर परसेउ प्रभु निज करकंजा'* यह है। इसीसे *'मेटति पाप'* (लङ्कादहन और बालवृद्धवधका)। [यह मुद्रिका वही है जो केवटको उतराई देनेके लिये सीताजीने रामजीको दी थी अथवा यह स्वयं श्रीरामजीकी है इसमें मतभेद है। इसपर विशेष सुन्दरकाण्डकी *'चकित चितव मुदरी पहिचानी।'* (१३। २) इस चौपाईमें देखिये।]

नोट—१ यह मुद्रिका निशानीके लिये दी। इससे सीताजी विश्वास करेगीं। यथा—**'अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा। मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति॥'**(वाल्मी० ४४। १३) अर्थात् इस चिह्नसे जनकात्मजा तुमको मेरे यहाँसे आया हुआ जानेंगी, देखकर घबड़ायेंगी नहीं। हनुमान्‌जीने कहा भी है कि *'दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिदानी।'*

टिप्पणी—२ *'बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु'* इति। (क) बहुत प्रकारका समझाना सुन्दरकाण्डमें लिखा गया है। यहाँ श्रीरामजीने कानसे लगकर गुप्त बात कही है, इसीसे ग्रन्थकारने भी यहाँ बात गुप्त रखी। सुन्दरकाण्डमें जब हनुमान्‌जी उसे खोलकर कहेंगे तब ग्रन्थकार भी स्पष्ट लिखेंगे। [(ख) 'सीता' शब्द देकर जनाया कि बहुत प्रकार समझाने एवं बल और विरह सुननेसे उन्हें शीतलता प्राप्त होगी। (पं०)]

मा० म०, पं०, प्रं०—बल तो महारानीजी जानती ही हैं, वे स्वयं हनुमान्‌जीसे कहेंगी कि *'तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥'* अतः यहाँ बलसे सेनाका अर्थ है। अर्थात् बताना कि कैसी सेना है, कैसा दलका बल है इत्यादि, जिससे विश्वास हो कि सेना निशाचरोंको जीत लेगी और बताना

* दीन्ह—(भा० दा०)

कि वियोग-दुःखसे हम बहुत दुःखी हैं, अतएव वहाँ पहुँचनेमें हम किञ्चित् विलम्ब न करेंगे यह विश्वास उनको होगा।

पं० रा० व० श०—बल और विरह दोनों कहनेको कहा। क्योंकि यदि विरह-दुःख ही कहेंगे तो वे ये न समझें कि दुःखसे निर्बल हो गये हैं अब हमको छुड़ाने क्योंकर आ सकेंगे। यथा—*'तव प्रभु नारिबिरह बल हीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥'* (६। २३। २) केवल बल कहें तो सम्भव था कि समझती हमारे लिये क्यों परिश्रम करेंगे।

टिप्पणी—३ *'बेगि आयेहु'* जिसमें हम उनकी प्राप्तिका शीघ्र उपाय करें। [नोट—ये शब्द मानो हनुमान्‌जीके लिये आशीर्वाद हैं कि तुम्हींसे यह कार्य सिद्ध होगा, इसका यश तुम्हींको प्राप्त होगा। अध्यात्ममें आशीर्वादके वचन भी हैं, यथा—**'जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव।'** (६। २९); अर्थात् तुम्हारे बुद्धि-बलादि सत्त्वको मैं जानता हूँ, जाओ तुमको मार्ग मङ्गलकारी होगा] *'तुम्ह आएहु'* अर्थात् तुम ही आना, सीताजीको साथ न लाना। इसी भावसे हनुमान्‌जीने सुन्दरकाण्डमें सीताजीसे कहा है कि *'अबहि मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥'*

**हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना॥ १२॥**
**जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥ १३॥**

अर्थ—हनुमान्‌जीने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान श्रीरामजीको हृदयमें धरकर चले॥ १२॥ यद्यपि देवताओंके रक्षक प्रभु सब बात जानते हैं तो भी वे राजनीतिकी रक्षा करते हैं (नीतिकी मर्यादाका पालन करते हैं)॥ १३॥

टिप्पणी—१ (क) *'जन्म सुफल करि माना।'* भाव कि हनुमान्‌जीका जन्म रामकार्यके निमित्त है, यथा—*'रामकाज लगि तव अवतारा'*; जब वह कार्य मिला तब अपना जन्म सफल माना। (ख) जन्मकी सफलता तो कार्य हो जानेपर माननी चाहिये, अभीसे सफल कैसे मान लिया? उत्तर—जब प्रभुने मस्तकपर हाथ फेरा, मुद्रिका दी और सीताजीको समझाकर शीघ्र लौट आनेको कहा, तब कार्य हो चुका, उसके पूरा होनेमें किञ्चित् सन्देह नहीं है। (नोट—प्रभु सत्यसन्ध हैं, उनका वचन झूठ नहीं हो सकता। जो मुखसे निकल गया, वह अवश्य होकर रहेगा। सीताजीको समझाकर लौटना तभी हो सकता है जब कार्य सफल हो। अध्यात्ममें यह भी लिखा है कि मङ्गलका आशीर्वाद भी हनुमान्‌जीको दिया। तब हनुमान्‌जी-सरीखे भक्त कैसे न कार्यको सिद्ध समझते। वे तो जानते हैं कि *'स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दिएउ'*; अतः तुरत जन्म सुफल मान लिया)। (ग) [*'कृपानिधाना'* को हृदयमें बसा लिया, ऐसा कहकर जनाया कि इस समय उनके चित्तमें प्रभुकी कृपाका चिन्तवन समा गया है। कृपाका ही स्मरण करते चले जा रहे हैं कि प्रभु सदा दासोंको बड़ाई देते आये हैं, वैसे ही यह बड़ाई मुझे देना चाहते हैं, इत्यादि। इसीसे कविने 'कृपानिधानको सुमिरत चले' ऐसा लिखा]। हनुमान्‌जीने जाना कि मुझपर प्रभुने बड़ी कृपा की कि हाथ फेरा और कार्य करनेकी आज्ञा दी। यथा—*'कहँ हरि सिव पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरति वह लगनि कान की॥'* (गी० ५। ११)

टिप्पणी-२ (क)—*'प्रभु'* अर्थात् समर्थ हैं, अतः सब जानते हैं *'राजनीति राखत'* अर्थात् सोचते हैं कि यदि ईश्वरत्वसे काम लेंगे तो राजनीतिकी मर्यादा न रह जायगी। राजनीति है कि दूत भेजकर शत्रुका समाचार पाकर तब चढ़ाई करे, इसीसे प्रथम दूत भेजते हैं। (मर्यादा-पुरुषोत्तम इस अवतारका नाम ही है, अतः सबकी मर्यादा रखते हैं)। (ख) *'सुरत्राता'* का भाव कि देवताओंकी रक्षाके लिये रामावतार है, देवरक्षा माधुर्यसे होगी, ऐश्वर्यसे नहीं, क्योंकि रावणकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे है; इसीसे माधुर्यके अनुकूल लीला करते हैं, ऐश्वर्यके अनुकूल नहीं। ऐसा ही अरण्यकाण्डमें कहा है, यथा—*'जद्यपि प्रभु जानत सब कारन। उठे हरषि सुरकाज सँवारन॥'* इत्यादि।

पं०—अथवा, देवताओंको रावणने बहुत दुःख दिये थे, इसीसे प्रभु देवताओंके वानरतनद्वारा ही रावणका

अपमान करायेंगे। अतएव '*सुरत्राता*' कहा। वा, वानर दूतको भेजा कि इसका बल-पराक्रम देख रावणको हमारे बल पराक्रमका बोध होगा कि कैसा अतुल होगा। वा, सब कार्य काल पाकर होते हैं, दूत भेजनेसे कुछ समय बीतेगा तब रावणादिके मरणका समय भी आ जायगा। यह भी नीति है।

☞'*अब सोइ जतन करहु मन लाई*' से यहाँतक '*जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए*' यह प्रसङ्ग है।

## 'सीताखोज सकल दिसि धाए'—प्रकरण

**दो०—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।**
**रामकाज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥ २३॥**

अर्थ—सब वानर सभी वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतकी कन्दराएँ, गुफाएँ, ढूँढ़ते चले जाते हैं। रामकार्यमें उनका मन लवलीन (तन्मय, तल्लीन, मग्न) है उन्हें देहका भी मोह—ममत्व भूल गया॥ २३॥

टिप्पणी—१ '*चले हरषि सुमिरत रघुराई*' में एक बार चलना कह चुके, अब यहाँ फिर चलना कहते हैं। पहिली बारका चलना विदा होनेके अर्थमें है और यहाँ रास्ता चलनेका प्रकार कहते हैं कि वन, सरिता आदि खोजते चले। अतः पुनरुक्ति नहीं है।

**कतहुँ होइ निसिचर सैं* भेंटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥ १॥**
**बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥ २॥**

अर्थ—जो कहीं किसी निशाचरसे भेंट होती है तो सब एक-एक चपेट(थप्पड़, तमाचा, झाँपड़) लगाकर उसके प्राण ले लेते हैं॥ १॥ बहुत तरहसे पर्वत और वनमें देखते हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो सब उन्हें घेर लेते हैं (इस विचारसे कि मुनि सब जगहकी बात जानते हैं।)† ॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) '*कतहुँ होइ निसिचर सैं भेंटा*' का भाव कि खर-दूषणके मारे जानेपर निशिचर भाग गये, अब इधर बहुत नहीं हैं, इसीसे कभी कहीं भूले-भटके कोई निशिचर मिलता है। उसे रावण जानकर मारते हैं। [यथा—'**रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवाः। जघ्नुः किलकिलाशब्दं मुञ्चन्तो मुष्टिभिः क्षणात्॥**' (अध्यात्म० ६। ३२) अर्थात् यह समझकर कि यही रावण है वानरोंने किलकिला शब्द करके उसको मुष्टियोंसे मारा। वाल्मी० सर्ग ४८। १७—२०में लिखा है कि जब ये उस स्थानमें पहुँचे, जिसे कण्डुऋषिने शापसे भस्मकर वन कर दिया था तब एक भयानक असुरको बैठे देखा जो मुट्ठी बाँधकर इनकी ओर दौड़ा। यथा—'**अभ्यधावत संक्रुद्धो मुष्टिमुद्यम्य संगतम्।**'(४८। १९) '**रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तलेनाभिजघान ह। स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन्॥** (२०) **असुरो न्यपतद् भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः।**' अङ्गदने उसे रावण समझ एक चपेटा दिया जिससे वह रुधिर उगलता हुआ गिर पड़ा और मर गया। पाण्डेजी अर्थ करते हैं कि एक वानर एक ही चपेटसे उसका प्राण हर लेता है। राक्षसोंको शत्रुपक्षका जानकर थप्पड़ मारना और मुनियोंको मित्रपक्षका अनुमान करके घेरना 'प्रत्यनीक' अलङ्कार है—(वीरकवि)]

(ख) '*कोउ मुनि*' का भाव कि निशाचरोंके भयसे बहुत मुनि नहीं रहते, इसीसे कभी कोई मिलता है। [(ग) निशिचरको मारते हैं क्योंकि प्रभुने कहा था—'*इहाँ हरी निसिचर बैदेही*'(दीनजी)]

वि० त्रि०—पर्वत और वनको बहुत प्रकारसे खोजते हैं कि कोई अंश उसका बिना देखा न रह जाय और कोई प्राणी ढूँढ़ते समय बिना जानकारीके दूसरे वनमें न चला जाय। ऊपर कह आये हैं कि यदि राक्षस मिले, तब तो उसका प्राण ही हरण करते थे, यदि कोई मुनि मिल जायँ, तो उन्हें सब घेरते थे कि आप महात्मा हैं, आप बता सकते हैं कि सीताजी कहाँ हैं, कैसे मिलेंगी, अथवा आपने

* 'सों—(का०), सें—(छ)।

† किसीका यह मत भी है कि मुनिको सब घेर लेते हैं कि यह निशाचर ही न हो मुनिवेशमें है; यदि ऐसा होगा तो सबसे एक बारगी घिर जानेसे घबड़ा जायगा, जिससे वह पहिचान लिया जायगा।

इस विषयमें कुछ देखा-सुना है। यह *'सीता सुधि पूछेहु सब काहू'* का साफल्य है।

**'सीताखोज सकल दिसि धाए'—प्रकरण समाप्त हुआ।**

## 'विवर-प्रवेश'—प्रकरण

**लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलै न जल घन गहन भुलाने॥ ३॥**
**मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥ ४॥**

अर्थ—अत्यन्त प्यास लगनेसे सब अत्यन्त व्याकुल हो गये (अर्थात् मरणावस्थाको पहुँच गये)। परन्तु जल कहीं नहीं मिलता और सघन वनमें भूल गये हैं (भटक रहे हैं।) ॥ ३॥ हनुमान्‌जीने मनमें अनुमान किया कि सब वानर बिना जलपानके मरा चाहते हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ पर्वतों और जङ्गलोंमें ढूँढ़नेमें बड़ा श्रम हुआ, इसीसे अत्यन्त प्यास लगी। *'भुलाने'* अर्थात् उनको दिशाका ज्ञान न रह गया। यथा—**तृषार्ताः सलिलं तत्र नाऽविन्दन् हरिपुङ्गवाः॥ विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः॥** (अध्यात्म० ६। ३३-३४) अर्थात् श्रेष्ठ वानर प्याससे आर्त हैं, वहाँ जल न मिला। कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख गये हैं, इस दशामें वे उस महावनमें फिर रहे हैं।

नोट—१ हनुमान्‌जीको प्यास न लगी। इसका कारण यह है कि श्रीरामजीकी इनपर विशेष कृपा है; प्रभुने इनके मस्तकपर करकमल फेरा था, फिर 'रामनामांकित' मुद्रिका इनको दी थी जो इन्होंने मुखमें रख ली थी। रामनाम अमृतरूप है, यथा—'**धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्**' जो मङ्गलाचरणमें कह आये हैं। अँगूठी रामनामयुक्त है और ये स्वयं परमानन्य विलक्षण नामजापक हैं कि जिनके रोमरोमसे नामकी ध्वनि होती है और जिनका रोम-रोम रामनामाङ्कित है एवं जिनके हृदयमें सदा धनुर्धर श्रीरामजी विराजमान रहते हैं। यह भी स्मरण रहे कि रामकार्यके लिये ही इनका अवतार हुआ है। इन्द्रके वज्रप्रहारसे जब इनकी 'हनु' में कुछ चोट आयी और पवनदेव कुपित हुए थे, तब उसी मिष ब्रह्मादि समस्त देवताओंने इन्हें अपने समस्त अस्त्र-शस्त्रादिसे अभय कर दिया था। और इस समय तो उनपर श्रीरामकृपा पूर्णरूपेण है तब इनको प्यास, थकावट आदि कैसे सता सकते? वे तो निकट भी आते डरते होंगे। २ 'अनुमान'—सबके मुखकी चेष्टा देखकर किया।

**चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥ ५॥**
**चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक* खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥ ६॥**
**गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥ ७॥**
**आगे कै† हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंब न कीन्हा॥ ८॥**

अर्थ—(उन्होंने) पर्वतशिखरपर चढ़कर चारों ओर देखा (तो) पृथ्वीके एक बिलमें एक कौतुक देखा॥ ५॥ चक्रवाक, बगले और हंस उड़ते हैं‡ और बहुत-से पक्षी उसमें प्रवेश करते हैं (घुसते हैं)॥ ६॥ पर्वतपरसे पवनसुत उतरकर आये और सबको ले जाकर वह बिल दिखाया॥ ७॥ सबने हनुमान्‌जीको आगे कर लिया और वे उस बिलमें घुसे, देर न की॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'चढ़ि गिरि सिखर·····'* इति। (श्रीहनुमान्‌जी ही गिरिशिखरपर क्यों चढ़े, इसका

---

* बहुतेक। † कर—(ना० प्र०), कै—(भा० दा०, छ०, का०)।

‡ महादेवदत्तजी—'हंस और बक एक साथ नहीं रहते अतः यहाँ अर्थ है कि 'चक्रवाक बकते (बोलते) हैं और हंस उड़ते हैं। वा, दोनों बोलते और उड़ते हैं। बक=बकना, यथा—'भृगुपति बकहिं कुठार उठाये।' यहाँ यदि कहा जाय कि अरण्यकाण्डमें भी तो हंस और बकको साथ कहा है तो उसका उत्तर यह कि वहाँ हंसवाले चरणसे 'बक'-वाले चरणतक तीन चरणोंका अन्तर देकर तब बकका निवास लिखा है, इसलिये वह प्रमाण असङ्गत है।'

कारण एक तो यही है कि सब अचेत हो रहे हैं, *'मरन चहत सब बिनु जल पाना'*; और ये सावधान हैं। दूसरे दुर्गम वनोंका मर्म हनुमान्‌जी ही जानते थे। यथा—**'अब्रवीद्वानरान् घोरान्कान्तारवनकोविदः।'** (वाल्मी० ५०। १४) अतः इन्होंने ही उपाय सोचा और किया)। वन सघन है, यथा— *'घन गहन भुलाने'*, कुछ देख नहीं पड़ता था, अतएव पर्वतपर चढ़े। और पर्वतपर भी वन था, अतएव उसके शिखरपर चढ़े। (ख) *'कौतुक'* इति। रंग-बिरंगके, जाति-जातिके पक्षियोंका उड़ना और बिलमें घुसना या उससे निकलना कौतुक ही है।

टिप्पणी—२—चक्रवाक, बक और हंस ये जलपक्षी हैं, इसीसे इनके पखने भीगे हैं। ये जलपक्षी उड़कर बाहर आते हैं और बाहरके पक्षी जलके निमित्त भीतर जाते हैं। अतएव यहाँ जल अवश्य है, यह अनुमान प्रमाण अलङ्कार है।

टिप्पणी—३—पहाड़परसे शीघ्रतासे उतरे और शीघ्र सबको ले जाकर दिखाया, इसीसे *'पवनसुत'* नाम दिया। सबको दिखाया क्योंकि सब व्याकुल हैं, विवर देखकर सबकी व्याकुलता कम होगी। दूसरे,यह कौतुक है, सबको देखनेकी चाह होगी—[पं०—तीसरे, बुद्धिमानोंकी रीति है कि अपना अनुमान दूसरोंके सामने उनकी भी सम्मति लेनेके लिये पेश करते हैं। सर्वसम्मतसे पास होनेपर अनुमानित कार्यपर आरूढ़ होते हैं। नोट—कौतुक इससे कि बक और हंस दोनों एक ठौर नहीं होते, जहाँ बगले होते हैं उस सरके निकट भी हंस नहीं जाते। और भीतर जाते समय तो पखने सूखे होते हैं। पर बाहर आनेपर भीगे दिखाते हैं; इससे जलाशयका अनुमान करते हैं।]

नोट—१ वाल्मीकीय और अध्यात्ममें भी प्रायः ऐसा ही कहा है। यथा—**'अस्माच्चापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः।'** (वाल्मी० ५०। १५) **'जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वशः। नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः॥'** (१६) अर्थात् हनुमान्‌जीने सबसे कहा कि इस बिलसे सारसोंके साथ हंस, क्रौञ्च चक्रवाक आदि जलसे भीगे हुए निकले हैं। अतः निश्चयही यहाँ जलाशय है, चाहे कुँआ हो चाहे तालाब। पुनः यथा—**'आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहंसान् निःसृतान् ददृशुस्ततः। अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम्॥'** (अध्यात्म० ४। ६। ३५) अर्थात् तब हनुमान्‌जीने भीगे हुए पक्षोंवाले क्रौञ्च और हंसोंको निकलते हुए देख अनुमान किया कि यहाँ निश्चय ही जल है, इस महागुहामें हम सब प्रवेश करें।

नोट—२—कौतुक, यथा—*'जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत'* इति (विनय०) स्मरण रहे कि पम्पासरमें भी यह अद्भुतता दिखायी गयी है, वहाँ भी *'चक्रवाक बक खग समुदाई'* कहा है।

नोट—३ *'आगे कै हनुमंतहि······'* इति।—अ० रा० में भी हनुमान्‌जीका ही आगे होना कहा है। प्रवेशका प्रकार वाल्मीकीय-अध्यात्म० दोनोंमें है। यथा—**'इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः। सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुकाः॥'** (अध्यात्म० ६। ३६) अर्थात् ऐसा कह एक-दूसरेकी बाहु पकड़े हुए जलके लिये उत्सुक वे सब हनुमान्‌जीको आगे करके बिलमें प्रविष्ट हुए। **'अन्योन्यं संपरिष्वज्य जग्मुर्योजनमन्तरम्। ते नष्टसंज्ञास्तृषिताः संभ्रान्ताः सलिलार्थिनः॥''''''आलोकं ददृशुर्वीरा निराशा जीविते यदा''**।' (वाल्मी० ५०। २२—२४) अर्थात् जलकी इच्छा करनेवाले प्यासे, चेष्टारहित और अत्यन्त भ्रान्त वे सब वानर एक-दूसरेको पकड़े हुए एक योजनतक उसमें चले गये·····जीवनसे जब निराश होने लगे तब उन्हें प्रकाश देख पड़ा।

टिप्पणी—४ (क) हनुमान्‌जीको आगे करनेका भाव यह है कि विवरमें अँधेरा है, वानरोंको उसमें जाते भय लगता है, उनको साहस न हुआ कि उसमें प्रवेश करते और हनुमान्‌जी भारी पराक्रमी हैं, अतः उन्हें आगे किया। (आगे इससे भी किया कि ये व्याकुल नहीं हैं, उन्होंने बिल भी दिखाया था, इत्यादि। वा, हनुमान्‌जीके पास मुद्रिका होनेसे इनके शरीरसे अँधेरेमें प्रकाश हो जाता था; अतः प्रकाशके लिये इनको आगे किया—ऐसा भी कोई-कोई कहते हैं) (ख) *'पैठे बिबर'* अर्थात् सब उसमें घुसे। इससे जनाया कि वह विवर बड़ा विस्तृत है। विलम्ब न किया, क्योंकि अत्यन्त प्यासे हैं। (ग) हनुमान्‌जीको आगे करके सबने विवरमें प्रवेश किया, इस कथनसे प्रधानता वानरोंकी ही हुई; क्योंकि हनुमान्‌जीको कोई

प्रयोजन विवरमें प्रवेश करनेका न था। इन्हें तो प्यास लगी न थी, प्रयोजन तो अन्य सब वानरोंका ही था जो प्यासे थे। इसीसे कविने विवरप्रवेशमें वानरोंकी प्रधानता कही। यदि कहते कि वानरोंको लेकर हनुमान् 'पैठे' तो हनुमान्‌जीकी प्रधानता होती। (घ) 'हनुमंत' अर्थात् जिनकी हनु (ठोढ़ी) ने इन्द्रके वज्रका अभिमान चूर्ण कर डाला था, ऐसे वलवान्‌को सबने आगे कर लिया, यथा—'*जाकी चिबुक चोट चूर्न कियो रदमद कुलिस कठोर को।*'—(विनय०) इनके अगुआ होनेसे किसी बाधाका भय न होगा।

नोट—४ मा० म० का मत है कि ''यहाँ '*बिलंब न कीन्हा*' का 'देर न की' यह अर्थ नहीं है; क्योंकि उस विवरमें जानेके लिये शाप था कि जो बिना एक-दूसरेको पकड़े उसमें जायगा वह मृत्युको प्राप्त होगा। अतएव एक-दूसरेका 'विलम्बन' अर्थात् अवलम्ब लेकर गये, यह अर्थ है।'' परन्तु हमें कई कोषमें खोजनेपर भी 'विलम्बन' का अर्थ 'अवलम्ब' नहीं मिला। शापका प्रमाण भी हमें ज्ञात नहीं और न मा० म० के अनुयायियोंने लिखा है।

**दो०—दीख जाइ उपबन बर* सर बिगसित बहु कंज।**
**मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तपपुंज॥ २४॥**

अर्थ—भीतर जाकर वानरोंने देखा कि वहाँ एक उत्तम उपवन और सुन्दर तालाब है, जिसमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं और वहीं एक सुन्दर मन्दिर है जिसमें एक बड़ी तपस्विनी स्त्री बैठी है॥ २४॥

टिप्पणी—१ (क) '*दीख जाइ*' से जनाया कि पहले बहुत दूर तक अन्धकार था, जब बहुत दूर गये तब प्रकाशमें पहुँचे। यथा—'**अन्धकारे महद्दूरं गत्वापश्यन् कपीश्वराः**' (अध्यात्म० ४। ६। ३७) (ख) '*बर*' और '*रुचिर*' विशेषण देकर वाल्मीकि आदि रामायणोंमें दिये हुए वर्णनको सूचित किया है। [यथा—'**ततस्तं देशमागम्य सौम्या वितिमिरं वनम्॥ ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान्। सालांस्तालांस्तमालांश्च पुन्नागान्वञ्जुलान्धवान्॥ चम्पकान्नागवृक्षांश्च कर्णिकारांश्च पुष्पितान्। स्तबकैः काञ्चनैश्चित्रैः रक्तैः किसलयैस्तथा॥ आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरणभूषितान्। तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान्॥ विभ्राजमानान्वपुषा पादपांश्च हिरण्मयान्। नीलवैदूर्यवर्णांश्च पद्मिनीः पतगैर्वृताः॥ महद्भिः काञ्चनैर्वृक्षैर्वृतं बालार्कसंनिभैः। जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथ पङ्कजैः॥ नलिनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः''''''पुष्पितान्फलिनो वृक्षान्प्रवालमणिसंनिभान्॥**' (वाल्मी० ४। ५०। २४—३२) अर्थात् प्रज्वलित अग्निके समान सोनेके ताल, साल, तमालादि वृक्ष देखे जिनमें सुवर्णमय गुच्छे लगे थे। गुच्छों और लताओंसे युक्त स्वर्णभूषणयुक्त वैदूर्यकी वेदीवाले सुन्दर चमकीले वृक्ष देखे। नीलवैदूर्यसदृश तालाब, बालसूर्यसदृश स्वर्णके वृक्षों और स्वर्णकी मछलियों तथा कमलोंसे युक्त स्वच्छ तालाब देखे। मूँगेके समान फल-फूलवाले वृक्ष देखे। इत्यादि। (ग) 'रुचिर मन्दिर'—सोनेकी खिड़कियाँ, मोतीकी जाली, सोने-चाँदीके वैदूर्यमणियुक्त, घंट-ऐसे उत्तम घर देखे। सोनेके भ्रमर, मणि, सुवर्णसे चित्रित अनेक शयन और आसन देखे। इत्यादि—(श्लोक ३१—३६)] (घ) *तपपुंज*=तेजकी राशि। यथा—'*बिनु तप तेज कि कर बिसतारा।*' '*नारि तपपुंज*', यथा—'**ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं कांचिद्दूरतः। तां च ते ददृशुस्तत्र चीरकृष्णाजिनाम्बराम्॥ तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा।**'—(वाल्मी० ४। ५०। ३८-३९) अर्थात् शूरवीर वानरोंने कुछ दूरपर एक स्त्री देखी। वह काले मृगछालाके सुन्दर वस्त्र पहने थी, नियमसे आहार करनेवाली और अपने तेजसे प्रकाशित थी। *उपबन*=वह बाग जो घरके निकट जी बहलानेके लिये बनाया जाता है।

वि० त्रि०—इस गुहाका अद्भुत वर्णन है, इस जोड़का वर्णन रामचरितमानसमें कहीं नहीं पाया जाता। विचार करिये तो यह गुहा राजा युधिष्ठिरकी सभासे भी अति विचित्र थी। अलौकिक और अस्वाभाविक सामग्रीसे भरी थी। यह पर्वतकी गुहा नहीं थी कि कुछ रास्ता चलकर मैदानमें पहुँच जायँ इसे बिल कहा गया है;

* 'सर बर विकसित'—(छ०, का०) 'विकसित'—(ना० प्र०)

जिसमेंसे जलपक्षी बाहर आकर उड़ते थे। उस अन्धकारमय बिलमें जहाँ सूर्यके रश्मिका प्रवेश नहीं, उपवन कहाँसे आ गया? बिना सूर्यके तालाबमें कमल कैसे खिले? फल-फूल कैसे उत्पन्न हुए? उसके भीतर जानेवाला किसी उपायसे बाहर नहीं निकल सकता था, वह तपस्विनी चाहे तभी निकल सकता। सो भी अपने पुरुषार्थसे नहीं। अपना कर्तव्य इतना ही था कि आँख बन्द करके खोल दें। बस इतनेहीमें गुफाके बाहर ही नहीं; समुद्रके किनारे खड़े हैं। इससे मालूम होता है कि यह कोई मायामय गुफा थी। उस समयकी कुहक विद्या ऐसी बढ़ी थी कि आजकलके कुहक विद्यावाले (वैज्ञानिक) इसका स्वप्न भी नहीं देख सकते।

प० प० प्र०—१ यह मन्दिर किस देवताका था इसका उल्लेख अ० रा० में भी नहीं है। पहले कई बार बताया गया है कि मानसमें मन्दिर शब्द शिवजी, हनुमान्‌जी या हरिके सम्बन्धसे ही प्रयुक्त हुआ है। यह विवर यक्षों और राक्षसोंका है। वे शिवोपासक हैं। अतः इसे शिवमन्दिर ही समझना चाहिये।

('मन्दिर' का पर्याय 'भवन' है। यह अर्थ लेनेसे शङ्का नहीं रहती। इस दिव्य भवनमें वह तपस्विनी रहती थी। यथा—'**विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे॥ प्रभया दीप्यमानां तुददृशुः स्त्रियमेककाम्।**' (अ० रा० ४।६।३९-४०) अर्थात् एक दिव्य भवनमें उन्होंने अति आश्चर्यचकित हो एक रमणीको अकेली स्वर्ण-सिंहासनपर विराजमान देखा।)

प० प० प्र०—२ इस दोहेमें तुकान्त में विषमता है। घने वनमें मुक्तद्वारयुत एक बड़े विवरमें *'उपवन बर बिकसित बहु कंज'* देखकर कोई भी व्यक्ति यह आशा करेगा कि वहाँ कोई महान् तपोमूर्ति ऋषि-मुनि ही रहते होंगे; पर इसके विरुद्ध वहाँ देख पड़ी—*'बैठि नारि तपपुंज।'* इस आश्चर्यमय विषमताको दरसानेके लिये ही यह तुकान्तकी विषमता है।

**दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछे निज बृत्तांत सुनावा॥ १॥**
**तेहि तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥ २॥**
**मज्जन कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥ ३॥**

अर्थ—सबोंने उसे दूरसे प्रणाम किया और उसके पूछनेपर अपना समाचार (सब हाल हनुमान्‌जीने) सुनाया॥ १॥ (जब सब हाल कहकर कि किष्किन्धासे यहाँ क्योंकर आना हुआ और यह कि सब प्याससे अत्यन्त व्याकुल हैं, इस विवरका कौतुक देख यहाँ आये) तब उसने (सबसे पहले यही) कहा कि जलपान करो (पियो) और अनेक तरहके रसीले सुन्दर फल खाओ॥ २॥ (आज्ञा पाकर) सबने स्नान किया, मिठे फल खाये और फिर उसके पास सब चले आये॥ ३॥

टिप्पणी—१ 'दूरसे प्रणाम किया', इस कथनसे भय और भक्ति दोनों दिखाये। [यथा—'**विस्मिता हरयस्तत्र व्यवतिष्ठन्त सर्वशः।**' (वाल्मी० ४। ५०। ३९) अर्थात् सब बानर देखकर विस्मित होकर खड़े हो गये। पुनः, यथा—'**प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः।**' अर्थात् वानरोंने कुछ भक्तिसे और कुछ भयसे उस महाभाग्यवती स्त्रीको प्रणाम किया—(अध्यात्म० ४। ६। ४१) भय यह था कि तपस्विनी है, स्त्री है, पास जानेसे शाप न दे दे, वा कोई छलसे इस वेषमें न बैठा हो। वा, पर-स्त्रीको माता या बहिनकी नाईं सम्मान करके प्रणाम किया। (पं०) वा, तेजसे निकट न जा सके। (पाँ०)] भयसे उसके पास न गये कि कहीं पास जानेसे अपना अनादर समझकर शाप न दे दे और तपस्विनी जानकर प्रणाम किया।

टिप्पणी—२—यहाँ वानर बहुत हैं, अतः *'सिर नाए'* और *'सुनाए'* बहुवचन पद देना चाहिये था; पर यहाँ एकवचन पद दिये हैं। कारण यह है कि यहाँ वानर-समुदायका प्रणाम एक साथ कहा है। जहाँ समूह होता है वहाँ बहुवचन और एकवचन दोनों प्रकारका प्रयोग होता है। यथा—*'नगर लोग सब ब्याकुल धावा।'* पुनः, दूसरे चरणमें यदि (सुनाए) क्रिया देते तो समझा जाता कि सबने सुनाया पर ऐसा है नहीं। केवल हनुमान्‌जीने सुनाया और सब तो व्याकुल हैं, और हनुमान्‌जी ही अगुआ हैं। अतएव दोनों जगह एक वचनका प्रयोग हुआ।

नोट—१ *'पूछे निज बृत्तांत सुनावा।'* अध्यात्ममें ऐसा ही क्रम है। आते ही तपस्विनीने पूछा कि तुम कौन हो, किसके दूत हो, क्यों मेरे स्थानमें आये? यथा—'**दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूयं किमागताः॥** (४१) **कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ।**' यह सुनकर हनुमान्‌जीने उत्तरमें 'दशरथजी महाराजके पुत्र श्रीरामका पिताकी आज्ञासे स्त्री और भाई सहित वनमें आगमन और वनवाससे लेकर यहाँ तकका सब वृत्तान्त कह सुनाया—'**तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते॥**' (४२) इत्यादि। वाल्मीकिमें क्रम उलटा है। यहाँ पहले हनुमान्‌जीने उससे उसका वृत्तान्त पूछा है और जलपानादिके पश्चात् उसने इनसे।

टिप्पणी—३ *'तेहि सब कहा करहु जल पाना।'''''* इति। (क) पहिले जल पीनेको कहा, क्योंकि हनुमान्‌जीसे सुना है सब बिना जलके मरणप्राय हैं। यदि कहा होता कि भूखे हैं तो पहिले फल खानेको कहती। पर अगली चौपाईमें *'मज्जन कीन्ह मधुर फल खाए'* ऐसा लिखते हैं, इसमें जल पीना नहीं कहा। इससे जान पड़ता है कि स्नान करते समय जल भी पी लिया; इसीसे जल पीना अलग न लिखा। धूपसे सब तपे हुए और श्रमित थे; स्नान करनेसे श्रम दूर होता ही है, यथा—*'मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गएऊ।'* इसीसे प्रथम स्नान किया; और प्यासे थे इसीसे पहले जलाशयपर आये; नहीं तो पहिले फल खाते—[पं०—कपिकी रुचि स्नानकी विशेष होती ही है। वा, भक्त हैं, स्नान बिना भोजन कैसे करें?]

(ख)—*'तासु निकट पुनि सब चलि आए'* इति। प्रथम बिना जाने भयसे दूरसे ही प्रणाम किया था, अब उसका शान्त स्वभाव जानकर निकट आये। (ग)—*'चलि आए'* से जनाया कि धीरे-धीरे चलकर आये, दौड़कर नहीं, जिसमें उसको बुरा न लगे,- वह क्रोध न करे।

नोट—२ *'निकट सब चलि आए'* क्योंकि अब भय नहीं है। दूरसे हनुमान्‌जीने अपना वृत्तान्त कह चुकनेपर उससे उसका वृत्तान्त पूछा था। पर उसने सबको भूखप्याससे व्याकुल सुनकर कहा कि पहिले फल खाकर जलपान करके, श्रम दूर करके आओ तब अपनी कथा कहूँ। यही कारण है कि और इसी लालसासे वे निकट आये। यथा—'**त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद नः शुभे॥ योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्टधीः। यथेष्टं फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वामृतं पयः॥ आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः। तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानराः॥ देव्याः समीपं गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः। ततः प्राह हनूमन्तं योगिनी दिव्यदर्शना॥**' (अ० रा० ४। ६। ४७—५०)

**तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥४॥**
**मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥५॥**

अर्थ—उसने अपनी सब कथा सुनायी, और कहा कि अब मैं वहाँ जाऊँगी जहाँ रघुराई श्रीरामचन्द्रजी हैं॥४॥ (इस बिलमें जो आ जाता है वह बाहर नहीं निकल सकता। मैं अपने तपोबलसे निकल सकती हूँ और तुम्हें निकाल सकती हूँ। तुम बिना आँख मूँदे नहीं निकल सकते; अतएव) तुम आँखें बन्द करो और बिलको छोड़कर बाहर जाओ, तुम श्रीसीताजीको पाओगे,पछताओ नहीं॥५॥

टिप्पणी—१ (क) *'मैं अब जाब'* अर्थात् मेरे यहाँ रहनेकी अवधि इतनी ही थी। मेरी सखी हेमाने मुझे आज्ञा दी थी कि त्रेतामें श्रीरामजी वनमें आयेंगे, उनकी स्त्रीको खोजनेके लिये वानर तुम्हारे यहाँ आयेंगे। तुम उनकी पूजा करके श्रीरामजीके पास जाना। (ख) *'आपनि कथा सुनाई',* इससे अनुमान होता है कि वानरोंने उससे पूछा था कि आप यहाँ कैसे रहती हैं और कौन हैं, यथा—'**त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद नः शुभे।**'—(अध्यात्म० ४। ६। ४७); '**ततो हनूमान्गिरिसन्निकाशः कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम्। पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च रत्नानि चेमानि वदस्व कस्य॥**'—(वाल्मी० ४। ५०। ४१) इत्यादि। अर्थात् हाथ जोड़कर हनुमान्‌जीने पूछा कि आप कौन हैं, यह बिल और घर किसके हैं, ये रत्न किसके हैं? यह सब आप कहें। तब उसने कहा कि तुम जल पी लो, फल खा लो तब स्वस्थ होनेपर मैं सब कहूँगी। इसीसे फल खाकर जब सब आये तब कथा कह सुनायी।

टिप्पणी—२ *'मूँदहु नयन'*''''' इति। जिस दिन विवरमें वानर गये उसी दिन वानरोंको लौटनेके लिये मिली हुई एक मासकी अवधि पूरी हुई; तब सब वानर सोचवश हुए और स्वयंप्रभासे उन्होंने प्रार्थना की कि हमें बिलके बाहर कर दो, श्रीसीताजीकी सुध भी न मिली और अवधि पूरी बीत गयी। इसीपर उसने कहा कि *'मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू।'*''''' —यह कथा वाल्मीकि में है। यथा—'**शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणीम्॥ यः कृतः समयोऽस्मासु सुग्रीवेण महात्मना। स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम्॥ सा त्वमस्माद्बिलाद्घोरादुत्तारयितुमर्हसि।'''''त्रातुमर्हसि नः सर्वान् सुग्रीवभयशङ्कितान्। महच्च कार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि॥'''''जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम्। तपसः सुप्रभावेण नियमोपार्जितेन च॥ सर्वानेव बिलादस्मात्तारयिष्यामि वानरान्। निमीलयन्तु चक्षूंषि सर्वे वानरपुङ्गवाः॥ नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः। ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः॥**' (वाल्मी० ४। ५२। २१—२८) अर्थात् हम सब तुम्हारी शरण हैं, सुग्रीवकी दी हुई अवधि भी इस बिलमें बीत गयी। आप हमें इसके बाहर करके हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षा करें। उसने कहा कि जीते-जी यहाँसे निकलना कठिन है पर धर्मपालन और तपस्याके प्रभावसे मैं तुम्हें बाहर कर दूँगी। बिना आँखें बन्द किये बाहर निकलना कठिन है। अतएव नेत्र बन्द करो। वानरोंका चिन्तित होना, पश्चात्ताप करना, इत्यादि *'जनि पछिताहू'* पदसे जना दिया है।

टिप्पणी—३ *'पैहहु सीतहि',* यह तपस्विनीका आशीर्वाद है। इतना ही कहा, पता न बताया। क्योंकि उसे भविष्यका ज्ञान है, वह जानती है कि मेरे पहुँचानेसे ये सब समुद्रतीर पहुँच जायेंगे, वहाँ सम्पातीद्वारा इनको श्रीसीताजीका पता लगेगा और उसके पंख जमेंगे—(यहाँ पता बता देनेसे सम्पातीके कार्यमें विघ्न होना सम्भव है। पुनः, चन्द्रमा ऋषिका वचन सत्य करना है।)

## तपस्विनीका वृत्तान्त

पूर्वकालमें हेमा नामकी एक कन्या विश्वकर्माकी थी, जो दिव्य रूप और नादकलामें प्रवीण थी। अपने नृत्य और गानसे उसने महादेवजीको प्रसन्न कर लिया था। महेशजीने प्रसन्न होकर उसे यह बड़ा दिव्य पुर प्रसादमें दिया जिसमें वह १० करोड़ वर्ष रही। उस हेमाकी मैं सखी हूँ, मोक्षकी इच्छासे विष्णु-भगवान्‌के आराधनमें तत्पर हूँ। मेरा स्वयं प्रभा नाम है, मैं दिव्य नामक गन्धर्वकी कन्या हूँ। हेमा जब ब्रह्मलोकको जाने लगी तब मुझसे उसने कहा कि तू अकेली रहकर यहाँ तपस्या कर, त्रेतायुगमें नारायण दशरथपुत्र होंगे, भूभारहरणके लिये वनमें विचरेंगे। उनकी भार्याको ढूँढ़ते हुए वानर यहाँ आयेंगे। तब तुम उनका पूजन करके श्रीरघुनाथजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना, तब तुम योगियोंको गम्य विष्णुलोकको जाओगी। '**त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः।'''''मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम्। पूजयित्वाथ तान् नत्वा रामं स्तुत्वा प्रयत्नतः॥**' (अध्यात्म० ४। ६। ५५-५६)

वाल्मीकीयमें और इसमें भेद है। वाल्मी० ५१ में यह कथा इस प्रकार है—महातेजस्वी मय नामक एक मायावी असुर था। उसने इस सारे सुवर्णमय वनको अपनी मायासे निर्माण किया। विश्वकर्मा नामके एक दानवश्रेष्ठ हुए; उन्होंने यह दिव्य सोनेका उत्तम भवन बनाया। बड़े घोर वनमें उन्होंने हजार वर्ष तप करके ब्रह्मासे वरदानमें शुक्राचार्यकी समस्त शिल्पविद्यारूपी सम्पदा प्राप्त कर ली। इस महावनमें कुछ काल (मय) सुखपूर्वक रहा, फिर हेमा नामक अप्सरापर आसक्त होनेपर इन्द्रने उसे मार डाला। तब ब्रह्माने यह घर और उत्तम वन हेमाको दे दिया। मैं मेरुसावर्णकी कन्या स्वयंप्रभा हूँ। हेमा मेरी सखी है, नृत्यगानमें निपुण है, मैंने उसको वर दिया है, अतः मैं उसके घरकी रक्षा करती हूँ (श्लो० १० से १८ तक)

करुणासिंधुजी एवं बाबा हरीदासजीका मत है कि 'यह वही विश्वमोहिनी है जिसने नारदको मोहित किया था। नारद-भक्त हैं। भागवतापराधका उसे भी फल मिला। भगवान्‌ने उससे प्रायश्चित्तके लिये तप करनेको कहा इत्यादि।' पर हमें इसका कोई प्रमाण नहीं मालूम।

**नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा॥ ६॥**
**सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥ ७॥**

**नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥८॥**

**दो०—बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।**

**उर धरि रामचरन जुग जे बंदत अज ईस॥२५॥**

अर्थ—आँखें बन्द करके फिर सब वीर आँखें खोलकर क्या देखते हैं कि सब समुद्रके तीर खड़े हैं॥६॥ (जब सब सिन्धुतीर पहुँच गये) तब स्वयं प्रभा वहाँ गयी जहाँ रघुनाथजी हैं। जाकर उसने श्रीरामजीके चरणकमलोंमें माथा नवाया॥७॥ उसने बहुत प्रकारसे विनती की। प्रभुने उसे अनपायिनी (अचल, अविनाशिनी) भक्ति दी॥८॥ प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके (मानकर) और श्रीरामजीके युगल चरणोंको, जिनकी वन्दना ब्रह्मा और महेश करते हैं, हृदयमें धारण करके वह (स्वयंप्रभा) बदरिकाश्रमको गयी॥२५॥

टिप्पणी—१ (क) *'नयन मूँदि पुनि देखहिं'* से जनाया कि पलमात्रमें उसने सबको समुद्रतटपर पहुँचा दिया। (ख) *'देखहिं बीरा'* का भाव कि जो अपनी वीरतासे विवरके बाहर न हो सकते थे, वे ही वीर नेत्र बन्द करते ही बिना परिश्रम बाहर ही नहीं किंतु समुद्रतीरपर पहुँच गये। इससे वीरोंकी वीरतासे तपस्विनीके तपका प्रभाव अधिक जनाया। (ग) *'ठाढ़े सकल'* से सूचित किया कि आँख बन्द करते समय सब खड़े ही थे वैसे ही समुद्रपर पहुँचे—यहाँ प्रथम विशेष अलङ्कार है।

टिप्पणी—२ नाना भाँति विनय करनेपर प्रभुने अनपायिनी भक्ति दी। इससे जनाया कि इसी भक्तिकी प्राप्तिके लिये उसने अनेक प्रकारसे विनती की थी।

नोट—१ अ० रा० में उसकी विनय इस प्रकार है—प्रदक्षिणा करके बहुत बार प्रमाण किया और प्रेमपूर्वक गद्गद कण्ठसे स्तुति की। 'हे राजराजेन्द्र! मैं आपकी दासी हूँ, दर्शनार्थ आयी हूँ। बहुत हजारों वर्षों दुःख सहकर कठिन तप जो मैंने किया, वह सफल हुआ कि मायासे परे आपका दर्शन मैं कर रही हूँ। आप मायासे परे, अलक्ष्य, चराचरमें एकरस व्याप्त, अपनी योगमायासे मनुष्यरूपधारी हैं। आप नटकी तरह अनेक रूप धारण करते हैं और स्वतन्त्र हैं, अज्ञानियोंको अदृश्य हैं। महाभागवतोंको भक्तियोगका विधान करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। भला मैं आपके यथार्थ रूपको कैसे जान सकती हूँ। संसारमें जो कोई आपका परमतत्त्व जानते हों यह उसे भले ही जाना करें, पर हे राम! मेरे हृदयसदनमें तो आपका यह दिव्यरूप सदा प्रकाश करता रहे; मोक्षके देनेवाले युगलचरणकमलोंके दर्शन मुझे आपने दिये। जो स्त्री, पुत्र, धन इत्यादि लोक-ऐश्वर्यके अभिमानी हैं, वे आपका नाम लेनेयोग्य नहीं, वे आपकी स्तुति नहीं कर सकते। क्योंकि आप तो निष्किञ्चनके ही सर्वस्व हैं। आप निर्गुण और दिव्यगुणोंके आयतन हैं, आपका आदि, मध्य, अन्त नहीं। आप कालरूप हैं, जीवमात्रमें एकरस विचरते हैं, आप परम पुरुष हैं, आपके चरित्रका मर्म कोई नहीं जानता, आप शत्रु-मित्र-उदासीनरहित हैं पर जिसका जैसा भाव है आप उसको वैसा ही देख पड़ते हैं। आप अकर्ता, अजन्मा, ईश्वर हैं। लोग आपके अवतारके अनेक कारण कहते हैं। जो आपका चरित गाते हैं, वे आपके पदकमलको देखते हैं। आपकी प्रभुता मैं कैसे जान सकती हूँ।……'—(अध्यात्म० ४। ६। ६०—७७)—यह स्तुति सुनकर श्रीरामजी प्रसन्न होकर बोले कि क्या चाहती हो, माँग लो। तब उसने माँगा—'……**भक्तिं ते भक्तवत्सल। यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो॥ त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न। जिह्वा मे रामरामेति भक्त्या वदतु सर्वदा॥ मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम्। धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम्॥ अंगदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः। भान्तं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो॥**' (अध्यात्म० ४। ६। ७९—८२) अर्थात् हे प्रभो! जहाँ भी मेरा जन्म हो वहाँ आपकी निश्चल भक्ति मुझे प्राप्त रहे, आपके भक्तोंका सदा संग रहे और प्राकृतोंका संग न हो, मेरी जिह्वा राम-राम भक्तिपूर्वक निरन्तर कहा करे। श्रीसीता-लक्ष्मणसहित यह आपका श्यामल स्वरूप मेरे हृदयमें सदा वास करे। धनुष-बाण धारण किये हुए, अङ्गमें पीतवस्त्र, सिरपर परमोज्वल मुकुट, बाजूमें अङ्गद, चरणोंमें नूपुर, उरमें कौस्तुभमुक्ताहार, कानोंमें कुण्डल इत्यादि आभरण धारण किये हुए रूपका हृदयमें सदा ध्यान करूँ।

टिप्पणी—३ (क) तपस्विनीने बड़ा तप किया था। उसका फल रामभक्त-दर्शन मिला, इनके दर्शनसे श्रीरामजीका दर्शन हुआ और रामदर्शनसे अनपायिनी भक्तिकी प्राप्ति हुई। (ख) *'प्रभु आज्ञा'* इति। [प्रभुने आज्ञा दी कि '**भवत्वेवं महाभागे गच्छ त्वं बदरीवनम्। तत्रैव मां स्मरन्ती त्वं त्यक्त्वेदं भूतपञ्चकम्। मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे॥**' (अध्यात्म० ४। ६। ८३) अर्थात् ऐसा ही हो। अब तू बदरीवनको जा, वहाँ मेरा स्मरण करती हुई इस पञ्चभूत शरीरको त्यागकर मुझ परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त होगी। पाण्डेजी बदरीवनका अर्थ प्रयाग लिखते हैं]। (ग) *'प्रभु अज्ञा धरि सीस।'* आज्ञा शिरोधार्य करनेका कारण 'प्रभु' शब्दसे जनाया। अर्थात् ये 'प्रभु' हैं, इससे इनकी आज्ञा उल्लङ्घन करनेयोग्य नहीं है, अवश्य शिरोधार्य करनी चाहिये। शिरोधार्य करना आदर है, यथा—*'नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं। सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परमु धरमु यह नाथ हमारा॥ मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहि बिचार करिय सुभ जानी॥'*(१। ७७। २-३) (घ) *'जे बंदत अज ईस।'*—भाव कि ब्रह्मा और महेश सबसे बड़े देवता हैं, ये जिन चरणोंकी वन्दना करते हैं उन्हींका साक्षात् दर्शन इसने किया और उन्हें हृदयमें धारण किया। (कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि *'अज ईस'* में कुल संसार आ गया। इस तरह कि ब्रह्मा आदि सृष्टिके करनेवाले और शिवजी संहार करनेवाले हैं; सभी प्राणी जन्म-मरणके फन्देमें हैं। वा 'अज' से प्रवृत्तिमार्गवालों और 'ईश' से निवृत्तिमार्गवालोंको सूचित किया।)

प० प० प्र०—स्वयम्प्रभाके चरित्रसे ये सिद्धान्त निकलते हैं—(१) श्रीरामकार्य स्वयंसिद्ध है। (२) भगवान् जहाँ, जिस समय, जिसको बड़ाई, सुयश,सफलता देना चाहते हैं, वहाँ उस समय उसको निमित्त करके बड़ाई इत्यादि देते हैं। रामसेवकोंकी शक्ति एवं प्रयत्न केवल निमित्तमात्र बनाये जाते हैं; अन्यथा जाम्बवान् और हनुमान्जी ऐसे रामभक्तोंको एक स्त्रीके सहायसे संकटमुक्त होनेका प्रसङ्ग क्यों उपस्थित होता। यह सिद्धान्त सम्पाती-प्रसङ्गमें तथा सुन्दरकाण्डमें भी जगह-जगह प्रतीत होता है।

**विवर-प्रवेश-प्रकरण समाप्त हुआ**

## 'संपाती-मिलाप'—प्रकरण

**इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥ १॥**
**सब मिलि कहहिं परसपर बाता। बिनु सुधि लिए करब का भ्राता॥ २॥**

अर्थ—यहाँ वानर मनमें विचारते हैं कि अवधि तो बीत गयी (विवर-प्रवेश अन्तिम दिन हुआ था, अब दूसरा मास प्रारम्भ हुआ) और काम कुछ न हुआ॥ १॥ सब मिलकर आपसमें एक-दूसरेसे यह बात कहते हैं कि—भाई! सुध लिये बिना क्या करेंगे? (अर्थात् कोई बचनेका उपाय नहीं समझ पड़ता। अवधि बीत गयी, अब तो सुध मिले तभी प्राण बच सकेंगे)॥ २॥

नोट—*'इहाँ बिचारहिं',* यथा—'**द्रुमान्वासन्तिकान्दृष्ट्वा बभूवुर्भयशङ्किताः॥ ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम्। नष्टसन्देशकालार्था निपेतुर्धरणीतले॥**'''''**मासः पूर्णो बिलस्थानां हरयः किं न बुध्यत॥ वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः। प्रस्थिताः सोऽपि चानीतः किमतः कार्यमुत्तरम्॥**' (वाल्मी० ४। ५३। ४—९) अर्थात् बिलसे निकलनेपर वसन्तके फूले हुए वृक्षोंको देखकर वे शंकित हुए। परस्पर यह कहकर कि वसन्त आ गया, सुग्रीवकी आज्ञाका समय बीत जानेसे वे पृथ्वीपर गिर पड़े''''''महाप्राज्ञ युवराज बोले कि बिलहीमें हम लोगोंका मास पूरा हो गया, क्या यह आपको मालूम नहीं है। हमलोग कार्तिकमें अवधि करके चले, वह अवधि बीत गयी। अब क्या करना चाहिये?

**कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहु प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥ ३॥**
**इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई॥ ४॥**
**पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहार न ओही॥ ५॥**

अर्थ—नेत्रोंमें जल भरकर अङ्गदने कहा कि दोनों प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई॥ ३॥ यहाँ श्रीसीताजीकी

सुध नहीं मिली और वहाँ जानेसे कपिराज मार डालेंगे॥ ४॥ वह तो मुझे पिताका वध होनेपर ही मार डालते, पर श्रीरामजीने मुझे रख लिया (मेरी रक्षा की)। इसमें उनका (सुग्रीवका) कुछ उपकार वा एहसान नहीं है॥ ५॥

टिप्पणी—१ अवधि बीत जानेसे वानरोंके मन, वचन और कर्ममें सोच दिख रहा है। मनमें सोच उत्पन्न हुआ, यथा—*'इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥'* फिर मनसे वचनमें सोच आया; यथा—*' सब मिलि कहहिं परसपर बाता'*; और वचनसे फिर कर्ममें आया, यथा—*'बिनु सुधि लिए करब का भ्राता।'*

टिप्पणी—२ *'इहाँ न सुधि सीता कै पाई।'''''* अर्थात् जो काम हमें दिया गया था, वह हमसे न बन पड़ा तो अब अवश्य वध होगा। इससे यहीं प्रायोपवेशन करके मर जायँगे, नहीं तो वहाँ जानेपर सुग्रीव वध करेंगे। यथा—**'सीता नाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम्। यदि गच्छामः किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान्हनिष्यति॥'** अर्थात् हमलोगोंने श्रीसीताजीको ढूँढ़ न पाये और राजाज्ञाका निर्वाह भी न कर सके। यदि किष्किन्धाको लौट चलें तो सुग्रीव हमको अवश्य मार डालेंगे। (अध्यात्म० ७। ३)

टिप्पणी—३ *'पिता बधे पर''''''* इति। वधपर मारते, क्योंकि नीति है कि *'रिपु रिन रंच न राखब काऊ'* अर्थात् शत्रुका वंश ही निर्मूल कर देना उचित है। [यथा—**'विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति। मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः॥ इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत्। तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः॥'** (अध्यात्म० ४। ७। ४-५) अर्थात् विशेष करके मुझे तो अपने शत्रुका पुत्र जानकर बहानेसे मारेंगे ही। मेरे ऊपर उनकी प्रीति कहाँ? अबतक श्रीरामचन्द्रजीसे मैं रक्षित रहा, अब जो हमने रामकार्य नहीं किया, इसी बहानेसे दुष्टात्मा सुग्रीव निश्चय हमें मारेंगे। पुनः यथा—**'न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः॥ नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा। स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्॥ घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः। किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे। इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि॥'** (वाल्मी० ४। ५३। १७—१९) अर्थात् सुग्रीवने मेरा अभिषेक नहीं किया, वह तो पहलेसे ही मुझसे वैर रखते हैं, धर्मात्मा रामचन्द्रजीने मेरा अभिषेक किया। अपराध देखकर वह निश्चय कठोर दण्ड देंगे, उस समय मेरा दुःख देखकर मित्र भी क्या कर सकेंगे, अतएव यहीं समुद्रतीर पुण्यक्षेत्रमें मैं प्रायोपवेशन करूँगा।

नोट—१ यहाँ एक ही कारण मृत्युके लिये पर्याप्त था तो भी दूसरा भी कारण दिखाना 'दूसरा समुच्चय अलंकार' है।

नोट—२ *'कपिराई'* में के **'तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामिभावे व्यवस्थितः। न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान्॥'** (वाल्मी० ४। ५३। १४) इस श्लोकका भाव है। अर्थात् सुग्रीव स्वभावसे ही तीक्ष्ण हैं और इस समय वह राजा हैं। अपराध करके जानेपर वह क्षमा न करेंगे। **'ध्रुवं नो हिंसते राजा॥'** (१६) अवश्य वध करेंगे।

दीनजी—यदि अवधि बीत जानेपर भी श्रीसीताजीका समाचार मिल जाता तो वहाँ जाकर सुग्रीवके हाथों मरना सार्थक होता, पर श्रीसीताजीका समाचार भी न मिला और अवधि भी बीत गयी; अतएव दोनों प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई, क्योंकि सुग्रीवने कहा था—*'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये। आवइ बनइ सो मोहि मराये॥'* इसमें दो शर्तें हैं—एक समय बिताकर आवे, दूसरे बिना समाचार पाये आवे, वे दोनों मारे जायँगे—(अन्य महानुभाव तथा यह दास भी इस विचारसे सहमत नहीं है। मा० सं०)—इस शर्तके अनुसार यदि अवधि न बीतती तो 'बिना सुधि पाये' जानेके कारण दूत मारा जाता, पर अब तो दोनों प्रकारसे मृत्यु निश्चित हो गयी, क्योंकि श्रीसीताजीकी सुधि नहीं मिली, इस कारणसे और दूसरे अवधि बीत गयी इस कारणसे, यही *'दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी'* का भाव है।

**पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भएउ कछु संसय नाहीं॥ ६॥**
**अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥ ७॥**

**छन एक सोच मगन होइ रहे*। पुनि अस बचन कहत सब भए॥८॥**
**हम सीता कै सुधि लीन्हे बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना॥९॥**
**अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥१०॥**

अर्थ—अङ्गद बारंबार (अत्यन्त व्याकुलतावश) सबसे कह रहे हैं कि अब हमारा मरण हुआ इसमें कुछ संदेह नहीं॥६॥ वीर वानर अङ्गदके वचन सुनते हैं परन्तु कुछ बोल नहीं सकते, नेत्रोंसे जल बह रहा है॥७॥ सब एक क्षणभर सोचमें डूब गये। फिर सब ऐसा वचन कहने लगे॥८॥ हे चतुर युवराज! हम श्रीसीताजीकी सुध लिये बिना नहीं लौटेंगे॥९॥ ऐसा कहकर खारे समुद्रके तटपर जाकर सब वानर कुशासन बिछाकर बैठ गये॥१०॥

टिप्पणी—१ *'पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं'* इति। अत्यन्त व्याकुलतावश बार-बार कहते हैं कि श्रीरामजीने हमें बचाया, अब उन्हींका काम हमसे न बन पड़ा तब वे भी हमारी रक्षा क्यों करेंगे, अतएव मरण हुआ इसमें सन्देह नहीं। सबसे कहनेका भाव कि तुम सब बुद्धिमान् हो, जीनेका उपाय बताओ, यथा—'**यथा न हन्येम तथा विधानमसक्तमद्यैव विधीयतां नः।**' (वाल्मी० ४। ५३। २७) अर्थात् जिस प्रकार हमलोग न मारे जायँ, वह उपाय आज ही शीघ्र करना चाहिये। पुनः यथा—'**भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः। हितेष्वभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु॥ कर्मस्वप्रतिमाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः। मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षप्रतिचोदिताः॥ इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः।**' (वाल्मी० ४। ५३। १०—१२) अर्थात् आप लोग नीतिमार्गमें चतुर हैं, स्वामीके विश्वासपात्र हैं, उनके द्वारा सभी कामोंमें अधिकारके साथ नियुक्त होते हैं, कार्य करनेमें आपके समान कोई नहीं, सब दिशाओंमें आप पराक्रमी प्रसिद्ध हैं। पिङ्गाक्ष सुग्रीवकी आज्ञासे आप मेरी अधिनायकतामें आये हैं, काम सिद्ध न होनेसे हम सबका मरण हुआ इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि बिना आज्ञा-पालन कौन सुग्रीवसे सुखी रह सकता है? अङ्गदजीने तीन-चार बार मरणकी बात कही है। यथा—'**मर्तव्यं नात्र संशयः।**' (वाल्मी० ४। ५३। १२) '**न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान्॥ अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति।**', '**ध्रुवं नो हिंसते राजा॥**' (वाल्मी० ४। ५३। १४—१६) इत्यादि। अतः *'पुनि पुनि अंगद कह'* कहा। दुःख बार-बार कहनेसे कुछ घट जाता है।

टिप्पणी—२ *'बोलि न सकहिं नयन बह नीरा'* इति। यद्यपि सब वानर बड़े वीर हैं तो भी वचन सुनकर सब असमर्थकी तरह रोने लगे। पहले तो सब सोच ही करते थे पर अब वचन सुनकर कि अङ्गदने अपना मरण निश्चय किया है, सब सोचमें व्याकुल हो गये कि जब सुग्रीव अङ्गदका वध करेंगे तब हम कैसे बच सकेंगे। प्रथम सोचमें आँसू नहीं थे, अब आँसू बहने लगे अर्थात् अङ्गदकी दशाको प्राप्त हुए। वचनोंका उत्तर न दे सके। *'कपि बीरा'* का भाव कि राजाका दुःख सुनकर पुरुषार्थ नहीं चलता और चुप हो गये, पराक्रमका काम होता तो पराक्रम करते क्योंकि वीर हैं।

नोट—१ *'हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं'''* ' इस वचनसे वाल्मीकि० सर्ग ५३ में दिये हुए वानरोंके विचार भी जना दिये। न जायँगे तो कहाँ रहेंगे? तार वानरकी सलाह थी कि सबकी यदि सम्मति हो तो हेमा वा स्वयं प्रभावाले मायिक बिलहीमें रहें, वहाँ सब सुपास है और किसीका भय नहीं, यथा—'**प्लवङ्गमानां तु भयार्दितानां श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे। अलं विषादेन बिलं प्रविश्य वसाम सर्वे यदि रोचते वः॥ इदं हि मायाविहितं सुदुर्गमं प्रभूतपुष्पोदकभोज्यपेयम्। इहास्ति नो नैव भयं पुरंदरान्न राघवाद्वानरराजतोऽपि वा॥** (२५-२६)' सर्ग ५४ में हनुमान्‌जीने इस मतिका खण्डन किया है और अङ्गदको समझाया है कि लक्ष्मण उस मायाको तुरत तोड़ देंगे, इत्यादि। 'यां **चेमां मन्यसे धात्रीमेतद्बलमिति श्रुतम्।**

* गयऊ, भयऊ—(ना० प्र०), 'रहेउ, भयऊ' (का०), 'गए, भए'—(रा० प०) 'सोध बिहीना'—(ना० प्र०) छक्कनलालजीकी प्रतिमें 'सुधि लीन्हें बिना' पर हरताल देकर 'सोच बिहीना' बनाया गया है। काशी और भा० दा० में 'सुधि लीन्हें बिना' पाठ है। काशीकी पोथीमें 'किमि जैहैं' पाठ है।

**एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यं विदारणम्॥'** (१३) तब अङ्गदने प्रायोपवेशनका विचार ठाना। पुनः, अध्यात्म० (सर्ग ७) में भी हनुमान्‌जीका समझाना लिखा है। उन्होंने सोचा कि सुग्रीव और अङ्गदके बीचमें इन वानरोंकी सम्मतिसे विरोध उत्पन्न हो जायगा; यह अनुचित है। अतः समझाया [illegible] नहीं है, तुम ताराके पुत्र हो, सुग्रीवके प्रिय हो, इत्यादि।

टिप्पणी—३ (क) ***'छन एक सोच मगन होइ रहे।'''''*** इति। सोचमें वाणी रुकी रही, फिर धीरज धरकर सब वानरोंने उत्तर दिया। (ख) ***'हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना'*** इति। वानरोंके प्रथम वचनमें कोई सिद्धान्त निश्चय न हुआ, यथा—***'सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लिए करब का भ्राता॥'*** अब यहाँ दूसरे वचनमें सिद्धान्त हुआ कि बिना सुध लिये लौटकर न जायँगे। (ग) ***'जुबराज प्रबीना'*** का भाव कि आप सब जानते हैं। नीतिमें उपदेश है कि जब राजा इस प्रकारकी आज्ञा दे तब उसके पास जाय तो कार्य करके जाय, नहीं तो न जाय।[यथा—**'न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः'** (वाल्मी० ५३। २३) अर्थात् अपराधियोंको स्वामीके पास जाना उचित नहीं है। अङ्गदजीके विषयमें सर्ग ५४ में हनुमान्‌जीके विचार कवि कहते हैं कि वे तेज, बल और पराक्रमसे पूर्ण हैं। बुद्धिमें बृहस्पतिके समान और पराक्रममें बालीके समान हैं। यथा—**'आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः। शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया॥** (३) **बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः।'**—ये भाव 'प्रवीण' शब्दसे सूचित कर दिये हैं] (घ) दो प्रकारसे मृत्यु है। एक प्रकारकी मृत्युका समाधान वानरोंने किया कि वहाँ हम न जायँगे तब वे कैसे मारेंगे। दूसरी प्रकारकी मृत्युका समाधान वे न कर सके। इसीसे समुद्रतीरपर कुश बिछाकर मरनेके लिये बैठे।

टिप्पणी—४ (क) ***'बैठे कपि सब'''''*** इति। ***'सब'*** का भाव कि इस बातमें सबका सम्मत है। **'सिन्धुतट'** का भाव कि सिन्धु तीर्थपति है, इसके तीरपर मरना उत्तम है। (यथा—**'इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि।'** (वाल्मी० ५३। १९) अर्थात् पवित्र सागर-तटपर ही मैं प्रायोपवेशन करूँगा।) कुश बिछाकर बैठे। क्योंकि कुशासनपर बैठकर मरना उत्तम है। यथा—**'सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम्॥ इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः। उपाविवेशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः॥'** (अध्यात्म० ७। २७, २८) अर्थात् हमलोगोंका सुग्रीवके हाथसे वध होनेकी अपेक्षा प्रायोपवेशन (एक जगहपर बैठकर उपवास करके मर जाना) कल्याणकारक है। ऐसा निश्चयकर वहींपर कुश बिछाके वे सब मरनेका निश्चय करके बैठे। (ख) ☞ यहाँ वानरोंके मन, कर्म, वचन तीनों दिखाये। यथा—***'सोच मगन होइ रहे'*** (मन), ***'दर्भ डसाई'*** (कर्म) और ***'पुनि अस बचन कहत सब भए'*** (वचन)।

नोट—२(क) ***'बैठे कपि सब दर्भ डसाई'*** इति। प्रायोपवेशनकी विधि वाल्मीकिजीने यों लिखी हैं—'अङ्गदको घेरकर वे सब वानर प्रायोपवेशन करने लगे। जलका आचमन करके पूर्व मुँह बैठे'। यथा—**'परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवसन्प्रायमासितुम्। तद्वाक्यं बालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः॥ उपस्पृश्योदकं सर्वे प्राङ्मुखाः समुपाविशन्। दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः॥'** (१९-२०) (सर्ग ५५) प्रमाणसिद्ध भाव दर्भ डसानेका यही मिला है, पर बाबा हरिहरदासजी कहते हैं कि—'सीता-मिलन-हेतु व्रत कर रहे हैं। शरदृतुकी रेत ठण्ढी है, अतः कुशासन बिछाये। वा, सोच-समयमें रामस्मरण-हेतु कुशासनपर बैठे'। पंजाबीजी लिखते हैं कि सिंधुकी सेवा करते हैं (धन्ना देते हैं) कि इससे कार्य सिद्ध न हुआ तो कुशासनपर प्राण त्याग करेंगे। (ख) कुछ लोग तट और तीरमें यह भेद कहते हैं कि 'तट=वह स्थान जहाँ जल है, जलाशयका किनारा' और 'तीर=वह स्थान जहाँतक पानीकी हद है'।

प० प० प्र०—अङ्गदकी ऐसी दीन दयनीय दशा क्यों हुई? राममित्र, रामभक्तिकी निन्दा, अपने स्वामीकी निन्दा और श्रीरामजीके प्रतापका विस्मरण ही इसका कारण है। लंकामें वे ही जब दूत बनाकर भेजे गये तब ***'बंदि चरन उर धरि प्रभुताई'*** चले और ***'राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥'*** इस समय उस प्रभुत्वको, प्रतापको भुले हुए हैं, नहीं तो यह दशा न होती।

पं० विजयानन्द त्रिपाठी—***'पुनि पुनि अंगद''' सुधि लीन्हे बिना'*** इति। मेरे मतसे ये तीनों चौपाइयाँ क्षेपक

हैं और श्रीकोदवरामजीकी प्रतिमें नहीं हैं। कोई भी श्रीरामचरितमानसका छात्र जिसने अङ्गदके चरित्रके चित्रणपर ध्यान दिया हो कह सकता है कि वीर अङ्गद इस प्रकारसे कापुरुषोंकी भाँति नहीं बोल सकते, और ये चौपाइयाँ ऐसी शिथिल हैं कि उनके श्रीगोस्वामीजीरचित होनेमें सोलह आने संदेह है, और कोदवरामजीकी प्रतिमें इनका न होना इस संदेहको निश्चय रूपमें परिणत किये देता है।

**जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी॥ ११॥**
**तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥ १२॥**
**हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥ १३॥**

अर्थ—जाम्बवान्‌जीने अङ्गदका दुःख देखकर विशेष उपदेशकी कथा कही॥ ११॥ हे तात! रामको मनुष्य मत मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म अजित और अजन्मा समझो॥ १२॥ हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं कि सगुण ब्रह्मके निरन्तर अनुरागी हैं॥ १३॥

टिप्पणी—१ *'कहि कथा'*''''' इति। कथासे दुःख दूर होता है, यथा—*'रामचंद्र गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कर दुख भागा॥'* (५। १३। ५) (ख) *'उपदेश बिसेषी'* का भाव कि दुःख दूर करनेके लिये इससे अधिक और कोई उपदेश नहीं है। अथवा, व्यवहारको लिये हुए जो उपदेश होता है वह सामान्य है और जो परमार्थको लिये हुए होता है वह विशेष है।

प० प० प्र०—१ *'कथा बिसेषी'* इति। जिस कथासे सामान्य प्रकारका अज्ञान नष्ट होकर विशेष ज्ञानकी प्राप्ति हो वह 'विशेषकथा' है। श्रीरामचरितमेंसे कुछ विशेष चरित कहे; जैसे विश्वामित्रयज्ञरक्षण, शिवचापभङ्ग, खरदूषणादिका वध, जयन्तकथा (कि *'ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥ काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥'*) इत्यादि कहकर कहा होगा कि क्या कोई मनुष्य ये कार्य कर सकता है?

प० प० प्र० २ रामकथा कहनेमें जाम्बवन्तका यह भी अभिप्राय होगा कि इसने रामभक्त सुग्रीवकी निन्दा की और सब वानरोंने सुनी, रामकथा सुनानेसे निन्दाजनित पाप दूर हो जायगा।

प० प० प्र० ३ जाम्बवान्‌के इन वचनोंमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तको भरपूर अवकाश दिया है।

टिप्पणी—२ (क) *'नर जनि मानहु'* का भाव कि तुम नर मानते हो इसीसे ऐसे व्याकुल हो रहे हो और ऐसा कहते हो कि मरनेमें संशय नहीं। हम ईश्वरके दूत हैं, ईश्वरके कार्यको आये हैं; तब हमारा मरण कैसे होगा? हमको श्रीसीताजीकी सुध क्यों न मिलेगी? (ख) *'निर्गुन ब्रह्म'*''''' का भाव कि निर्गुण ब्रह्म सगुण हुआ है, हम सब सेवक वानर हुए हैं। (ग) *'अजित'* का भाव कि वे काल, कर्म, गुण, स्वभाव और मायासे नहीं जीते जा सकते। (घ) *'अज'* का भाव कि जैसे कर्मवश सब जीवोंका जन्म होता है, वैसे ईश्वरका जन्म नहीं होता, वे अपनी इच्छासे अवतार लेते हैं। ऐश्वर्य कहकर उपदेश करनेका भाव यह है कि ऐश्वर्य समझनेसे संदेह और दुःख दूर होता है।— यहाँ भ्रान्त्यापह्नुति अलंकार है।

टिप्पणी—३—*'अति बड़ भागी'* कहनेका भाव कि वैराग्य होनेसे भाग्यवान् हैं, विवेक होनेसे बड़भागी हैं और सेवक होनेसे अति बड़भागी हैं। क्योंकि वैरागी वैराग्य करते हैं, ज्ञानी ज्ञान करते हैं जिससे मोक्ष मिले और सेवक मोक्षका त्याग करके सगुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं। वैराग्यसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे उपासना। यथा—*'जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥ होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥'* (२। ९३। ४-५)

प्र०—नर अर्थात् सामान्य मनुष्य। किसीका मत है कि इसी उपदेशानुसार अङ्गदने रावणकी बातका खण्डन किया जब उसने रघुनाथजीको 'नर' कहा था। यथा—*'तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।'* (६। २५) अङ्गदका उत्तर—*'बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥ सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥ जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥ तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस*

*अभागा॥ राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥'''''* (६। २६) पुनः, *'राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥ सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहि एक सर। बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥'* (६।३२)

नोट—१ वाल्मीकीयमें यह प्रसङ्ग नहीं है। अध्यात्ममें हनुमान्‌जीके इस प्रकारके वाक्य हैं, यथा—**'अन्यद्‌गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत। रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥'''''''''' वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः॥'** (७। १६, १९) अर्थात् हे पुत्र! कुछ परमगुप्त रहस्य मैं कहता हूँ, सुनो। श्रीरघुनाथजी मनुष्य नहीं हैं किंतु साक्षात् अविनाशी नारायण भगवान् हैं''''हम वैकुण्ठवासी पार्षद हैं। पर सिन्धुतीरपर नहीं किंतु रास्तेहीमें बिलसे निकलनेके बाद। भट्टिकाव्य-रामायणमें जाम्बवान्‌का नाम आया है, यथा—**'जाम्बवान् दुःखितान् दृष्ट्वा समस्तान् कपिसत्तमान्'''''**।

## दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
## सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब* त्यागि॥ २६॥

अर्थ—प्रभु अपनी इच्छासे देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंके लिये (जहाँ) अवतार लेते हैं, वहाँ सब मोक्षोंको छोड़कर सगुण उपासक उनके साथ रहते हैं॥ २६॥

यथा—**'मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि। वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया॥'**(अध्यात्म ७। १९) अर्थात् परमात्मा अपनी इच्छासे मनुष्यभावको प्राप्त होते हैं और उन्हींकी मायाके योगसे हम सब (पार्षद) वानररूपसे उत्पन्न हुए।

टिप्पणी—१ प्रथम कहा कि भगवान् 'अज' हैं। जो अजन्मा है उसका जन्म कैसे हो सकता है? इसको यहाँ कहा कि निज-इच्छासे प्रभु अवतार लेते हैं; जैसा कि मनुजीसे प्रभुने स्वयं कहा है—*'इच्छामय नर बेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥'* (१। १५२। १) यह कहकर अवतारका कारण कहा कि *'सुर महि गो द्विज लागि'* अवतरित होते हैं।

टिप्पणी—२—'सब मोक्ष'। मोक्ष कई प्रकारका कहा गया है—सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, कैवल्य, ऐक्य, सामीप्य। इनमेंसे सामीप्यको ग्रहण करते हैं, शेष सबको त्याग देते हैं। [**सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥'** (भा० ३। २९। १३) **'न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत्॥'** (भा० ११। १४। १४) अर्थात् मेरे देनेपर भी मेरे भक्त सालोक्यादि पाँचों मुक्तियोंको, ब्रह्मपद, महेन्द्रपद सार्वभौमराज्य, पातालराज्य, योगसिद्धि और मोक्षको भी नहीं चाहते, एकमात्र मुझीको, मेरी सेवाको चाहते हैं।]

पाँड़ेजी—सगुण ब्रह्मके उपासक इन चारोंको त्यागकर केवल भक्तिके अनुरागी होते हैं। यथा—*'जन्म जन्म रति रामपद यह बरदान न आन।'*

गौड़जी—इस दोहेसे भी वानर-सेनाके प्रकृति-रहस्यका उद्‌घाटन होता है। भगवान्‌के विग्रहमें मोक्षसुख, भोगनेवाले उपासक भक्त, जब-जब जहाँ-जहाँ अपनी इच्छासे प्रभु अवतार लेते हैं, तब-तब मोक्षको त्यागकर किसी-न-किसी रूपमें वहाँ-वहाँ उनके संग रहते हैं। जब भगवान् स्वयं लीलाके लिये अपनी मायाके बन्धनमें—अपनेको बाँधकर अवतार लेते हैं, तब तो जिसे मोक्ष कहते हैं वह अवस्था तो भगवान्‌के बन्धनमें आनेसे शवकी तरह हो गयी। इसीलिये मोक्ष-अवस्थारूपी शवका विग्रह-निर्माता सुर वा उपासक भक्त त्याग कर देते हैं। यहाँ 'मोक्ष-सब' 'मोक्षशव' है। 'मोक्ष-सब' ही समीचीन पाठ है। यहाँ 'सगुन उपासक' से साधारण उपासक अभिप्रेत नहीं है। यहाँ वही देवगण पार्षदादि अभिप्रेत हैं जिनका संग छूट नहीं सकता। उसी ओर *'हम सब सेवक अति बड़भागी'* का इशारा है; क्योंकि जिसकी बाट जोह रहे थे कि रंग-मञ्चपर कब आवेंगे उसे पा गये। अपने अभिनयद्वारा सेवाका अवसर भी आ गया।

* सुख—(ना० प्र०, का०)।

**एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदरा सुनी संपाती॥ १॥**
**बाहेर होइ देखि* बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा॥ २॥**
**आजु सबहि कहुँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चलेउ† अहार बिनु मरऊँ॥ ३॥**
**कबहुँ न मिल‡ भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा॥ ४॥**

अर्थ—इस प्रकार जाम्बवान्‌जी बहुत तरहसे कथा कह रहे हैं। (इनकी वाणी) पर्वतकी कंदरामें सम्पातीने सुनी॥ १॥ बाहर निकलकर सम्पातीने बहुत-से वानरोंको देखकर वह बोला कि जगदीशने मुझे भोजन दिया॥ २॥ आज सभीको खाऊँगा, बहुत दिन बीत गये बिना भोजनके मर रहा था॥ ३॥ कभी पेट भर भोजन नहीं मिलता था, आज विधाताने एक ही बार दे दिया॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) प्रथम जाम्बवन्तका कहना लिखते हैं, यथा—*'जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी॥'* और उसकी समाप्तिपर यहाँ सब वानरोंका कहना लिखते हैं—*'एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती।'* यह कैसा? उत्तर—वाल्मीकिजी लिखते हैं कि वानरोंने प्रथम रामवनवाससे लेकर वालि-वध और रामरोष कपित्रासतककी कथा कही। उसके पश्चात् जाम्बवान्‌ने कथा कही। ग्रन्थकारने जाम्बवान्‌की कथाके समाप्तिपर उन सबका कथन भी इस चौपाईमें इकट्ठा कर दिया। (ख) *'बहु भाँती'* पद दिया, क्योंकि भिन्न-भिन्न रामायणोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी कथाएँ ऋषियोंने वर्णन की हैं। इस पदसे सबका समावेश यहाँ हो गया। [वाल्मी० ५५। २१, २२ में लिखा है कि अङ्गदजीके वचन सुनकर वानरोंने प्रायोपवेशन करना उचित समझा। (दर्भपर बैठकर) वे श्रीरामचन्द्रके वनवास, दशरथ महाराजका मरण, जनस्थानका एवं जटायुका वध, सीताहरण, वालिवध और रामचन्द्रजीका कोप कहते हुए, सब भयभीत हुए, पर्वतशिखरके समान बड़े-बड़े वानरोंके बैठनेसे वह पर्वत गर्जनेवाले मेघोंसे आकाशके समान शब्दायमान झरनावाला मालूम पड़ा।' यथा—'**रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च ॥ जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः। हरणं चैव वैदेह्या वालिनश्च वधं तथा॥ रामकोपं च वदतां हरीणां भयमागतम्॥ स संविशद्भिर्बहुभिर्महीधरो महाद्रिकूटप्रतिमैः प्लवंगमैः। बभूव संनादितनिर्झरान्तरो भृशं नदद्भिर्जलदैरिवाम्बरम्॥**' (२१—२३) अर्थात् पुरानी वनवासकी कथा कहते हुए वानरोंको डर लग गया—इनमें आगे-पीछे अथवा किसीका नाम नहीं दिया गया है और न जाम्बवन्तका समझाना ही है।] (ग) ☞ गृध्रका कन्दरामें बैठे हुए कथा सुनना कहते हैं। कथा-श्रवणसे रामभक्तोंका दर्शन हुआ। भक्तोंके दर्शनसे एवं स्पर्शसे पक्ष जमे और सब दुःख दूर हुए। वानर श्रीसीताजीको खोजते-खोजते व्याकुल हुए, सुध न मिली; कथा कहनेसे बैठे-ही-बैठे सम्पातीसे सुध मिल गयी। यह रामकथाका प्रभाव है।

टिप्पणी—२ (क) *'अहार दीन्ह जगदीसा'।* जगत्‌के ईश अर्थात् पालनकर्ता हैं, अतः मेरे लिये सब वानर यहाँ इकट्ठे आ प्राप्त हुए, नहीं तो इतने वानर पराक्रमसे एकत्र किये न होते। [(ख) *'आजु सबहि कहुँ……'* इति। अर्थात् ये सब प्रायोपवेशन करके मरनेको बैठे हैं। जैसे-जैसे एक-एक मरता जायगा तैसे-तैसे मैं खाता जाऊँगा। इस तरह प्रतिदिन खाते-खाते सबको खा लूँगा। यथा—'**परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम्।**' (वाल्मी० ५६। ५) '**एकैकशः क्रमात्सर्वान्भक्षयामि दिने दिने।**' (अ० रा० ७। ३१) जीवित वानरोंको खानेको नहीं कहता। (ग) *'दिन बहु……'* इति। इससे जनाया कि इधर बहुत दिनोंसे भोजन न मिला था। आगे *'कबहुँ न मिल……'* भी देखिये]।

टिप्पणी—३ *'कबहुँ न मिल भरि उदर……'* इति। कुछ-कुछ मिलता रहा, भरपेट न मिलता था। *'आजु दीन्ह बिधि……'* अर्थात् विधि हैं, वे सबका विधान करते हैं; विधानसे सबको आहार देते हैं; हमारे कर्मानुसार आज उन्होंने हमको भी दिया; यथा—'**विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते। यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान्मह्य-**

* देखे—(ना० प्र०) † चले—(ना० प्र०), चलेउ—(भा० दा०)। ‡ मिल—(ना० प्र०, का०, मा० त० भा०), मिलै—(भा० दा०, पं० रा०गु० द्वि०।)

मुपागतः॥' (वाल्मीकीय० ५६। ४) अर्थात् जिस प्रकार कर्मानुसार लोकमें मनुष्यको फल मिलता है, उसी प्रकार पूर्वार्जित कर्मसे प्राप्त यह भोजन मेरे लिये आया है। [यहाँ 'प्रहर्षण अलंकार' और 'समाधि' का सन्देह सङ्कर है—(वीर)]

नोट—१ *'कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा'* का कारण था कि स्वयं पक्षहीन था। उसका पुत्र उसे ला देता था। सम्भव है कि इसने डाँटा हो तबसे वह और भी कम खबर लेने लगा हो। अथवा, वह पिताके लिये भोजन लाता है पर नित्य नहीं, समय-समयपर लाता रहा है, इसीसे पेट कभी न भरा। सम्पातीने कहा भी है कि हमलोग बड़े भूखे होते हैं। यथा—'**अहमस्मिन्गिरौ दुर्गे बहुयोजनमायते। चिरान्निपतितो वृद्धः क्षीणप्राणपराक्रमः॥ ते मामेवं गतं पुत्रः सुपार्श्वो नाम नामतः। आहारेण यथाकालं बिभर्ति पततां वरः॥ तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजङ्गमाः। मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम्॥ स कदाचित्क्षुधार्तस्य महाहाराभिकाङ्क्षिणः। गतः सूर्येऽहनि प्राप्तो मम पुत्रो ह्यनामिषः॥ स मयाहारसंरोधात्पीडितः प्रीतिवर्धनः। अनुमान्य यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत्॥**' (वाल्मी० ५९। ७—११) अर्थात् सम्पातीने वानरोंसे कहा था कि 'मैं बहुत दिनोंसे इस विशाल पर्वतपर बलहीन होकर पड़ा हूँ। मेरी ऐसी अवस्था होनेपर सुपार्श्व नामक मेरा पुत्र समय-समयपर मेरा आहार देता है। गन्धर्व बड़े कामी, सर्प बड़े क्रोधी, पशु बड़े भीरु और हमलोग बड़े भूखे होते हैं। मैं एक समय भूखा था। मेरा पुत्र भोजन लानेको गया पर संध्या-समय बिना भोजनके लौटा। मैंने उसे डाँटा तब उसने क्षमा माँगकर यथार्थ बात कही।

वि० त्रि०—*'बाहेर होइ""जगदीसा'* इति। गिर कन्दरासे सम्पाती बाहर आये। तो देखा बहुतसे बन्दर हैं। यहाँ पराक्रमी सम्पातीने पक्षहीन होनेपर भी बन्दरोंको कुछ समझा नहीं, बोल उठा कि आज जगदीशने आहार दिया। जिस भाँति सुरसाने हनुमान्‌जीसे कहा कि *'आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा।'* ऐसा सुनकर जिस भाँति हनुमान्‌जी धर्मपाशसे बँध गये, उसी भाँति सम्पातीके वचनसे बन्दरोंने अपनेको धर्मपाशसे बँधा हुआ माना, अतः डर गये, यथा—*'डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥'*

इन दोनोंके बीचमें जो दो चौपाइयाँ *'आजु सबहि कर भच्छन करऊँ।""एकहि बारा'* मिलती हैं, वे भी बेतुकी हैं। सबको खा जानेवाली बात किसी भाँति मनमें नहीं बैठती, कोदवरामजीकी प्रतिमें वे दोनों चौपाइयाँ भी नहीं हैं, अतः तर्कानुगृहीत होनेसे यहाँ कोदवरामजीके पाठको ही मैं प्रमाण मानता हूँ। मेरा कोई आग्रह नहीं है अपना विचार लिख दिया, उचित समझें तो महात्मा लोग अपनावें।

**डरपे गीधबचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥५॥**
**कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी॥६॥**

अर्थ—गृध्र सम्पातीके वचन कानोंसे सुनकर सब डरकर बोले कि हमने जान लिया अब सत्य ही हमारा मरण हुआ॥५॥ गृध्रको देखकर सब कपि उठ खड़े हुए। जाम्बवान्‌के मनमें विशेष सोच हुआ॥६॥

☞ मिलान कीजिये—'**श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः।** (अध्यात्म० ७। ३१) '**भक्षयिष्यति नः सर्वानसौ गृद्ध्रो न संशयः। रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किंचिद्धरीश्वराः॥ सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि। वृथानेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम्॥**' (३२-३३) अर्थात् गृध्रके वचन सुनकर वानर भयभीत हो गये। हम सबको यह खा लेगा, संदेह नहीं। हमने न तो कुछ रामकार्य ही किया, न कुछ सुग्रीवका हित किया (कि वह श्रीरामजीसे उऋण हो जाता) और न कुछ अपना ही हित किया; अब इस गृध्रद्वारा मृत्युको प्राप्त हैं।

टिप्पणी—१ '**डरपे**' गृध्रका स्वरूप देखकर और उसके वचन सुनकर जाना कि ऐसे स्वरूपसे यह सबको खा सकता है। '**ते प्रायमुपविष्टास्तु दृष्ट्वा गृध्रं प्लवंगमाः। चक्रुर्बुद्धिं तदा रौद्रां सर्वान्नो भक्षयिष्यति॥**' (वाल्मी० ५७। २) अर्थात् उस गृध्रको देखकर वानरोंने ऐसा भयंकर विचार किया कि वह सबको खा लेगा। पुनः यथा—'**पश्य सीतापदेशेन साक्षाद्वैवस्वतो यमः। इमं देशमनुप्राप्तो वानराणां**

**विपत्तये॥'** (५६। ७) अर्थात् अंगदने हनुमान्‌जीसे कहा कि देखो सीताके व्याजसे साक्षात् यमराज इस वेषमें बानरोंपर विपत्ति डालने आये हैं। अतएव कहा कि ***'अब भा मरन सत्य'''''***। अर्थात् श्रीसीताजीकी खबर न मिलनेसे चाहे सुग्रीव न भी मारते, प्रायोपवेशसे चाहे मृत्यु न होती, श्रीसीताजीकी सुध मिल जाती; पर अब तो मरण सत्य ही होगा, संदेह नहीं। इस कथनसे शङ्का होती है कि 'हनुमान्, जाम्बवान् आदि अनेक बड़े-बड़े योद्धा यहाँ थे, क्या ये सब मिलकर भी उससे न लड़ सकते थे; जो भयभीत होकर ऐसा कह रहे हैं?, समाधान यह है कि इस समय श्रीसीताजीकी खबर न मिलनेके शोच और दोनों प्रकारकी मृत्युके भयसे सब वीर व्याकुल हो रहे हैं, इसीसे सम्पातीके वचन सुनकर डर गये, उनको अपने पराक्रमकी सुध-बुध न रह गयी थी। भयभीतकी गणना निर्बलोंमें होती है। यथा—***'पंगु गुंग रोगी बनिक भीति भूखजुत जानि। अंध अनाथ अजाति शिशु अबला अबल बखानि॥'*** (कबिप्रिया ग्रंथ) [उसने कहा है कि ***'मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा'***, यह सुनकर सब अपनेको धर्मपाशमें बँधे हुए जानकर डरे (वि० त्रि०)]

मा० म०—'वानरोंने जाना कि सत्य ही मरण हुआ। भाव कि सम्पातीने देखा कि सब बन्दर नियम करके बैठे हैं, इस अवस्थामें वे लड़ेंगे नहीं; अतएव कहा कि मुझको आहार मिला। यही विचार करके कपि भी डर गये कि इस अवस्थामें लड़ सकते नहीं, अवश्य मरना होगा, प्रथम मरनेके लिये प्रायोपवेशन करते ही थे पर जाम्बवन्तके कहनेसे संदेह आ पड़ा। परंतु इस गीधद्वारा अपमृत्यु विचारकर डरे।'—(वै०—गृध्रके खा लेनेसे कुमृत्यु होकर यमलोकको जायँगे यह समझकर डरे।)

टिप्पणी—२ (क) ***'कपि सब उठे'*** अर्थात् कुशासन बिछाकर सिंधुतीर बैठे हुए थे, अब भयभीत होकर उठ खड़े हुए। सुग्रीवका भय था ही, उसपर इसके वचन सुने; इससे डर-पर-डर व्याप्त हो गया; क्योंकि ***'रहत न आरतके चित चेतू।'*** (ख) ***'जामवंत मन सोच बिसेषी'*** इति। 'विशेषी' से जनाया कि सोच तो सबको है पर इनको सबसे अधिक है। विशेष सोच इससे कि उसने अंगदका दुःख देखकर कथा कहकर उनका दुःख दूर किया था, अब इस दुःखके दूर करनेका कुछ उपाय नहीं सूझता। अथवा, जाम्बवंत सबका सँभाल करनेवाले हैं; इसीसे इनको विशेष सोच हुआ कि हमारे देखते ही क्या सब वानर खा लिये जायँगे। [विशेष सोच यह कि एक गृध्रको देख यह दशा है, रावणके संग्राममें क्या करेंगे। (प्र०) कहाँ तो हम सगुण ब्रह्मकी कथा कह रहे थे, कहाँ यह आफत बीचमें आ पड़ी। पुनः सोच यह कि हमने इनको अवतार बताया और समझाया, फिर भी ये सब ऐसे कायर बने रहे, ऐसे पोच-विचार इनमें बने हुए हैं। (प्र० सं०) वा, धर्मपाशमें बँधे होनेका सोच। (वि० त्रि०)]

**कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥ ७॥**
**रामकाज कारन तनु त्यागी। हरिपुर गयेउ परम बड़ भागी॥ ८॥**

अर्थ—अंगदने मनमें विचारकर कहा कि जटायुके समान कोई धन्य नहीं है॥ ७॥ रामकार्यके लिये शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी हरिपुरको गया॥ ८॥

टिप्पणी—१ ***'कह अंगद'''''*** इति। (क) ☞ देखिये, अंगदका दुःख देखकर जाम्बवान् बोले थे, और अब जाम्बवन्तका दुःख देखकर अंगद बोले। इस प्रकार सूचित करते हैं कि दोनों बड़े बुद्धिमान् हैं। (ख) अंगदकी बुद्धिमानी दिखाते हैं। उन्होंने विचार किया कि यह गृध्र है इसको गृध्रका समाचार सुनावें, उससे यह अवश्य प्रसन्न होगा। (ग) ***'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'*** भाव यह कि उधर जाम्बवन्तने जो कहा था कि हम सब अत्यन्त बड़भागी सेवक हैं, उसपर ये कहते हैं कि जटायुके समान कोई भाग्यवान् नहीं है। क्योंकि वह रामकार्यके लिये तन त्यागकर हरिपुरको गया। वह हम सबसे अधिक बड़भागी है, वह परम बड़भागी है। गीतावलीमें बड़भागी होनेका हेतु विस्तारसे दिया है। (आ० ३१। ६—१० और ३। ३२ देखिये)।

टिप्पणी—२ ***'हरिपुर गयउ परम बड़ भागी'*** इति। पराये कार्यके लिये शरीर त्याग करे वह भाग्यवान् है और जटायुने रामकार्यके लिये तन त्याग किया, अतः वह बड़भागी है। पुनः, भगवान्‌की गोदमें बैठकर

तन त्याग किया, भगवान्‌के हाथसे दाह पाया और हरिपुरको गया। अतएव परम बड़भागी है। यथा—'**अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः। मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दमः॥**' (अध्यात्म० सर्ग ७। ३४) अर्थात् बड़े आश्चर्यकी बात है कि धर्मात्मा, बुद्धिमान् और शत्रुनाशक जटायुने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये प्राणत्याग किये और उस मोक्षको प्राप्त हुए जो योगियोंको भी दुर्लभ है।

नोट—१ वाल्मी० ५६ में अङ्गदने कहा है कि—देखो, पक्षियोनिमें भी उत्पन्न प्राणी श्रीरामजीका प्रिय कार्य करते हैं। धर्मज्ञ जटायुने उनका प्रिय किया। हमको भी उचित है कि श्रीरामचन्द्रजीके लिये थककर हमलोग भी अब अपने प्राणोंका त्याग करें।—यह भाव भी इन अर्धालियोंमें लिया जा सकता है। यथा—'**प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा। राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः॥**' (१२)

दीनजी—तात्पर्य यह कि एक गृध्र जटायु था, जिसने रामकार्यमें अपने प्राणतक दे दिये और एक गीध यह है कि रामदूतोंको भक्षण करनेको कहता है। ☞ यह युवराज अङ्गदकी नीतिकुशलता है। एक जाति भाईकी प्रशंसा करके उसी जातिके अन्य एक व्यक्तिकी सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है। अङ्गदकी यह चतुर नीति काम कर गयी। (पां०) यह गूढ़ोत्तर अलंकार है—(वीर)

प० प० प्र०—१ मुख्य कारण तो *'उर प्रेरक रघुबंसबिभूषण'* हैं। जब-जब रामदूत संकटमें पड़े या किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं, तब-तब ऐसी कुछ अनपेक्षित घटना उपस्थित हो जाती है, यह सुन्दरकाण्डमें पद-पदपर देखनेमें आता है।

प० प० प्र०—२ यहाँ मानवी मानसशास्त्रका एक उदाहरण सामने खड़ा किया है। जब कोई अद्भुत बात देखने-सुननेमें आती है तब भूतकालमें अनुभूत उसके समान बातकी स्मृति सहज ही होती है। घरमें जब कोई बड़ा सर्प मारा जाता है तब प्रत्येक व्यक्ति साँपोंहीकी बातें सुनाने लगता है।

वि० त्रि०—उस भीषणाकार गीधको देखकर, और उसीकी बात सुनकर सब बंदर खड़े हो गये, न तो वे भागते हैं और न सब मिलकर उसपर आक्रमण ही कर रहे हैं, सब जाम्बवान् और अङ्गदपर दृष्टि लगाये हुए हैं कि इनकी क्या आज्ञा है। जाम्बवान्‌जी सोचमें पड़ गये कि इस धर्मपाशसे निकलनेका कोई मार्ग समझमें नहीं आ रहा है, पर अङ्गदजी विचार करके ऐसी बात बोले जो कि प्रसंगप्राप्त विषयसे सम्बद्ध भी हो और सम्पातीके लिये उपदेशरूप भी हो। भाव यह कि यह बात सत्य है कि हमलोग जगदीशके सेवक होनेमें अत्यन्त बड़भागी अवश्य हैं, पर सरकारकी सेवामें शरीर छोड़नेका अवसर हमलोगोंको नहीं मिला, ऐसा अवसर तो गीधराज जटायुको मिला, जिसने रामकाजके लिये शरीर छोड़कर विष्णुलोक प्राप्त किया। (यह भाव लिखकर वि० त्रि० जीने काट दिया था पर मैंने उसे दे दिया है।)

**सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥ ९ ॥**
**तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥ १० ॥**
**सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥ ११ ॥**

अर्थ—हर्ष-शोकसंयुक्त वाणी सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरोंके पास आया। वानर डरे॥ ९॥ उसने उन्हें निर्भय करके उनके पास जाकर जटायुकी कथा पूछी। उन्होंने सब कथा उसे सुनायी॥ १०॥ भाईकी करनी सुनकर सम्पातीने बहुत तरहसे रघुनाथजीकी महिमा वर्णन की॥ ११॥

टिप्पणी—१ (क) *'हरष सोक जुत बानी'।* वाणीमें हर्ष और शोक दोनों हैं। उसका पुरुषार्थ और हरिधामकी प्राप्ति हर्षके कारण हैं और मृत्युका समाचार शोकका कारण है।* (ख) *'आवा निकट'* इति। पूर्व कन्दरामें बैठे वानरोंकी बातें सुनीं, फिर निकलकर उनको देखा—*'बाहर होइ देखे बहु कीसा'*; अब जटायुका वृत्तान्त पूछनेके लिये निकट आया। वानरोंने समझा कि खाने आता है, अतः डरे।

टिप्पणी—२ (क) *'तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई'* इति। प्रथम दूरसे अभय किया, तब पास

* 'प्रथम समुच्चय अलंकार' है।

जाकर पूछा (इस बातको जनानेके लिये *'जाई'* क्रिया पीछे दी), जिसमें वानर भाग न जायँ। [नोट—*'तिन्हहिं अभय करि'* से जनाया कि उसके वचनपर उनको विश्वास न था। वे यही समझते थे कि इस बहानेसे आकर खा लेगा। यथा—'**शोकाद्भ्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा वानरयूथपाः। श्रद्दधुर्नैव तद्वाक्यं कर्मणा तस्य शङ्किताः।**''''(वाल्मी० ५७। १) अर्थात् शोकके कारण सम्पातीका टूटा हुआ स्वर सुनकर भी वानरोंने विश्वास न किया, क्योंकि उसके कर्मोंसे वे शङ्कित हो गये थे। तब अङ्गदने सब कथा कही। यथा—'**उच्यतां वो भयं मा भून्मत्तः प्लवगसत्तमाः॥ तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ। रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः॥ सीतया भार्यया सार्द्धं विचचार महावने।**''''॥' (४५) (अ० रा० ७। ३६-३७, ४५) अर्थात्—हे वानरो! कहो, आप न डरें, तब अङ्गद उठे और कहने लगे कि भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें रहा करते थे। जन्मसे यहाँतकको कथा है] (ख) *'कथा सकल'* सुनानेका भाव कि पूर्व जो वचन अङ्गदने कहे, उसमें जटायुकी कथा संक्षेपसे थी, अब विस्तारपूर्वक कही। अध्यात्म० सर्ग ७ में पूरी कथा दी है।

टिप्पणी—३ *'बंधु कै करनी'* में *'करनी'* शब्द पुरुषार्थवाचक है; यथा—*'जूझे सकल सुभट करि करनी।'* (१। १७५। ६) और रघुनाथजीने अपने हाथसे उसकी क्रिया की, यह करनी सुनकर रघुनाथजीकी महिमा वर्णन की कि उन्होंने ऐसे अधमको मुक्ति दी। यथा—*'गीध अधम खग आमिषभोगी। गति दीन्हीं जो जाँचत जोगी॥'* (३। ३३। २) यहाँ *'करनी'* पद मृतक-क्रियाका वाचक है, यथा—*'पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी।'* (२। १७१। १) (तात्पर्य कि *'करनी'* पद श्लेषार्थी है, दीपदेहरी-न्यायसे उसे दोनों ओर लेना चाहिये)। महिमा यह कि रावण ऐसे वीरको उसने विरथ और मूर्छित कर दिया। (इत्यादि जो अरण्यकाण्डमें लिखा जा चुका है।)

**दो०—मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।**
**बचन सहाइ* करबि मइँ पैहहु खोजहु जाहि॥२७॥**

अर्थ—मुझे सिंधुके किनारे ले चलो। मैं उसे तिलाञ्जलि दूँ। फिर मैं तुम्हारी वचनसे सहायता करूँगा (अर्थात् बताऊँगा कि श्रीसीताजी कहाँ हैं), आपलोग जिसे ढूँढ़ते हो उसे पाओगे॥२७॥

टिप्पणी—१ (क) सम्पातीने यह बात ज्ञानके बलसे कही। शंका—'जब गृध्र वानरोंके पास आया तब उसे कहना चाहिये था कि *'मोहि लै चलहु'*, पर उसने *'लै जाहु'* कहा, यह क्यों? समाधान—वानर पहाड़के नीचे बैठे हैं और वह कन्दरासे निकलकर इनके ऊपर पहाड़पर आया, यही निकट आना है। अब वह पहाड़परसे कह रहा है कि तुमलोग आओ और मुझको ले जाओ, मैं पहाड़परसे उतर नहीं सकता।। (वाल्मी० ५६। २४) यथा—'**सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्न शक्नोमि विसर्पितुम्। इच्छेयं पर्वतादस्मादवतर्तुमरिन्दमाः॥**' अर्थात् सूर्यकिरणसे पक्ष जल जानेके कारण मैं चल नहीं सकता, पर्वतसे उतरनेकी इच्छा है, आप मुझे उतारें। (ख) धर्मशास्त्रमें लिखा है कि जब मृतककी बात सुने तभी सूतक लगता है, इसीसे भाईका मरण सुनकर क्रिया करनेको है।

टिप्पणी—२ वचनसे सहायता करूँगा, इस कथनका तात्पर्य यह है कि शरीरसे सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि मैं वृद्ध हूँ। यथा—'**वाक्साहाय्यं करिष्येऽहं भवतां प्लवगेश्वराः। भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम्। पश्चात् सर्वं शुभं वक्ष्ये भवतां कार्यसिद्धये।**' (अध्यात्म० ७। ४८-४९) अर्थात् हे श्रेष्ठ वानरो! आपकी सहायता मैं वाणीसे करूँगा; मुझे भाईको जलाञ्जलि देनेके लिये जलके तीर ले चलो। पश्चात् आपके कार्यके लिये शुभ वचन कहूँगा। (वाल्मी० ५८। १२) में भी ऐसा ही है। यथा—'**निर्दग्धपक्षो गृध्रोऽहं गतवीर्यः प्लवंगमाः। वाङ्मात्रेणापि रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम्॥**' अर्थात् मैं जले पक्षोंका गृध्र हूँ,

* सहाय—(ना० प्र०)। सहाइ-(भा० दा०)

बलहीन हूँ, अतएव केवल वचनद्वारा श्रीरामजीकी सहायता कर सकता हूँ। यहाँ शंका हो सकती है कि जब उसे समुद्रतटतक आनेका सामर्थ्य न था तब वह सबको भक्षण करनेको कैसे कहता था? समाधान यह है कि वानरलोग अपनी मृत्यु कह रहे थे, यही बात सुनकर उसने कहा था कि इनकी मृत्यु होगी तब मैं सबको भक्षण करूँगा। यथा—'**परंपराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम्**' (वाल्मी० ५६। ५)

प्र०—तीन तट कहे हैं। १ *'नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा॥'* (२५। ६) *'अस कहि लवनसिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥'* (२६। १०) *'मोहि लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि।'* एवं *'अनुज क्रिया करि सागर तीरा।'*—भाव यह है कि कपिलोग मध्य तट (बीच) में रहे; क्योंकि अनशनव्रत करनेके लिये प्रथम तटपर रहते तो फूल-फल खाते देखकर रहा न जाता। सुन्दरकाण्डमें लिखा है कि *'एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर। जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥'* *'सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥ 'खाएउँ फल प्रभु लागी भूखा॥'* दूसरे तटमें बालू थी और तीसरेमें जल। अतएव मध्यमें रहे।

नोट—१ पहले जटायुका समाचार पूछनेको पर्वतसे उतारे गये, यथा—'**अवतार्य गिरेः शृङ्गाद् गृध्रमाहाङ्गदस्तदा।**' (वाल्मी० ५७। ४); फिर तिलाञ्जलिके लिये यहाँसे समुद्रतटपर ले जानेको कहा, जहाँ जल है, यथा—'**समुद्रं नेतुमिच्छामि भवद्भिर्वरुणालयम्। प्रदास्याम्युदकं भ्रातुः स्वर्गतस्य महात्मनः॥**' (वाल्मी० ५८। ३३) अर्थात् मैं महात्मा भाईको जल देना चाहता हूँ, मेरी इच्छा है कि आप मुझे समुद्रके तीर ले चलें।

प्र०—१ गृध्र तिलाञ्जलिका अधिकारी कैसे? उत्तर—गीतावलीमें वचन-सहायतकका ही अधिकार अपना कहा है, आगे नहीं। वह दिव्य और कामरूप है, इससे जलाञ्जलि दी। (भगवान्ने उसके भाईकी दाह-क्रिया की, तब यह जलाञ्जलिका भी अधिकारी न होगा तो क्या? वह तो जीवन्मुक्त है।—मा० सं०) २—कन्दरासे वानरोंतक पहुँचनेकी सामर्थ्य थी और तटतक जानेकी न थी? इसमें कारण है। परीक्षार्थ ऐसा किया। यदि ये रामदूत हैं तो मेरे पक्ष स्पर्शसे जम आयँगे और यदि राम-दूत नहीं हैं तो *'मोहि अहार दीन्ह जगदीसा।'*

गौड़जी—गीधके तिलाञ्जलिके अधिकारी होने-न-होनेका प्रश्न यहाँ व्यर्थ है। स्मृतियाँ मनुष्यको रीति बताती हैं कि तिलाञ्जलि देनेका कौन पात्र है, कौन नहीं। गीध-गीधमें तिलाञ्जलिका आदान-प्रदान हो सकता है या नहीं, यह प्रश्न गीधोंकी स्मृतिका है, मानव-स्मृतियोंका नहीं। यह प्रश्न तो जटायुके प्रेत-कर्म करनेपर भगवान्के सम्बन्धमें हो सकता है। वहाँ भी भगवान्ने पिताके सखाके नाते प्रेत-कर्म किया। तर्पणमें तो आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त अखिल सृष्टिका तर्पण किया जाता है और पिण्डदानके अन्तमें बलिवैश्वदेव सभी तरहके प्राणियोंके तृप्त्यर्थ करते हैं। ऐसी शङ्का व्यर्थ है। अच्छे कामोंमें यह शंका तो चाहिये नहीं; फिर भगवान् तो मर्यादापुरुषोत्तम हैं। वह तो अपने आचरणसे नीति और शीलका आदर्श दिखाते हैं। यथा—'**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥**' (गीता)

**अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥ १॥**
**हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥ २॥**
**तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि नियरावा॥ ३॥**
**जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥ ४॥**

अर्थ—समुद्रके तीर छोटे भाईकी क्रिया करके अपनी कथा कही—हे वीर वानरो! सुनो॥ १॥ हम दोनों भाई थे, प्रथम (उठती वा चढ़ती) जवानीमें हम दोनों भाई सूर्यके निकट जानेके लिये आकाशमें उड़े॥ २॥ वह तेज सह न सका इससे लौट आया। मैं अभिमानी था, इससे सूर्यके (कुछ) निकट गया॥ ३॥ अत्यन्त अपार तेजसे मेरे पंख जल गये, तब मैं घोर चिक्कार करके पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) क्रिया मुख्य है, इससे प्रथम क्रिया की तब कथा कही। 'वीर' सम्बोधनका भाव कि तुम सब वीर हो, मेरी वीरता सुनो। [सम्पाती अपनी कथा बन्दरोंके उत्साह-वर्धनके लिये सुनाने लगे। समुद्र पार भेजना है, इसलिये अपने जवानीकी कथा सुनायी कि सूर्यके निकट जानेका उत्साह मुझे कौतुकके लिये था, फिर चन्द्रमा मुनिकी कथा सुनायी। इस बातके द्योतित करनेके लिये कि त्रिकालज्ञ मुनिने भविष्यको वर्तमानकी भाँति देख लिया था। उन्होंने कहा था कि श्रीसीताजीको खोजते बन्दर यहाँ आवेंगे, उन्हें तुम सीताजीको दिखा देना, अतः मैं तुम्हें सीताजीको दिखा दूँगा, सोच न करो। (वि० त्रि०)] (ख) *'मैं अभिमानी'* का भाव कि यदि मैं भी लौट पड़ता तो दोनों भाइयोंका बल बराबर समझा जाता और मुझे अपने बलका बड़ा अभिमान था; अपनेको उससे अधिक बलवान् समझता था। अतएव सोचा कि मैं यहाँसे क्यों लौट पड़ूँ। इस अभिमानसे सूर्यके निकट गया। अभिमानका फल दुःख है, वह मुझे मिला। *'हम द्वौ बंधु'''''उड़ाई'* में अ० रा० के **'अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ॥ बलेन दर्पितावावां बलजिज्ञासया खगौ।'** (८। २-३) इन श्लोकोंका भाव है। अर्थात् हम दोनोंमें कितना बल है यह जाननेके लिये सूर्यमण्डलपर्यन्त जानेको उड़े। (ग)—*'अति तेज अपारा'* का भाव कि जिनका तेज पृथ्वीपर नहीं सहा जाता उनके निकटके तेजकी क्या कहिये। जिस तेजको भाई न सह सका, उसे मैंने सहा, इसीसे मेरे पंख जल गये और मैं भूमिपर गिर पड़ा अर्थात् इधर भूमिकी भी ठोकर लगी।

नोट—१ जटायुकी कथा अरण्यकाण्डमें दी गयी है कि अरुणका पुत्र था, इत्यादि (३। १६) में देखिये। वही यहाँ सम्पातीने कही है।

नोट—२ सम्पातीको कौन पर्वतसे उतारकर लाया? यह बात विनय-पत्रिकासे स्पष्ट होती है। वहाँ हनुमान्‌जीकी स्तुतिमें इनको सम्पातीका दिव्यदेहदाता कहा है, यथा—*'जयति घर्मांशु संदग्ध-संपाति नवपक्ष-लोचन दिव्य-देहदाता'*—(पद २८) इससे ज्ञात होता है कि हनुमान्‌जी उसे गोदमें उठा लाये।

नोट—३ ☞ (उपदेश भागमें) देखिये अभिमानका फल मिला; प्रभुकी कृपा हुई कि शरीर टुकड़े-टुकड़े न हो गया। आगे इससे कार्य होगा, इसीसे यह लीला हुई। रामभक्तोंकी वचनसे ही सहायता करेगा, उसका फल भी देखिये क्या हुआ।

गौड़जी—(१) सूर्यका पिण्ड पृथ्वीसे साढ़े नव करोड़ मीलके लगभग है। प्रकाशकी गति प्रति सेकण्ड १,८६,००० मील है। प्रकाशको सूर्यसे पृथ्वीतक पहुँचनेमें आठ मिनट लगते हैं। जटायु और सम्पाती इतिहासके पूर्व युगके हैं। कम-से-कम बीस लाख और अधिक-से-अधिक पचास करोड़ बरस पहलेके दानवाकार पक्षी हैं। जिनमेसे उसी समयके भारी-भारी योद्धा भीमकाय वानर अत्यन्त भयभीत थे। आजकल साधारण शरीरवाले तेज पक्षी एक घंटेमें डेढ़ सौ मीलतक उड़ते हैं। सम्भवतः उस समय इन पक्षि-दानवोंका वेग उनके बलके अनुरूप अत्यधिक रहा होगा। यदि हम मान लें कि सम्पाती और जटायुका वेग एक मिनटमें केवल सौ मीलका था तो सवा बरसमें यह लोग छः करोड़ मील तय कर सके। छः करोड़ मील तय करनेके पहले ही आँच अत्यन्त भयङ्कर हो जानी चाहिये। यह आँच जटायु न सह सका, लौट आया। सम्पाती बढ़ा तो कुछ आगे जाकर उसके पर झुलस गये।

गौड़जी—(२) यदि हम यह मानें कि इन पक्षियोंका वेग ऐसा असाधारण न रहा होगा तो साधारण वेगसे भी पृथ्वीके वायुमण्डलकी अत्यन्त क्षीण दशामें दस-बीस मील ऊपर पहुँचनेपर इतना अधिक शीतका मुकाबला होता है कि उससे वही अनुभव होता है जो प्रचण्ड तापसे। शरीर जल जाता है। तापकी अत्यन्त कमीसे शरीरकी रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। रक्त निकल जाता है और शरीर सूख जाता है। नाड़ीमण्डल एक बार स्तब्ध वा मृत हो गया तो फिर प्राणीको पृथ्वीपर गिरकर मर जानेके सिवा और गति नहीं है। सम्पातीकी भी यही दशा हुई और वह धरतीपर जीवशेष होकर गिरा। इन रामदासों वानरोंको देखकर उसका नाड़ीमण्डल पुनरुज्जीवित हो गया और बाजू फिरसे कामके हो गये।

**मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥ ५॥**
**बहु प्रकार तेहिं ज्ञान सुनावा। देह जनित अभिमान छुड़ावा॥ ६॥**

अर्थ—वहाँ एक मुनि थे जिनका चन्द्रमा नाम था। मुझको देखकर उनको दया लगी। (सन्त कोमलचित और दयालु होते ही हैं; यथा—*'नारद देखा बिकल जयंता। दया लागि कोमल चित संता॥'* उन्होंने बहुत प्रकारसे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देहसे उत्पन्न) अभिमानको छुड़ाया॥५-६॥

नोट—१ चन्द्रमा ऋषि अत्रिजीके पुत्र हैं; आत्रेय और निशाकर भी इनका नाम है। अध्यात्ममें चन्द्रमा नाम दिया है; यथा—'**बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः।**' (८। ५३) और वाल्मीकीयमें *'निशाकर'* नाम है। अर्थ दोनोंका एक ही है, जैसे सुग्रीव और सुकण्ठ, कुंभज और घटयोनी इत्यादि। चन्द्रमा ऋषिका हाल नोट ४ में है।

नोट—२ *'लागी दया देखि करि मोही'* से अ० रा० के '**चन्द्रमा नाम मुनिराड् दृष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत्। सम्पाते किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम्॥ जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि। दग्धौकिमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे॥**' (सर्ग ८। ८-९) **इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां दयार्द्रविलोचनः॥**' (११) इन श्लोकोंका भाव जना दिया है। अर्थात् वहाँ चन्द्रमा नामके ऋषि रहते थे। उन्होंने मुझे देखकर विस्मयपूर्वक कहा—सम्पाते! तुम्हें इस प्रकार विरूप किसने कर दिया? मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम तो बलवान् हो, फिर तुम्हारे पंख कैसे जल गये? यदि ठीक समझो तो अपना वृत्तान्त कहो। मेरे सब वृत्तान्त कहनेपर मुनिवर दयावश नेत्रोंमें जल भरकर मेरी ओर देखते हुए बोले।

टिप्पणी—१ *'दया लगी तब ज्ञान सुनाया।'* तात्पर्य यह कि गृध्र ज्ञानका अधिकारी नहीं था, मुनिने दयाके कारण इसे ज्ञान सुनाया। [वाल्मीकिजी लिखते हैं कि मुनिने रामजन्मसे लेकर यहाँतकी भविष्य-कथा कही और अध्यात्ममें शरीरकी उत्पत्तिकी कथाका कहना लिखा है। अन्य ऋषियोंने अन्य प्रकारका ज्ञान सुनाना लिखा है। अतएव *'बहु प्रकार'* पद देकर कविने यहाँ सबका मत कह दिया।

टिप्पणी—२—देहका अभिमान छुड़ाया। अर्थात् कहा कि देहसे आत्मा भिन्न है, इसीसे आत्माको दुःख नहीं है। देह जड़ है, इससे इसको दुःख नहीं है। दुःख है देहाभिमानी होनेसे।

नोट—३ मिलान कीजिये—'**देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः॥ कर्म प्रवर्तते देहेऽहंबुद्ध्या पुरुषस्य हि। अहङ्कारस्त्वनादिः स्यादविद्यासम्भवो जडः। चिच्छायया सदा युक्तस्तमायः पिण्डवत्सदा। तेन देहस्य तादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत्॥ देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहङ्कृतेर्बलात्। तन्मूल एष संसारः सुख-दुःखादिसाधकः॥ आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्या तादात्म्यतः सदा। देहोऽहं कर्मकर्ताहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा॥ जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बद्ध्यतेऽवशः। ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम्॥ कृतं मयाधिकं पुण्यं यज्ञदानादि निश्चितम्। स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान् भवेत्॥ तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्त्वा सुखं महत्। क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदितः॥ पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसंयुतः। भूमौ पतित्वा व्रीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिरं पुनः॥**''''''' (१२—२०) (इसके बाद श्लोक ४१ तक वही गर्भाधान, पिण्ड, जन्मादिकी कथा है जो विनय० पद १३६ *'राम सनेही सों तैं न सनेह कियो'* एवं भागवतमें कपिलदेवजीने मातासे कही है और पूर्व लिखी जा चुकी है)''''''**'एवं देहोऽहमित्यस्माद्ध्या-सात्रिरयादिकम्। गर्भवासादिदुःखानि भवन्त्यभिनिवेशतः॥ तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम्। ज्ञात्वा देहादिममतां त्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत्॥ जाग्रदादिविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम्। शुद्धं बुद्धं सदा शान्तमात्मान मवधारयेत्॥ चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे। देहः पततु प्रारब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु॥ योगिनो न हि दुःखं वा सुखं वाज्ञानसम्भवम्। तस्माद्देहेन सहितो यावत्प्रारब्धसङ्क्षयः॥ तावत्तिष्ठ सुखेन त्वं धृतकञ्चुकसर्पवत्।**' (अध्यात्म० ८। ४२—४७) अर्थात् यह देह दुःखकी जड़ है, देहकी जड़ कर्म है। कर्मकी जड़ अहंकार है। अहंकारकी जड़ अविद्या है। अहंकार चित्के साथ तप्तलोहपिण्डके समान संयुक्त है। इन दोनोंका तादात्म्य होनेसे देहमें चैतन्य भासता है, यही संसार है जो कि अविद्यामूलक है, पाप-पुण्यके फेरमें जीवात्मा मारा-मारा फिरता है। मैं सुख तथा दुःखवाला हूँ, यह प्रतीति भी

अध्यासकृत है। सुख भोगनेके लिये धर्मके कारण जीव स्वर्गलोकमें जाता है, पुण्यक्षय हो जानेपर चन्द्रमण्डलमें आ पड़ता है, फिर व्रीह्यादिद्वारा वीर्य और रजमें आकर चतुर्विध भौतिक शरीरोंमेंसे कोई एक शरीर ग्रहण करता है। इत्यादि। (१२—२०)

'मैं देह हूँ' इस अध्याससे निरय (नरक) की प्राप्ति और गर्भवासादि दुःख होते हैं। इसलिये देहादिकी ममता छोड़कर आत्मज्ञान-सम्पादन करना चाहिये। शुद्ध, बुद्ध, शान्तस्वरूप आत्माकी भावना किया करे, चिदात्माके ज्ञान होनेपर मोह नष्ट हो जाता है, फिर देह चाहे रहे या न रहे, ज्ञानीको सुख या दुःख नहीं होता, अतः केंचुलीवाले साँपकी तरह उससे (देहसे) दुःख या सुख न मानता हुआ रहा कर।

नोट—४ वाल्मी० ६०, ६३ में कथा इस प्रकार है—सम्पातीने वानरोंसे कहा कि मैं इस विन्ध्यपर्वतपर आकर गिरा जो दक्षिणसमुद्रके तीरपर है। यहाँ देवताओंसे भी पूजित एक पवित्र आश्रम था, जिसमें निशाकर नामक उग्र तपस्वी ऋषि रहते थे। शिखरसे कष्टके साथ मैं उतरकर उस आश्रममें जाकर वृक्षके नीचे बैठ गया और मुनिकी प्रतीक्षा करने लगा······स्नान किये हुए वे आते देख पड़े; भालू, बाघ, सिंह और रेंगकर चलनेवाले जन्तु उनके साथ-साथ आते थे जैसे दाताके साथ याचक। आश्रमपर पहुँचनेपर वे जन्तु लौट गये। उन्होंने मुझे देखा तो दया आयी और बोले कि तुमको मैं पहचानता हूँ, तुम दो भाई हो, सम्पाती और जटायू। गृध्रोंके राजा हो और कामरूप हो। तुमने मनुष्यरूप धरकर मेरी चरणसेवा की थी।—'**गृध्राणां चैव राजानौ भ्रातरौ कामरूपिणौ॥····मानुषं रूपमास्थाय गृहीतां चरणौ मम॥**' (सर्ग ६०। १९-२०) तुम्हें क्या रोग हो गया, पंख कैसे गिर वा जल गये सो कहो। मैंने उनसे हाल कहा कि गर्वसे मोहित होकर मैं, जटायु परस्पर जीतनेकी इच्छा रखते थे। पराक्रमका पता लगानेके लिये आकाशमें बहुत दूरतक उड़े, कैलाशपर मुनियोंके सामने हमलोग प्रण करके उड़े थे कि अस्ताचलके सूर्यका पीछा करेंगे·····बहुत ऊँचेपर पहुँचा कि जहाँसे पृथ्वी तालाबमें हाथीके समान देख पड़ती थी·······तब मूर्छा आने लगी, बड़े प्रयत्नसे मैंने सूर्यमें अपना मन और नेत्र लगाकर देखा तो वे पृथ्वीके समान विशाल देख पड़े······असावधानीसे मैं जल गया, मेरे पंख जल गये, मैं विन्ध्यपर गिरा। राज्य, भाई, पक्ष और पराक्रमसे हीन अब मैं पर्वतसे गिरकर मरना चाहता हूँ। (सर्ग ६१) यह सुनकर ऋषिने ध्यान किया और मुझसे कहा कि तुम्हारे पंख जमेंगे, इत्यादि (रामजन्मसे यहाँतकको कथा कही)। यह भी बताया कि इन्द्र ने दुःखिनी सीताको जाकर पायस खिलाया। और मुझे यह आज्ञा दी कि यहाँसे कहीं मत जाना, समयकी प्रतीक्षा करो। तुमको आज ही मैं सपक्ष कर दूँ, यह इच्छा होती है तो भी इसलिये मैं ऐसा नहीं करता कि तुम यहाँ रहकर अधिक लोक-कल्याण कर सकोगे—'**उत्सहेयमहं कर्तुमद्यैव त्वां सपक्षकम्। इहस्थस्त्वं हि लोकानां हितं कार्यं करिष्यसि॥**' (६२। १३) यहाँ रहकर दोनों राजपुत्रोंका कार्य करना, ब्राह्मण, गुरुओं, मुनियों और इन्द्रका भी कार्य करना। इस तथा अनेक वाक्योंसे मुझे समझाया। मेरे मनमें आत्मघात करनेकी इच्छा हुई थी, वह मुनिकी आज्ञासे मैंने छोड़ दी। प्राणोंकी रक्षाके लिये जो बुद्धि मुनिने दी थी, उसीसे मेरे सब दुःख दूर होते हैं। (सर्ग ६३)

**त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचरपति हरिही॥ ७॥**
**तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिले तैं होब पुनीता॥ ८॥**
**जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहिं देखाइ देहेसु तैं सीता॥ ९॥**
**मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥ १०॥**

अर्थ—(ऋषिने कहा था कि) 'त्रेतायुगमें ब्रह्म मनुष्य-शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्रीको निशिचरराज हरण करेगा॥ ७॥ उसकी खोजमें प्रभु दूत भेजेंगे। उनके मिलनेपर तू पवित्र हो जायगा॥ ८॥ तेरे पक्ष उग आयेंगे। चिन्ता न कर। तू उनको सीता दिखा देना'॥ ९॥ मुनिकी वह वाणी आज सत्य हुई, अब मेरा वचन सुनकर प्रभुका कार्य करो॥ १०॥

नोट—१ *'त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही।''''''* इति। अ० रा० में भी ऐसा ही कहा है। यथा—'**त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः।**' (८।४८) आगेकी बातें वाल्मी० और अ० रा० दोनोंमें हैं। भेद इतना अवश्य है कि मानसमें समागम होनेपर पंखोंका जम आना प्रथम कहा है और सीताजीको दिखा देना पीछे। और अ० रा० तथा वाल्मी० में प्रथम सीताजीका पता बतानेकी बात कही है, तब पंख जमनेकी। यथा—'**तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः। तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ॥**' (अ० रा० ८। ५२)

टिप्पणी—१ (क) *'त्रेता'* पदसे पाया गया कि यह वृत्तान्त (उस) सत्ययुगका है (जिसके आगेके त्रेतायुगमें श्रीरामावतार हुआ)। (ख) मुनिने बाल, अरण्य और किष्किन्धाकी कथा कही। *'ब्रह्म'*, त्रेतामें मनुज तन धरेंगे, यह बालकाण्ड हुआ, अयोध्यामें भरत-चरित्र है इससे उसे न कहा। 'नारि निशिचरपति हरेगा' यह अरण्य और 'खोजके लिये दूत भेजेंगे' यहाँसे 'तू पुनीत होगा—' तक जो मुनिने कहा यह किष्किन्धाकाण्ड है। वही कथा सम्पातीने वानरोंसे कही।

टिप्पणी—२ *'पठइहि प्रभु दूता।'* प्रभुका भाव कि वे समर्थ हैं, सब जानते हैं पर राजनीतिकी मर्यादा रखनेके लिये दूत भेजेंगे। [प्र०—भाव कि तुमने सूर्यापराध किया और वे सूर्यवंशभूषणके दूत हैं, अतः उनके मिलनेसे पवित्र होंगे।]

टिप्पणी—३ *'करसि जनि चिंता'* से जनाया कि वह चिन्तित था कि बिना पक्षके निर्वाह कैसे होगा। ('**इच्छन्पतिष्ये शिखराद्गिरेः।**' (वाल्मी० ६१। १७), '''''''''**दह्येऽहं दाववह्निना॥**' '**कथं धारयितुं शक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो।**' (अ० रा० ८। १०-११) से उसकी चिन्ता स्पष्ट है। उसने मुनिसे कहा था कि मैं पर्वतपरसे गिरकर मरनेकी इच्छा करता हूँ। मैं दावाग्निमें जलकर भस्म हो जाऊँगा। बिना पक्षोंके जीवन कैसे धारण कर सकता हूँ?) मुनिने उससे प्रथम कहा कि चिन्ता न कर, तब श्रीसीताजीको दिखानेको कहा। भाव यह है कि प्रथम तेरा कार्य होगा, तेरे पक्ष जमेंगे तब तू दिखाना। इसीलिये मुनिने उसको वहीं रखा, नहीं तो मुनिमें सामर्थ्य थी कि उसी समय पखने जमा देते। २८ (५-६) का नोट ४ देखिये। (प्र०—चिन्ता यह कि इतना काल कैसे बीतेगा।)

प० प० प्र०—यहाँ तुकान्तमें विषमता दिखाकर बताते हैं कि जो *'कपि चंचल सब ही बिधि हीना'* इत्यादि हैं, वे रामसेवासे कैसे हो गये। तुम भी यह रामसेवा करोगे तो *'गीध अधम खग आमिष भोगी'* होनेपर भी तुम भी पुनीत हो जाओगे। इस आश्चर्यमें संदेह नहीं है। भाव यह कि देह किसी भी उच्च या नीच योनिकी क्यों न हो, रामसेवक बन जानेसे वह संत ही है।

टिप्पणी—४ (क) गिरा सत्य हुई अर्थात् तुम मिले, मेरे पङ्ख जमे। *'आजु'* अर्थात् मैं आशा करता रहा हूँ कि कब मुनिवाक्य सत्य होगा, आज वह सत्य हुआ। मुनिगिरा मुझको सत्य हुई तो तुमको भी अवश्य होगी, तुमको सीता मिलेंगी, तुम प्रभुका कार्य करो। (ख) *'सुनि मम बचन'*—भाव कि मेरा वाक्य सत्य है, मुझे ज्ञानके द्वारा देख पड़ता है कि तुम सीताजीको देखकर लौटोगे। अतः वचनपर विश्वास करो। पुनः वे 'प्रभु' हैं, वे तुमको अपने कार्यके लिये सामर्थ्य देंगे। (ग) पूर्व जो कहा था कि वचनसे सहायता करूँगा वह अब आगे कहते हैं।

नोट—२ वाल्मीकिजी लिखते हैं कि ये बातें वानरोंको सुनाते-सुनाते उसके पङ्ख जम आये। यह देख गृध्र प्रसन्न होकर बोला कि राजर्षि निशाकरकी कृपासे सूर्यसे दग्ध भी पङ्ख फिर प्राप्त हो गये। अतः संसारमें अप्राप्य कुछ नहीं है। तुम यत्न करो, अनुमित है कि तुम्हारे कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी। यथा—'**निशाकरस्य राजर्षेः प्रसादादमितौजसः। आदित्यरश्मिनिर्दग्धौ पक्षौ पुनरुपस्थितौ।''''''''सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ॥ पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः। इत्युक्त्वा तान्हरीन्सर्वान्सम्पातिः पतगोत्तमः॥**' (वाल्मी० ६३। १०—१३)

**गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥ ११॥**
**तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोचरत अहई॥ १२॥**

दो०—मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भएउँ नत करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥२८॥

अर्थ—त्रिकूटाचलपर* लङ्का बसी है। (स्वाभाविक ही निडर) रावण वहाँ सहज ही निःशंक रहता है। (वहाँका राजा है)॥११॥ वहाँ अशोकका उपवन है जहाँ श्रीसीताजी सोचमें डूबी बैठी रहती हैं। [वा, सीताजी रहती हैं। वे सोचमें (इस समय भी) निमग्न बैठी हैं।]॥१२॥ मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गृध्रकी दृष्टि बहुत बड़ी होती है। मैं बुड्ढा हो गया, नहीं तो कुछ तुम्हारी सहायता करता॥२८॥

टिप्पणी—१ (क) पर्वतपर लङ्का बसी है। इस कथनसे गिरिदुर्गकी श्रेष्ठता दिखायी। (ख) 'सहज असंक' है अर्थात् किलेके भरोसे असंक नहीं है, किंतु अपने पुरुषार्थके भरोसे निश्शंक है। [वाल्मीकीयमें लिखा है कि जाम्बवन्तने सम्पातीसे पूछा था कि रावण कहाँ रहता है और श्रीजानकीजी कहाँ हैं। इसीसे उसने दोनोंका ठिकाना बताया। यथा—'**जाम्बवान्वानरश्रेष्ठः सह सर्वैः प्लवंगमैः। भूतलात्सहसोत्थाय गृध्रराजानमब्रवीत्॥ क्व सीता केन वा दृष्टा को वा हरति मैथिलीम्। तदाख्यातु भवान्सर्वं गतिर्भव वनौकसाम्॥**' (सर्ग ५९। २-३) अर्थात् वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् सारे वानरोंके साथ पृथ्वीपरसे सहसा उठकर गृध्रराजसे बोले—कृपया आप सब स्पष्ट कहिये कि सीता किसने देखी, कौन हर ले गया, इत्यादि। गोस्वामीजीने यहाँ जाम्बवन्तका प्रश्न नहीं लिखा; गृध्रका उत्तर लिखकर प्रश्न भी जना दिया है। *'सहज असंका'* यथा—*'सहज असंक सुलंकपति सभा गयउ मति अंध'*, *'सुनासीर सत सरिस सो संतत करै बिलास। परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥'* (लं० १०)]

टिप्पणी—२—(क) *'तहँ असोक उपवन'*……' से जनाया कि अशोकवन भी उन्हें अशोक न कर सका। [इसमें यह भी ध्वनित है कि रावणके प्रलोभन एवं दण्ड, भय आदि सब निष्फल हुए। यथा—'**सा च कामैः प्रलोभ्यन्ती भक्ष्यैर्भोज्यैश्च मैथिली। न भोक्ष्यति महाभागा दुःखमग्ना यशस्विनी॥**' (वाल्मी० ६२। ७)] (ख) रावणको लङ्कापुरीमें बताया और श्रीसीताजीको अशोकके उपवनमें, इस भेदसे जना दिया कि जहाँ रावण है वहाँ श्रीजानकीजी नहीं हैं। *'बैठि अहई'* से जनाया कि सदा बैठी ही रहती हैं, यथा—*'देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात जिमि जामा॥'* (५। ८। ७) (ग) *'कछुक सहाय'* अर्थात् वृद्धावस्था न होती तो ४०० कोस जाकर खबर ले आता, कुछ बड़ी बात न थी।

नोट—१ वाल्मी० ५८ में सम्पातीने *'मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहिं दृष्टि अपार'* को यों कहा है कि—आकाशका पहला मार्ग कुलिंग पक्षियोंका है और अन्न खानेवाले कबूतरोंका, उससे ऊपरका मार्ग वृक्षफल खानेवालों एवं काकादि पक्षियोंका है। इसके ऊपरवाला मार्ग क्रौंच, कुररी, भास आदि पक्षियोंका है। उसके ऊपर चौथे मार्गसे बाज और पाँचवें मार्गसे गृध्र जाते हैं; उसके ऊपर हंसोंका मार्ग है फिर गरुड़का। हमलोगोंका जन्म वैनतेयसे है। इसलिये हमको भी गरुड़के समान देखनेकी शक्ति है। भोजनके बल तथा स्वभावसे चार सौ कोस और उससे आगेतक देख सकते हैं! हमलोगोंकी वृत्ति दूरसे देखी वस्तुसे ही होती है ऐसा ही विधान है। अतएव मैं यहींसे जानकीजीको देख रहा हूँ। यथा—'**वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः॥ इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा। अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा॥ तस्मादाहारवीर्येण निसर्गेण च वानराः। आयोजनशतात्साग्राद्वयं पश्याम नित्यशः॥**' (२९, ३१-३२) पुनः यथा—'**समुद्रमध्ये सा लङ्का**

* हिन्दी शब्दसागरमें त्रिकूटके विषयमें यह अर्थ लिखे हैं—१—तीन शृङ्गवाला पर्वत। २—वह पर्वत जिसपर प्राचीन लङ्का बसी हुई मानी जाती है। देवीभागवतके अनुसार वह एक पीठस्थान है और यहाँ रूपसुन्दरीके रूपमें भगवती निवास करती हैं—'गिरि त्रिकूट एक सिंधु मँझारी। बिधिनिरमित दुर्गम अति भारी॥' ३—एक कल्पित पर्वत जो सुमेरुका पुत्र माना जाता है, वामनपुराणके अनुसार यह क्षीरोदसमुद्रमें है, जहाँ देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर, गन्धर्वादि क्रीड़ार्थ आते हैं। नास्तिकों और पापियोंको यह नहीं दिखायी देता।—(इस तीसरेसे यहाँ तात्पर्य नहीं है।)

शतयोजनदूरतः। दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते॥ गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम्।' (अध्यात्म० सर्ग ७। ५२-५३) *'कछुक सहाय'* का भाव कि वृद्ध हो गया हूँ, नहीं तो जाकर खबर ले आता, तुम्हें वहाँ पहुँचा देता, इत्यादि।

**जो नाँघै सत जोजन सागर। करै सो रामकाज मति आगर॥ १॥**
**मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपा कस भएउ सरीरा॥ २॥**
**पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥ ३॥**
**तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। रामु हृदय धरि करहु उपाई॥ ४॥**

अर्थ—जो चार सौ कोसका समुद्र लाँघे और बुद्धिका स्थान (बुद्धिमान्) हो वह रामकार्यको करे। (अर्थात् जो बल और बुद्धि दोनोंमें पूरा हो वही कर सकता है)॥ १॥ मुझे देखकर मनमें धीरज धरो (अर्थात् यह प्रत्यक्ष प्रमाण रामकृपाके प्रभावका है। अपनी आँखों देख रहे हो कि तुम्हारे देखते-देखते मैं कैसा-का-कैसा हो गया देखो) श्रीरामजीकी कृपासे मेरा शरीर कैसा हो गया॥ २॥ पापी भी जिनका नाम-स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागरके पार हो जाते हैं, तुम उनके दूत हो, कादरपन छोड़कर श्रीरामजीको हृदयमें रखकर उपाय करो॥ ३-४॥

टिप्पणी—१ *'जो नाँघै सत जोजन……'* इति। (क) प्रथम संपातीने सबसे रामकार्य करनेको कहा, यथा—*'सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू।'* अब कहते हैं कि इतने वानरोंमेंसे जो ४०० कोसका समुद्र लाँघे वही रामकार्य करे अर्थात् अब एकहीको करनेको कहते हैं। अर्थात् बताया कि प्रभुकार्य करनेका पात्र कौन हो सकता है। (ख) प्रथम कहा कि त्रिकूटाचलपर लङ्का है, अब उसका ठिकाना बताते हैं कि सौ योजन समुद्रपार है। (ग) *'सत जोजन'* का भाव कि यदि यह न बताते तो सन्देह रहता कि किस समुद्रके पार है क्योंकि सागर तो सभी समुद्रोंको कहते हैं।

नोट—१ *'सागर'* पदमें यह भी ध्वनि है कि जिसे रघुवंशी राजा सगरके पुत्रोंने खोदा है, वह लाँघनेमें अवश्य सहायता करेगा। और हुआ भी ऐसा ही, यथा—*'जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥' 'करै सो रामकाज'* से जनाया कि 'राम' का काम है, वे स्वयं सहायक होंगे और बुद्धि देंगे, तुम क्यों घबड़ाते हो, करनेको उद्यतभर हो जाओ। (पं०)

नोट—२—*'धरहु मन धीरा'* से जनाया कि सबका हर्ष जाता रहा था। यथा—*'राम को सनेह राम, साहस लषन, सिय रामकी भगति सोच संकट निवारिये। मुद मरकट रोग बारिनिधि हेरि हारे जीव जामवंतको भरोसो तेरो भारिये।'* (हनुमानबाहुक)

टिप्पणी—२ (क) *'मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा'* इस कथनसे सिद्ध होता है कि शतयोजन सागर सुनकर वानरोंके हृदयमें कादरपन आ गया, उनका कलेजा काँप उठा और धैर्य जाता रहा था। यह लखकर उसने ये वचन कहे कि धीरज धरो, कायरता छोड़ो। (ख) *'रामकृपा कस भयउ सरीरा'* इति। इससे जनाया कि ये बातें करते-करते उसके दोनों पक्ष जम आये। यथा—'**तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य संहतैर्वानरैः सह। 'उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम्**।……' (वाल्मी० ६३। ८-९) तब उसने वानरोंका उत्साह बढ़ानेके लिये कहा कि मेरे पक्षोंका पुनः जम आना तुम लोगोंकी कार्य-सिद्धिका विश्वास दिलानेवाला है। तुम लोग प्रयत्न करो अवश्य सीताजीको पाओगे। यथा—'**सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ॥**' '**पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः।**' (६३। १२-१३)

टिप्पणी—३ *'पापिउ जाकर नाम……'* इति। (क) अपना प्रत्यक्ष प्रमाण देकर फिर शब्दप्रमाण दिया कि *'पापिउ जाकर नाम……।'* पापी नामस्मरण करके भवपार होते हैं, यह बात प्रत्यक्ष नहीं है पर वेद-पुराणादिमें है, वे ही प्रमाण हैं। *'पापिउ'*=पापी भी, ऐसा कथनका भाव कि वे भवपार होनेमें अत्यन्त असमर्थ हैं। *'अति अपार भवसागर'* का भाव कि ऐसे अपारको पापी भी पार कर जाते हैं तब तुमको

सौ योजन समुद्र पार करना क्या है? [मिलान कीजिये—'**स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम्। यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्घ्यसमुद्रस्य विलङ्घने॥ यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्। तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः॥**' (अध्यात्म० सर्ग ८। ५४-५५) अर्थात्—तुम्हारा कल्याण हो, तुम निश्चित ही श्रीसीताजीको प्राप्त कर लोगे। समुद्रके उल्लङ्घनका यत्न करो। जिस भगवान्‌की कृपासे दुर्जन भी संसार-सागरको पार कर लेता है, क्या उसके ही सेवक तुम (वानर) समुद्रको पार न कर लोगे? अवश्य करोगे।]

टिप्पणी—४ (क) *'तासु दूत तुम्ह तजि कदराई।'* भाव कि पापीसे और प्रभुसे कुछ सम्बन्ध नहीं है तो भी प्रभुका नाम लेकर वह भवपार होता है और तुम तो उनके दूत हो। कादरपनके रहनेसे कार्य सिद्ध नहीं होता, अतः उसका त्याग कहा। (ख) *'राम हृदय धरि'* का भाव कि जिनके प्रतापसे मेरे पक्ष जमे, जिनके स्मरणसे पापी तरते हैं, उनका स्मरण करके उपाय करनेसे कार्य सिद्ध होगा [यहाँ 'काव्यार्थापत्ति' की ध्वनि है—(वीर)]

*'इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं'* से यहाँतक 'सम्पाती-मिलन' प्रसङ्ग है।

## 'सुनि सब कथा समीर कुमारा'—प्रकरण

**अस कहि गरुड़* गीध जब गयऊ। तिन्ह के मन अति बिसमय भयऊ॥ ५॥**
**निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ कर† संसय राषा॥ ६॥**
**जरठ भयउँ अब‡ कहै रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बललेसा॥ ७॥**
**जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ卐 बल भारी॥ ८॥**
**दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।**
**उभय घरी महँ दीन्ही सात प्रदच्छिन धाइ॥ २९॥**

अर्थ—हे गरुड़! इस प्रकार कहकर जब गृध्र चला गया, तब उन सब वानरोंके मनमें अत्यन्त विस्मय प्राप्त हुआ (भाव कि सीताजीके न मिलनेसे विस्मय था ही, अब समुद्र-उल्लङ्घन कैसे होगा यह अति विस्मयदायक हुआ)॥ ५॥ अपना-अपना बल सबने कहा, पर सबने समुद्र पार कर जानेमें सन्देह ही प्रकट किया॥ ६॥ ऋक्षराज जामवन्तने कहा कि अब मैं बुड्ढा हो गया, शरीरमें पहलेवाले बलका लेश भी नहीं रह गया (अर्थात् यह कार्य कुछ न था, हमारे युवावस्थाके बलके लेशमात्रसे ही हो जाता। पर अब उतना भी बल नहीं रह गया)॥ ७॥ जब खरारी (खरके शत्रु) भगवान् वामनरूप हुए, तब हमारी तरुण-अवस्था (युवावस्था) थी, और मुझमें भारी बल था॥ ८॥ बलिके बाँधनेके समय प्रभु जो बढ़े कि उस शरीरका वर्णन नहीं हो सकता, परन्तु मैंने दो घड़ीमें ही उस शरीरकी सात परिक्रमाएँ दौड़कर कर लीं (ऐसा मेरा बल था)॥ २९॥

नोट—१ (क) *'गरुड़'* सम्बोधनसे यहाँ भुशुण्डि-गरुड़-संवाद जनाया। गरुड़ पाठ सहेतुक है। गृध्र सम्पाती और गरुड़ एक वंशके हैं। अरुण और गरुड़ भाई हैं। सम्पाती और जटायु अरुणके पुत्र हैं। 'उमा' पाठ किसी-किसीने दिया है। (ख) *'अति बिसमय भयऊ'* यथा—'**संकुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः। रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः॥**' '**आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः। विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥**' (वाल्मी० ६४। ६-७) अर्थात् दानवेन्द्रों और पातालवासियोंसे भरे हुए भयावने और आकाशके समान पार करनेके अयोग्य समुद्रको देखकर वानरश्रेष्ठ बहुत दुःखी हुए और विचार करने लगे कि क्या किया जाय। यथा—*'बनचर बिकल बिषाद बस, देखि उदधि अवगाह।'* (श्रीरामाज्ञा-प्रश्न)

---

* उमा—(ना० प्र०)। † कर—(ना० प्र०), गी० प्रे०। ‡ अस—(भा० दा०) 卐 रहउँ (भा० दा०)

पंजाबीजीका मत है कि विस्मय हुआ कि इसे सीताजी यहींसे देख पड़ती हैं, हम भी विशाल हैं पर हमें नहीं देख पड़तीं। (पर यहाँ प्रसङ्ग उल्लङ्घनका है।)

नोट—२ *'निज निज बल सब काहू भाषा।'''''* इति। (क) सबके मन अत्यन्त विस्मित हो गये; यह कहकर सबका अपना-अपना बल कहनेका उल्लेख होनेसे यह शंका उठती है कि क्या सब अपने-आप अपना-अपना बल कहने लगे? ऐसा होना तो अस्वाभाविक-सा जान पड़ता है? समाधान यह है कि अन्य रामायणोंमें जो इसके बीचमें कहा है उसको मानस कविने संक्षेपसे *'निज निज बल'''''* इतने शब्दोंसे ही सूचित कर दिया है। सेनाको विषादयुक्त देखकर अङ्गदजीने सबको धैर्य दिलाते हुए कहा—'आपलोगोंको विषाद नहीं करना चाहिये। विषादमें बड़े-बड़े दोष हैं। यह पुरुषोंको वैसे ही मार डालता है जैसे क्रुद्ध सर्प बालकको। उद्योगके समय जो विषाद करता है उसका तेज नहीं रह जाता और उसके मनोरथ सिद्ध नहीं होते। तत्पश्चात् (दूसरे दिन सबेरे) उन्होंने वानरोंसे कहा—'कौन महातेजस्वी इस महासमुद्रको पार करेगा? कौन सुग्रीवको सत्यप्रतिज्ञ करेगा? कौन समुद्रको लाँघकर यूथपोंको भयसे छुड़ावेगा? किसकी कृपासे श्रीसीताजीका पता लगाकर और सुखी होकर हमलोग लौटकर स्त्री, पुत्र, घर देखेंगे? जो समर्थ हो वह शीघ्र हमलोगोंको अभयदान दे। (जब कोई न बोला, सब चुप रहे तब फिर अङ्गदने कहा) आप सब दृढ़पराक्रमी हैं, आपमेंसे किसीको पार जानेमें बाधा न होगी। अतएव इस कार्यको सिद्ध करनेके लिये आप सब अपनी-अपनी शक्तिका वर्णन करें। (वाल्मी० ६४। ७-२२) तब सबने अपना-अपना बल कहा।

टिप्पणी—१ (क) *'सब काहू भाषा'* इस कथनसे प्रमाण न रहा कि कितने वानरोंने अपना बल कहा और क्या-क्या बल कहा। *'पार जाइ कै संसय राखा'* से प्रमाण हो गया कि सौ योजन समुद्र है, इसीके पार करनेका संशय है। प्रथम सब वानरोंने अपना-अपना बल कहा, तब जाम्बवन्तने अपना बल कहा, फिर अङ्गदने कहा; इससे यह निश्चय हुआ कि जब अङ्गदने अन्तमें सौ योजन जानेको कहा तब जाम्बवन्तने ९० और अन्य वानरोंने ८० योजनतक जानेका सामर्थ्य कहा होगा। वाल्मी० सर्ग ६५ में सबका अपना-अपना बल कहनेका प्रमाण है। यथा—'**गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः। मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो जाम्ववांस्तथा॥ आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम्। गवाक्षो योजनान्याह गमिष्यामीति विंशतिम्॥ शरभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह। त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः॥ ऋषभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह। चत्वारिंशद् गमिष्यामि योजनानां न संशयः॥''''''ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्ववान्प्रत्यभाषत॥ पूर्वमस्माकमप्यासी-त्कश्चिद्गतिपराक्रमः। ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म साम्प्रतम्॥''''''साम्प्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत। नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः॥''''''मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः। प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमः॥**' (२—१५) अर्थात् सब वानर अपनी-अपनी गति बतलाने लगे कि मैं इतने योजन जा सकता हूँ और मैं इतने योजन जा सकता हूँ। गजने १० योजन, गवाक्षने २०, शरभने ३०, ऋषभने ४०, गन्धमादनने ५०, मयन्दने ६०, द्विविदने ७०, सुषेणने ८० और जाम्बवान्‌ने ९० योजन जानेकी शक्ति कही। अन्तमें जाम्बवान् बोले कि मैं ९० योजन जा सकता हूँ यद्यपि मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ।

वि० त्रि०—'स्पष्ट है कि सबने अपना बल कहा, पर अपना पूरा बल किसीने न कहा। उतना ही बल कहा, जिसमें पार जानेमें सन्देह रह जाय। भाव यह कि सबकी देखी हुई बात है कि सरकारने चलते समय हनुमान्‌जीको बुलाकर कुछ कहा और मुद्रिका भी दी। अतः हनुमान्‌जीका ही जाना ठीक है। सभ्यताके अनुरोधसे यह कोई नहीं कह रहा है कि मुद्रिका तो मिली है हनुमान्‌जीको, मैं क्यों जाऊँ? सब अपना बल छिपाकर बोलते हैं।

टिप्पणी—२ *'त्रिबिक्रम भए खरारी।'* खर=दुष्ट। भगवान् खरारी हैं, अर्थात् दुष्ट राक्षसोंके शत्रु हैं। उनको परास्त करनेके लिये वामनरूप हुए। पुनः, खरारि=खर राक्षसके शत्रु रामजी। [जितने अवतार हुए वे सब भगवान्‌के ही कहे जाते हैं, चाहे वह साकेतविहारी द्विभुज श्रीरामजीके हों, चाहे श्रीमन्नारायण

क्षीरशायी भगवान्‌के, चाहे विष्णुभगवान् वैकुण्ठ निवासीके। वैष्णव सबमें अभेद-भाव रखते हैं। दूसरे, जिसका जो स्वरूपनिष्ठ होता है वह अपने ही इष्टके सब अवतार मानता है और ठीक भी यही है।] बलिसे भगवान्‌ने तीन पग पृथ्वी माँगी थी। एकमें उन्होंने सातों पाताल और मर्त्यलोक नाप लिये, एकमें सातों स्वर्ग नाप लिये और एकके लिये बलिको बाँधा।—अ० ३० (७) देखिये।

टिप्पणी—३ (क) *'बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ'* यहाँ बाँधने और बढ़नेमें 'प्रभु' पद प्रयुक्त करके जनाया कि बलिबन्धनकी सामर्थ्य इन्हींमें थी और किसीमें नहीं; इन्द्रादि सब देवता हार चुके थे। (ख) *'सो तनु बरनि न जाइ'* कहनेका आशय यह है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता कि कितना बड़ा था ऐसे उस विशाल शरीरकी सात प्रदक्षिणाएँ दो घड़ीमात्रमें कर लीं; ऐसा भारी बल मुझमें था। 'उभय घड़ी' कहनेका भाव कि वह रूप दो ही घड़ी रहा। इसीसे हमने दौड़कर प्रदक्षिणा की, नहीं तो प्रदक्षिणा दौड़कर नहीं की जाती। (यहाँ 'अर्थान्तरन्यास अलङ्कार' है, क्योंकि प्रथम कहा कि अब पहलेका बल शरीरमें नहीं है; और फिर उस बलको विशेष प्रमाणद्वारा समर्थन किया है।)

नोट—वाल्मी० तथा अ० रा० में भी वामनजीके बढ़े हुए रूपकी परिक्रमाका उल्लेख है। २१ बार फिरना कहा है—'**त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः।**' (अ० रा० ९। ११) '**त्रिविक्रमे मया तात सशैलवनकानना। त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम्॥**' (वाल्मी० ६६। ३२)।

**अंगद कहै जाउँ मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा॥ १॥**
**जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥ २॥**

अर्थ—अङ्गदने कहा कि मैं पार (तो) चला जाऊँगा, परन्तु मेरे मनमें कुछ संशय फिरती (लौटती) बारका है॥ १॥ जाम्बवन्त बोले कि तुम सब लायक हो, पर तुम सबके नायक (सरदार) हो, हम तुमको कैसे भेज दें॥ २॥

## * जिय संसय कछु फिरती बारा *

मा० त० भा०—चार सौ कोस समुद्र कूदनेसे बड़ा श्रम होगा, इसीसे लौटनेमें संशय है। यथा—'**अङ्गदोऽप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः। पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा॥**' (अध्यात्म० सर्ग ९। १२) अर्थात् अङ्गदने कहा कि समुद्र पार करनेकी शक्ति मुझमें है पर उधरसे फिर समुद्र-उल्लङ्घनका सामर्थ्य है या नहीं यह मैं नहीं जानता। वाल्मी० में भी ऐसा ही कहा है। यथा—'**निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम्॥**' (६५। १९)

पांडेजी—अङ्गद फिरती बार जो अपने जीमें संशय करते हैं उसका कई प्रकारसे अर्थ किया जाता है—(१) लङ्का रूपवती स्त्रियोंसे भरी हुई है और मेरी वानरजाति है एवं युवावस्था है, ऐसा न हो कि वहीं मोहित होकर रह जाऊँ। (२) रावण और वाली मित्र थे; उस मित्रताके कारण प्रीतिरूपी फाँसी डालकर कहीं रावण मुझे फँसा न ले। (३) कोई कहते हैं कि कोई ब्राह्मण वालीका टिकाया हुआ नदीके किनारे रहता था। अङ्गद बाल्यावस्थामें वानरोंके बच्चोंको साथ लेकर वहाँ कूदा करते थे जिससे ब्राह्मणपर छींटे पड़ते थे। एक दिन विप्रने कुपित होकर शाप दे दिया कि जिस जलको तुम 'डाँकोगे' (लाँघोगे) फिर लौट न सकोगे। उस शापका स्मरण करके अङ्गद लौटनेका संशय करते हैं—पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिला, यदि मिले तो अर्थ पुष्ट है, नहीं तो किसीका गढ़ा हुआ किस्सा है। दूसरे, यदि ऐसा शाप होता तो 'संशय' पदका प्रयोग न करते वरन् उनको निश्चय होता; क्योंकि ये देवांश हैं, इनको विप्र-शापका निश्चय होता है।—यह तो इस अर्थके विषयमें हुआ। रहे प्रथम दो, वे भी लचर हैं, क्योंकि उनमें अङ्गदकी कायरता और रघुनाथजीमें उनकी प्रीतिकी न्यूनता सूचित होती है।—[इन बातोंका निषेध रावण-अङ्गद-संवादसे स्पष्ट हो जाता है। यथा—*'सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥'* (६। २१। १०)]—अतएव अर्थ यह जान पड़ता है कि अङ्गद कहते हैं कि जानेके

समयमें शक्तिके सम्मुख जाऊँगा, जो शक्तिके सम्मुख जाता है वह असमर्थ भी हो तो समर्थ हो जाता है और जो शक्तिसे पराङ्मुख होता है वह शक्तिमान् भी तो अशक्त हो जाता है, '**अशक्ताः शक्तिसम्पन्ना ये च शक्तिपराङ्मुखाः। असमर्थाः समर्थाः स्युः शक्तिसम्मुखगामिनः।**' [नोट—पर यह बात तो हनुमान्‌जीके लिये भी हो सकती है]।

प्र०—प्रायः नदी आदिमें करारके दूसरे भागमें पृथ्वी नीची होती है जहाँसे उलटकर लाँघना कठिन है। पंजाबीजी कहते हैं कि अङ्गदने सोचा कि कभी निशाचरोंसे मैंने युद्ध नहीं किया और वे बड़े बली सुने जाते हैं; उनसे समर करके फिर समुद्र कूदनेमें न जाने समर्थ हूँ या न हूँ।

मा० म०—क्रमसे वानर १०, १० योजन बढ़ते गये। जाम्बवन्तने ९० कहा, तब अङ्गदने सोचा कि यदि मैं कम कहूँगा तो हँसी होगी। इससे उसने सौ योजन लाँघ जानेको कहा और सबने तो जानेमें संशय रखा था इससे इन्होंने लौटनेमें संशय रखा। अथवा, दुर्वासाके शापवश वे नहीं लौट सकते थे—(पर इसका प्रमाण कोई नहीं दिया है। मा० सं०) अथवा, 'सहिदानी' नहीं है, जानकीजी क्योंकर पहचानेंगी, इससे दीनतावश जाना अस्वीकार किया।

किसीका मत है कि अङ्गद और अक्षयकुमार साथ पढ़ते थे। अङ्गदने एक दिन उसे बहुत पीटा। गुरुने सुना तब शाप दिया कि अक्षयकुमारके एक ही घूँसेसे तेरी मृत्यु हो जायगी। तबसे अङ्गद लङ्कामें नहीं गये।—पर इसका प्रमाण हमें अबतक नहीं मिला है।

श्री० मिश्र—मानस-मयंकका दोहा यह है—'***दश दश दश सब बढ़ गये नब्बेपर रह बूढ़। ताते अङ्गद दश बढ़े फिरबो राखे गूढ़॥***' यहाँ '**गूढ़**' शब्दका अभिप्राय यह है कि अङ्गदजीके सामने रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको मुद्रिका दी और संदेश दिया—'***बहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयहु॥***' अतएव अङ्गदने यह विचारकर कि आज्ञा तो हनुमान्‌जीको है और वे कुछ बोले नहीं, यह कहा कि 'फिरती बार' का संशय है। वह 'कुछ संशय' यही है कि कदाचित् श्रीरघुनाथजी कहें कि आज्ञा तो हमने सहिदानीके संयुक्त हनुमान्‌जीको दी थी, तुम किसके कहनेसे गये और क्या निशानी श्रीजानकीजीकी प्रतीतिके लिये ले गये थे, तब मैं क्या उत्तर दूँगा। यहाँ केवल हनुमान्‌जीके कुछ न बोलनेसे अङ्गदने ऐसा कहा, नहीं तो उन्हें जाने-आनेमें संशय कदापि नहीं हो सकता था और न था।

शीला—सब वानर यहाँ हिचकिचाते हैं और सेतुबन्ध होनेपर तो न जाने कितने आकाशसे गये हैं। यहाँ अङ्गदके वचनमें भाव यही है कि कार्य तो हनुमान्‌जीको प्रभुने सौंपा है, मैं कैसे जाकर करूँ? इसी भावसे जाम्बवन्तने और इन्होंने भी संशय प्रकट किया।

और भी अनेक भाव लोगोंने कहे हैं। जैसे कि १—मन्दोदरी मौसी है वह रोक न ले। २—'***फिरती बारा***'=तीन बार मैं जाऊँ-आऊँ। '***जिय संसय कछु***'=क्या आपको इसमें सन्देह है? ३—संशय है कि हनुमान्‌जीसे प्रभु प्रश्न करेंगे कि तुमको मुद्रिका दी थी, इत्यादि, तुम क्यों न गये? तब वे क्या उत्तर देंगे। इत्यादि।

वे० भू० जीका मत है कि गुप्तचरोंकी तरह वेषपरिवर्तन-विद्या राजकुमार अङ्गदको नहीं मालूम है। कपि सम्राट् वालीके पुत्र और सुग्रीवके उत्तराधिकारी होकर, वे छिपकर तो जायँगे नहीं, जायँगे तो राजकुमारकी अकड़से ही। उस दशामें कार्य होनेके पूर्व ही रावण-मेघनादादि वीरोंसे मुठभेड़ हो जाना बहुत सम्भव है। युद्धमें विजय सर्वथा अनिश्चित ही रहती है। और युद्धमें क्षत-विक्षत होनेसे सर्वथा बचा रहना जीवके लिये अनिवार्य-सा ही है। अतः इन सब सम्भावित समस्याओंपर विचार करते हुए सकुशल लौट आना संशयास्पद तो है ही। ऐसी दशामें तो संशयका न होना ही संशयका स्थान है।

श्रीनंगेपरमहंसजी कहते हैं कि 'यदि अक्षयकुमारसे अङ्गदको मृत्युका भय होता तो इसे छिपानेकी क्या बात थी? वह साफ कह देते कि ऐसा शाप है। मन्दोदरीके रोकनेकी बात भी स्पष्ट कह सकते थे, छिपाते क्यों? जो यह कहते हैं कि अङ्गदने अपनी शक्तिको छिपाकर नहीं लौटानेके बहानेसे संदेह प्रकट किया है। संदेहका अर्थ बहाना करना और अङ्गदको अपनी शक्ति छिपानेका अर्थ करना गलत है, क्योंकि वहाँ किसीको अपना बल छिपानेकी आज्ञा नहीं है। मुद्रिकाके संदेहसे न लौटनेका बहाना

क्यों करते? क्या इन्होंने मुद्रिका हनुमान्‌जीको देते हुए देखी थी? यदि अङ्गदने ही देखा था तो वे साफ कह सकते थे कि हम जा-आ सकते हैं पर मुद्रिका सहिदानी तो हनुमान्‌जीके पास है, हम कैसे जायँ? बस, इतनेमें सब बात खतम थी। अतः अङ्गदके लिये बलका छिपाना और बहानेसे संदेह करना दोनों बातें गलत हैं। अङ्गदने संदेह अपने परिश्रमके कारण ही यथार्थतः किया है। क्योंकि आकाशमें केवल उछाल मारकर चलना नहीं होता है। प्रथम उछलते हैं, फिर हाथ-पैर चलाते हुए आकाशमार्गमें चलते हैं। हाथ-पैर चलाकर चलनेमें आगे-पीछे आना-जाना हो सकता है जिससे परिश्रम होगा। इसीसे तो सिन्धुने मैनाकसे हनुमान्‌जीके श्रमको हरनेको कहा था—*'तैं मैनाक होहि श्रमहारी।'* इसी परिश्रमके कारण आनेमें संदेह कहा।

टिप्पणी—१ (क) जब सब वानर बोले तब अङ्गद नहीं बोले, क्योंकि सिपाहीके पंक्तिमें राजाके बोलनेमें शोभा नहीं है। राजाओंकी पंक्तिमें राजाके बोलनेकी शोभा है। जाम्बवन्त ऋक्षराज हैं। जब वे बोले तब ये बोले। (ख) *'जाउँ मैं पारा।'* औरोंने जानेमें संशय रखा तब अङ्गदने लौटनेका संशय प्रकट किया। (ग) *'जिय संसय कछु फिरती बारा'* अर्थात् जानेमें कुछ भी संशय नहीं है, लौटनेमें कुछ है।

टिप्पणी-२—*'तुम्ह सब लायक'* अर्थात् तुम जाकर कार्य करके लौट सकते हो, इस सबकी योग्यता तुममें है। पर सिपाह सब बैठी रहे और राजा स्वयं काम करे यह अयोग्य है। '**तमाह जाम्बवान् वीरस्त्वं राजा नो नियामकः। न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि॥**' (अध्यात्म० ९। १३)

वि० त्रि०—सब लोग अपना बल बोल चुके तो जाम्बवान्‌जीकी पारी आयी। अब ये क्या कहें। इनका पौरुष प्रख्यात है अतः इन्होंने वृद्धावस्थाकी ओट ली। तब पारी अङ्गदजीकी आयी। अङ्गदजीका बल सब कोई जानता है कि वालीके समान है। इनको स्वीकार करना पड़ा कि मैं पार जा सकता हूँ, लौट भी सकता हूँ, पर लौटनेमें कुछ सन्देह है। जाम्बवन्तजीने देखा कि इन्होंने तो स्वीकार ही कर लिया। *'कुछ सन्देह'* का यहाँ कुछ अर्थ नहीं होता। लौटनेके समय दो-एक दिन विश्राम करके लौटते, अतः जाम्बवान्‌जी तुरत बोल बैठे—*'तुम्ह सब लायक। पठइय किमि सबही कर नायक॥'*

नोट—वाल्मी० ६५। २०—३० में जाम्बवन्तके वचन हैं कि 'आपकी शक्ति हम जानते हैं, आप हजार योजनतक जा सकते हैं, पर यह उचित नहीं। आप प्रेषणकर्ता स्वामी हैं, हम सब प्रेष्य हैं, आप हम सबके रक्षणीय हैं, स्वामीकी रक्षा परम्पराकी रीति है। आप इस कार्यके मूल हैं, सब भार आपपर है। मूलके रहनेपर सभी कार्य सिद्ध होते हैं, आप हमारे गुरु एवं गुरुपुत्र हैं। आपके आश्रयसे हमलोग कार्य सिद्ध कर सकते हैं।' इत्यादि। ऐसा कहकर फिर उन्होंने अङ्गदको समझाया कि 'चिन्ता न करो, मैं उसे प्रेरित करता हूँ जो इस कार्यको सिद्ध करेगा।'

**कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥ ३॥**
**पवनतनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥ ४॥**
**कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥ ५॥**
**रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भएउ पर्वताकारा॥ ६॥**

अर्थ—ऋक्षराज जाम्बवान्‌जी हनुमान्‌जीसे कहते हैं—अरे बलवान् हनुमान्! सुनो! तुम क्या चुप (मौन) साधे हुए हो॥ ३॥ तुम पवनपुत्र हो अतः तुम्हारा बल पवनदेवके बलके समान है, और तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञानके खजाना वा समुद्र हो॥ ४॥ संसारमें कौन-सा ऐसा कठिन काम है, जो हे तात! तुमसे न हो सके॥ ५॥ श्रीरामजीके कार्यके लिये ही तो तुम्हारा अवतार है—यह सुनते ही हनुमान्‌जी पर्वतके समान विशालकाय हो गये॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'कहइ रीछपति'* इति। यहाँ 'रीछपति' पद देकर इनके बोलनेका कारण कह दिया। सबसे बड़े बूढ़े हैं, फिर ऋक्षराज हैं; अतएव ये ही हनुमान्‌जीको प्रेरित कर सकते थे। इसीसे इन्होंने

प्रेरणा की। (ख) 'हनुमान्' और 'बलवान्' सम्बोधनका भाव कि जन्म लेते ही तुमने इन्द्रके वज्रके गर्वको चूर्ण कर दिया था, वज्र तुम्हारा कुछ कर न सका, तुम ऐसे बलवान् हो। उसपर भी अब तो तुम्हारी तरुणावस्था है। (ग) *'का चुप साधि रहेउ'* अर्थात् सबने अपना-अपना बल कहा और तुम बलवान् होकर भी चुप ही बैठे हो, यह क्या बात है? क्यों नहीं बोलते?

नोट—१ मिलान कीजिये—**'इत्युक्त्वा जाम्बवान्प्राह हनूमन्तमवस्थितम्। हनूमन्किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे॥'''''त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः॥ रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना।' 'श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमानतिहर्षितः।'''''बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः॥'** (अ० रा० सर्ग ९। १६—१८, २१-२२)

नोट—२—*'सुनु हनुमाना का चुप साधि रहेउ'* में वाल्मी० के **'तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य'** और अ० रा० के **'रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे'** का भाव भी जना दिया है। अर्थात् जब सब वानर अपना-अपना बल कह रहे थे तब ये एकान्तमें चुप बैठे भगवान्‌के स्मरणमें लीन थे। इनका ध्यान वानरोंकी ओर न था और न इनको खयाल हुआ कि वानरगण पुनः विषादयुक्त हो गये हैं। पं० विजयानन्द त्रिपाठीजीका मत है कि हनुमान्‌जी यह सोचकर चुप बैठे हैं कि 'यह रामदूत' होनेकी यश-प्राप्तिका अवसर है। अतः यदि कोई लेना चाहे तो मैं बोलकर बाधक क्यों होऊँ? मैं तो आज्ञाकारी हूँ। जब सब लोग आज्ञा देंगे तब जाऊँगा। जाम्बवान्‌जी इस बातको समझते थे। अतः सबके अस्वीकार करनेपर उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा कि वस्तुतः बलवान् तो तुम हो, तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम भी अपना बल कहो। वाल्मी० उत्तर० सर्ग ३६ में इनके शापकी कथा है जिसके कारण हनुमान्‌जीको अपना बल विस्मृत हो जाता है, स्मरण करानेसे याद आता है। अतएव जाम्बवान्‌ने इस तरह इनको बलका स्मरण कराया।—**'बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव। विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे॥'** (वाल्मी० ६६। ७)

प्र० स्वामीका मत है कि हनुमान्‌जीके चुप बैठनेमें श्रीरामजीकी प्रेरणा ही मुख्य कारण है। यदि वे प्रथम ही कह देते कि *'जाउँ मैं पारा'* इत्यादि तो इसमें उनकी कोई विशेषता न रह जाती। दूसरोंको कहनेका अवसर मिल जाता कि वे ही प्रथम तैयार हो गये, नहीं तो हम भी यह कार्य कर सकते थे। जनकपुरमें *'बीर बिहीन मही मैं जानी'* इत्यादि सुनकर भी जैसे श्रीरामजी धनुर्भङ्ग करनेको न उठे, दूसरोंको उठनेका अवसर दिया, वैसा ही यहाँ रामदूतने किया। सच्चे काम करनेवालेको यह अभिमान नहीं रहता कि मैं ही यह कार्य करूँगा, दूसरेको न करने दूँगा।*

नोट-३—*'पवनतनय'* का भाव वाल्मी० सर्ग ६६ व ६७ के **'मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः॥ त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः॥ वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु साम्प्रतम्।'** (श्रीजाम्बवान्वाक्य), **'आरुजन्पर्वताग्राणि हुताशनसखोऽनिलः। बलवानप्रमेयश्च वायुराकाशगोचरः॥ तस्याहं शीघ्रवेगस्य शीघ्रगस्य महात्मनः। मारुतस्यौरसः पुत्रः प्लवने नास्मि तत्समः॥'** (६७। ९-१०) इन श्लोकोंमें है। अर्थात् तुम पवनके पुत्र हो, उनके समान तुम्हारा तेज और वेग है। बलवान् और सीमारहित आकाशमें चलनेवाले शीघ्रवेग एवं शीघ्रगामी महात्मा वायुके पुत्र और उन्हींके समान शीघ्रवेगगामी हो। वायु ही प्राण है। हम सबोंके प्राण जा रहे हैं; तुम इस महासमुद्रको कूदकर सबके प्राणोंकी रक्षा करो। सब वानर दुःखी हैं, तुम

* र० ब०—अङ्गिरा स्मृतिकार लिखते हैं कि गुरुजनोंके सन्निधानमें मौन रहना चाहिये। जाम्बवान् एक तो सबमें वृद्ध दूसरे बलवान् भी हैं, जैसा उनके बलकथनसे ही स्पष्ट है। फिर अङ्गद भी गुरुतुल्य हैं; क्योंकि युवराज हैं, सबके नायक हैं। उसपर भी श्रीरामजीकी दी हुई मुद्रिका, जो रामजीके ही तुल्य है उनके पास है, मानो एक गुरु ये भी वहाँ विराजमान हैं। तब बोलनेकी आवश्यकता कहाँ रह गयी। फिर रामजीने उन्हें 'सुत' कहा है—'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।' (पर यह आगे कहेंगे अभीतक नहीं कहा है। हाँ, वे अपनेको सेवक-सुत समझते हैं, यथा—'सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे॥) '—इस तरह रामजी पिताके समान हुए। पितृकार्यमें मौन रहना ही चाहिये। अतएव हनुमान्‌जी मौन रहे। प्रमाण यथा—'संध्ययोरुमयोर्जाप्ये भोजने दन्तधावने। पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः॥ १॥ गुरूणां सन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः। एतेषु मौनमातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः॥ २॥

उपेक्षा क्यों कर रहे हो? (सर्ग ६६ श्लोक ३६-३७) यह सारी सेना आज तुम्हारा वह पराक्रम देखना चाहती है। राम-कार्यके लिये ही पवनदेवने तुम्हें उत्पन्न किया। यथा—'**रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना।**' (अ० रा० ९। १८)। अतः जिस लिये पैदा किये गये वह कार्य करो।

प० प० प्र०—यहाँसे सुरसा-प्रकरणतक प्रायः पवनतनय और हनुमान् शब्दोंका ही प्रयोग मिलता है। पवनतनय प्रथम मैनाक पर्वतको पावन करेंगे, फिर सुरसा और लङ्किनीको। पश्चात् लङ्काके प्रत्येक घरको इतना पवित्र कर देंगे कि वे सब मन्दिर ही बन जायँगे। अतः 'पवन' (पावन करनेवाले) तनय कहा।

टिप्पणी—२ '*पवनतनय बल पवन समाना।*' इति। (क) इस कथनसे सूचित किया कि जाम्बवन्तने इनके जन्मकी कथा कही, फिर इनके बलकी प्रशंसा की। यथा—'*जयति बालार्ककपिकेलि कौतुक उदित चण्डकर मंडल ग्रासकर्ता। राहु रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्बीकरन सरन भयहरन जय भुवनभर्ता॥*' (विनय० २५) '*जाको बाल बिनोद समुझि दिन डरत दिवाकर भोर को। जाकी चिबुक चोट चूरन कियो रद मद कुलिस कठोर को॥*' (विनय० ३१) (ख) बुद्धि-विवेक-विज्ञानके निधान कहनेका तात्पर्य कि जिनमें ये हैं वे सब काम कर सकते हैं। बुद्धिसे कार्यको समझकर बलसे उसे सिद्ध करे। कार्यमें विवेक रखे जिसमें अनुचित न होने पावे और विज्ञानसे कार्यका अनुभव करे कि अनुचित न होने पावे। [केवल सिंधु ही लाँघना नहीं है, आगे और भी कुछ कार्य करना है—महाबलवान् छलकारी प्राणियोंसे काम पड़ेगा—जिसमें बुद्धि, विवेक और विज्ञानसे काम लेना पड़ेगा, अतः कहते हैं कि तुम बुद्धि-विवेक-विज्ञानके निधान ही हो। तुम सबमें पार पाओगे। जहाँ जिसका काम होगा वहाँ उसे काममें लाओगे। बुद्धिसे व्यवहार समझोगे, विवेकसे ऊँच-नीचका निर्णय कर सकोगे और विज्ञाननिधान होनेसे तुमको अनेक शास्त्रोंका ज्ञान है, इससे तुम शास्त्रानुसार मिलोगे और भविष्यका विचार भी कर लोगे। (पं०, प्र०)]

टिप्पणी—३—'*सुनतहिं भयउ पर्बताकारा।*' इति। (क) इससे जनाया कि रामकार्यके लिये अपना अवतार सुनकर इनके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ, यथा—'*रामकाज लगि जनम जग सुनि हरषे हनुमान।*' (रामाज्ञा ५। १) (ख) यहाँपर मुख्य दो बातें जाम्बवन्तने कहीं—एक तो यह कि तुम ऐसे-ऐसे बलवान् हो। और तुम्हारा जन्म रामकार्यहीके निमित्त हुआ है और दूसरे कि तुम क्या चुप साधे बैठे हो। पहलेके उत्तरमें वे पर्वताकार विशाल शरीर हुए और दूसरेके उत्तरमें उन्होंने सिंहनाद किया जैसा आगे कवि लिखते हैं।

शीला—१ जबतक जाम्बवान् हनुमान्‌जीकी प्रशंसा करते रहे और श्रीरामजीका नाम न लिया तबतक वे कुछ न बोले। जब '*राम*' नाम लिया—'*रामकाज लगि तव अवतारा*' तब वे गरज उठे।

शीला—२ जाम्बवन्तने कहा था कि—(१) '*का चुप साधि रहेउ बलवाना*' (२) '*पवनतनय बल पवन समाना*' (३) '*बुधि बिबेक बिग्यान निधाना*' (४) '*कवन सो काज कठिन जग माहीं*' और (५) '*रामकाज लगि तव अवतारा।*' इनके उत्तर क्रमसे हनुमान्‌जीमें ये हैं—(१) '*सिंहनाद करि बारहिं बारा*' (२) '*लीलहि नाघउँ जलनिधि खारा*' (३) '*सहित सहाय रावनहि मारी*' (४) '*आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी*' और (५) '*सुनतहि भयउ पर्बताकारा।*'

**कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा॥ ७॥**
**सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहि नाघउँ जलनिधि* खारा॥ ८॥**
**सहित सहाय रावनहि मारी। आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी॥ ९॥**
**जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥ १०॥**

शब्दार्थ—**उपारी** (सं० उत्पाटनसे)=उखाड़कर।

अर्थ—(कैसे पर्वताकार हुए सो कहते हैं—) उनके तनका रङ्ग सोनेका-सा है, तनमें तेज विराजमान है, (ऐसा मालूम होता है) मानो यह दूसरा पर्वतोंका राजा सुमेरु है॥ ७॥ बारंबार सिंहकी तरह गरज-

* जलधि अपारा—(ना० प्र०)

गरजकर वे श्रीहनुमान्जी बोले इस खारे समुद्रको मैं खेलहीमें लाँघ जाऊँगा (अर्थात् एक क्या मैं सारे समुद्रों को लाँघ सकता हूँ और यह जो खारा समुद्र है यह तो सबसे छोटा है, इसका लाँघना क्या? यह तो मेरे लिये खेल है)॥ ८॥ रावणको उसके सहायक (सेना आदि) सहित मारकर त्रिकूटाचलको यहाँ उखाड़कर ले आऊँ? (अभिप्राय यह कि समुद्रके मध्यमें लङ्का दुर्ग बड़ा दुर्गम और रावण बड़ा भारी वीर भले ही क्यों न हो, पर मैं तो उसको और उसकी सेनाको मार डालनेमें समर्थ हूँ और दुर्गकी क्या मैं पर्वत-का-पर्वत उखाड़कर ला सकता हूँ।) हे जाम्बवान्! (बल तो हमने तुम्हारे प्रेरणा करनेसे अपना बता दिया जैसे औरोंने पूर्व अपना-अपना बल कहा है, पर मेरे लिये उचित कर्तव्य क्या है?) मैं आपसे पूछता हूँ, आप मुझे उचित सलाह दीजिये॥ ९॥

टिप्पणी—१ *'कनक बरन तन'* इति। यहाँ हनुमान्जीको सुमेरुसे उपमा दी। हनुमान्जी कनकवर्ण, वैसे ही सुमेरु सुवर्णमय, हनुमान्जीका स्वरूप भारी और सुमेरु भी भारी सुमेरु पर्वतोंका राजा, हनुमान् कपिराज, यथा—**'सकलगुणनिधानं वानराणामधीशम्'**—(सुं० मं०), *'जयति मर्कटाधीश मृगराज विक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली'*—(विनय०), और **'वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ'**—(बा० मं०)। यहाँ उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है।

टिप्पणी—२ *'उचित सिखावन दीजहु मोही'* इति। भाव यह कि जो हमने अपना बल रावणवध इत्यादि कहा वह अनुचित तो नहीं है, क्योंकि इसमें रामजीका यश नहीं है किंतु अपमान है। यही बात अंगदने कही है, यथा—*'जौं न राम अपमानहि डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥ तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाँउ। तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥'* (लं० ३०) अपनी बातको अनुचित समझते हैं, इसीसे उचित उपदेश माँगते हैं।

मा० म०—जब हनुमान्जी उपदेशकोंके नाते श्रीरामचन्द्रजीके निकटसे चले तब उन्होंने शिक्षाके सींव दो उपदेश दिये।—*'कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।'* तथापि यहाँ हनुमान्जीने जाम्बवन्तसे पूछा; इसका कारण यह है कि वे वीररसमें मग्न हो गये, अतएव वह (प्रभुके उपदेशकी) सुधि जाती रही। अतः जाम्बवन्तसे पूछा तो उन्होंने वही उपदेश दिया और उनको लड़ैतीपीव श्रीरामचन्द्रजीमें दृढ़ किया।

दीनजी—आगे सुन्दरकाण्डमें कहा है—*'जामवंतके बचन सुहाये'* वे सोहाए वचन यह हैं जो आगे जाम्बवन्तजी कह रहे हैं, जिनको सुनकर हनुमान्जीका अभिमान दब गया और हनुमान्जी अनुचित कथनके दोष तथा दण्डसे बच गये, नहीं तो झूठे ठहरते, क्योंकि रावण उनके हाथसे न मरता। हनुमान्जी आवेशमें ऐसी बातें कह गये—जिनका पूर्ण करना उनकी सामर्थ्यसे बाहर था; क्योंकि रावणकी मृत्यु श्रीरामजीसे होनी थी। अतएव अपनी भूलपर विचार करके उन्होंने कहा कि हे जाम्बवन्त! मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या करूँ? मुझे उचित शिक्षा दीजिये; क्योंकि मैं जो कुछ कह गया उसमें अनौचित्य और औचित्य दोनों हैं। आप मुझे औचित्य बतलाइये। [यहाँ वीररस है। रामकार्य करनेका उत्साह स्थायीभाव है, जाम्बवन्तके वचन उद्दीपन विभाव, और प्रसन्न होना, बल संभाषणादि अनुभाव हैं, उग्रता आदि संचारी हैं।—(वीरकवि)]

शीला—*'लीलहि नाघउँ जलनिधि खारा'* के *'खारा'* का भाव यह कि मैं सातों समुद्र लाँघ जाऊँ यह क्या है। पुनः यह भी कि यह कुछ मीठा नहीं है कि इसमें स्नान,जलपान, विहार आदिमें देर लगा दूँ।

प० प० प्र०—१ हनुमान्जी विवेकप्रधान वैराग्यादि गुणसम्पन्न उत्तम साधकके प्रतीक हैं। यद्यपि जितने भी पंचभूतमय शरीरधारी हैं वे सभी *'ईश्वर अंश जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥'* हैं, तथापि किसीको बिना सद्गुरुद्वारा अपने स्वरूपका बोध कराये निज स्वरूपका स्मरण नहीं होता।

प० प० प्र०—२ मानव-शरीरमें भी हनुमान्जी शक्तिरूपमें, प्राणशक्तिरूपमें निवास करते ही हैं। यह है कुण्डलिनीशक्ति, जिसको मुख्य-प्राण भी कहते हैं। यह शक्ति भी सुप्त ही रहती है। जब कोई विज्ञ गुरु उसे जागृत कर देते हैं तब उस जीवको वैराग्यादिकी प्राप्ति होती है और उसमें भी महदन्तर पड़ता है। तत्पश्चात् यह शक्ति मोहरूपी सागर लाँघकर देहरूपी लङ्कापुरीमें अशोकवनमें स्थित श्रीभक्ति शान्ति सीताजीको शोध करनेमें सफल होता है।—इत्यादि आध्यात्मिक और यौगिक अर्थ भी यहाँसे लेकर सम्पूर्ण हनुमच्चरित्रमें हैं।

**एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥ ११॥**
**तब निज भुजबल राजिवनयना। कउतुक लागि संग कपि सयना॥ १२॥**

अर्थ—हे तात! तुम जाकर मात्र इतना ही करो (अर्थात् अधिक पुरुषार्थका अभी काम नहीं है) कि श्रीसीताजीको देख आकर खबर कहो॥ ११॥ तब राजीवनयन श्रीरामजी अपने बाहुबलसे कौतुकके लिये वानरी सेना सङ्ग लेंगे॥ १२॥

टिप्पणी—१ *'निज भुजबल'* का भाव कि अपने बाहुबलसे निशाचरोंका संहार करेंगे, सेना तो केवल कौतुकके निमित्त है। ☞ *'राजिवनयन'* पदका प्रयोग प्राय: तब-तब कविने किया है, जब-जब कृपादृष्टिका होना सूचित किया है।—यथा *'देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिवनयना॥' 'राजिवनयन धरें धनुसायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥'* (१। १८। १०) *'सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिवनयना॥'* (५। ३२। १) इत्यादि। यहाँ इस पदके प्रयोगका तात्पर्य यह कि निशाचरोंपर श्रीरामजीकी कृपा है, उनको मारकर मुक्ति देंगे। यथा—*'उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर॥ देहिं परमगति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी॥'* (६। ४४। ४-५) *'रामाकार भए तिन्हके मन। मुकुत भए छूटे भवबंधन॥ रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही।'*

रा० प्र० श०—यह लीला-विभूति प्रभुका कौतुकागार है, यथा—*'जग पेखन तुम्ह देखनिहारे'* जब जीवोंपर कृपादृष्टि होती है तभी वे इस लीला-विभूतिमें आते हैं। सामुद्रिकमें कहा है कि जिसके कमलवत् नेत्र होते हैं वह दयावान् और दूसरोंका कष्ट निवारण करनेवाला होता है। विविध भावोंके अनुकूल जहाँ कविने नखशिख कहा है वहाँ सामुद्रिकके मतसे भगवत्के गुण ही कहनेका तात्पर्य है।

पं०—दुष्टवध-प्रसङ्गमें *'राजिवनयन'* महासौम्य विशेषण देनेका भाव यह है कि—१ हृदयका कोप आँखोंमें प्रकट होता है। प्रभुके हृदयमें कोप नहीं है, क्योंकि यदि होता तो दुष्टोंको मुक्ति कैसे देते? [पर *'जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥' 'राम रोष पावक अति घोरा', 'निर्वानदायक क्रोध जाकर'* इन उद्धरणोंसे इसका विरोध होता है। (प० प० प्र०)] २—कोप तो परायेपर होता है और ये तो अपने पुराने दास हैं, अब कृपादृष्टिसे उनको पुन:पार्षद बनाना है। अतएव *'राजिवनयन'* कहा।

प० प० प्र०—*'राजिवनयना'* इति। (क) राजीव अथवा अरुणनयन वीर या शृङ्गाररसके निदर्शक हैं। मानसमें श्रीरामजीके नेत्रोंका उल्लेख एकसठ बारसे कम नहीं आया है। इसमें से बाईस बार राजीव विशेषण और सोलह बार कमल, सरोज आदि अन्य कमलवाची विशेषण साथमें हैं। २३ बार कमलादि शब्द नहीं हैं। (ख) यह कहना कि 'राजिव' विशेषण यहाँ वधादि क्रोधजनित कार्य सूचित नहीं करता अव्याप्ति दोषयुक्त है और मानसावलोकनकी अपूर्णताका निदर्शक है। यथा—*'मैं देखौं खल बल दलहि बोले राजिवनैन।'* (६। ६६) कुम्भकर्ण और उसकी सेनाका संहार करनेको निकलते समय यह कहा गया है।

पं० प्र०—*'कौतुक लागि'* का भाव कि राक्षसोंने जो देवताओंको बहुत दु:ख दिया है उसका बदला वानरोंद्वारा सूत्रधार यहाँ लक्षित करते हैं। इनके द्वारा राक्षसोंका गर्व भी हरण करायँगे। पुन:, भाव कि यह सारा ब्रह्माण्ड जिसकी मायाका कौतुक है वह बंदरोंको साथ लेकर केवल वानरों और निशाचरोंका कौतुक देखना चाहता है।

**छंद—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।**
**त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥**
**जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई।**
**रघुबीरपद पाथोज मधुकर दासतुलसी गावई॥**

अर्थ—कपिसेना सङ्ग लिये हुए श्रीरामजी निशाचरोंका नाश करके श्रीसीताजीको लायेंगे। इस त्रैलोक्यपावनकर्त्ता सुन्दर यशको सुर, मुनि और नारद आदि बखान करेंगे; जिसे मनुष्य, सुनते, गाते, कहते,

समझते परमपद पाते हैं और पावेंगे और जिसे रघुवीरपद-कमलका मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है।

टिप्पणी—१—*'नारदादि बखानिहैं'* इति। श्रीरामचरितके बखान करनेमें नारदजी सबके आदिमें हैं, सबमें प्रधान ये ही हैं, इनकी प्रथम गिनती की गयी है। यथा अध्यात्म०—'**यस्यावतारचरितानि विरञ्चिलोके गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः।**'

टिप्पणी-२—(क) सम्पातीने वानरोंसे किष्किन्धाकाण्डतकका चरित कहा था—२८ (७—९) देखिये। अब जाम्बवन्तजी आगेका अर्थात् सुन्दरसे उत्तरकाण्डतकका चरित्र कह रहे हैं। (ख) *'कपिसेन संग सँघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं'* यह लङ्काकाण्ड है। और (ग) *'त्रैलोक्यपावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं।'* यथा—*'राजाराम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥'* (१। २५। ६), *'बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥ नित नवचरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥'* (७।४२) यह यश-बखान उत्तरकाण्डका है जब श्रीरामजी राजा हुए।

टिप्पणी—३—किष्किन्धाकाण्डकी समाप्तिमें सातों काण्ड समाप्त किये। इससे यह दरसाया कि इस काण्डके पाठसे सातों काण्डोंके पाठका फल प्राप्त होता है।

टिप्पणी—४—*'जो सुनत गावत कहत'''''* इति। यहाँ सुयशका माहात्म्य कहते हैं। *'जो सुनत'* अर्थात् श्रोता होकर सुननेवाले, *'गावत'* अर्थात् रागसे गानेवाले, *'कहत'* अर्थात् वक्ता या व्यास होकर कहनेवाले और 'जो समुझत' अर्थात् अर्थ और भावको समझनेवाले, ये चारों परम पद पाते हैं। वैष्णवसिद्धान्तसे मुक्ति चार प्रकारकी है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। और यहाँ चार क्रियाएँ दी हैं—'सुनत, गावत, कहत और समुझत।' क्रमशः सुननेवाले सालोक्य पाते हैं, गानेवाले सामीप्य(क्योंकि भगवान्का श्रीमुखवचन है कि मैं वहीं रहता हूँ जहाँ मेरे भक्त यशोगान करते हैं—'**मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।**') वक्ता सारूप्य (क्योंकि व्यास भगवान्का स्वरूप है) और समझनेवाले सायुज्यमुक्ति पाते हैं, यथा—*'जानत तुम्हइँ तुम्हहिं होइ जाई।'* (२।१२७।३)

यहाँ प्रथम *'सुनत'* पद दिया, क्योंकि नवधाभक्तिमें 'श्रवण' भक्ति प्रथम भक्ति है। *'सुनत'* से श्रवण और *'गावत'* से कीर्तन भक्ति जनायी। कीर्तन दो रीतिसे होता है, एक तो गानरीतिसे, दूसरा कथारीतिसे। इसीसे गाना और कहना दोनों भेद कहे। *'समुझत'* से स्मरण भक्ति और *'रघुबीर पदपाथोज मधुकर'* से पादसेवन भक्ति कही।

नोट—१ मयङ्ककारका मत है कि *'जो सुनत गावत'''''* का भाव यह है कि इस काण्डके तत्त्व कथन करनेवालेके समीप 'उत्तम समझनेवाला' चाहिये और इसके गानेवालेके निकट प्रेमपूर्वक सुननेवाला चाहिये। तात्पर्य कि जो इस प्रकार समझेंगे और गायेंगे वे अवश्य परमपद पायेंगे।

प्र०—स्वामीजीका मत है कि 'सुनत गावत, कहत और समुझत' ये चारों भिन्न-भिन्न और परस्पर निरपेक्ष हैं—ऐसा मानना भारी भूल है। यह नीचेके अवतरणोंके मिलानसे स्पष्ट हो जायगा।

श्रवण—*'मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत। समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥'* (१। ३०) *'तदपि कही गुर बारहि बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥'* *'जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे। तस कहिहउँ हिय हरिके प्रेरे॥'* (१। ३१। ३) इन उद्धरणोंसे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम अनेक बार श्रवण करनेसे जब समझमें आ जाय तब कहना शक्य होता है और वह भी *'हरिके प्रेरे'*।

अब रहा *'गावत'* का विचार। सुननेपर जब गान (सङ्कीर्तन) किया जाता है तब यह ज्ञात होता है कि कहाँतक समझ पड़ा है। जो समझमें नहीं आया उसे फिर पूछना पड़ता है, तब पुनः-पुनः श्रवणसे समझमें आता है। जिसने स्वयं नहीं समझा वह कहेगा क्या? अतः चारोंको सापेक्ष्य मानना पड़ेगा। पुनः—*'जे एहि कथहिं सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥ होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥'* (१।१५) देखिये।

टिप्पणी—५ *'परमपद नर पावई'* इति। 'नर' पद देकर जनाया कि नारदादिके बखाने हुए चरितोंके अधिकारी 'नर' हैं, नारी नहीं। यथा—*'जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।'* (१। ११०। १) इसीसे 'परमपद' का पाना नरको कहा है, नारीको नहीं। और तुलसीदासजी जो रामचरित भाषामें गाते हैं उसके अधिकारी तो नर और नारी सभी हैं। इसीसे आगे *'सुनहिं जे नर अरु नारि'* ऐसा कहा (यह त्रेतायुगकी बात है जब संस्कृत ही देवभाषा थी, यहाँतक कि वानर हनुमान् भी उस भाषाके पूर्ण पण्डित थे)।

नोट—२ पंजाबीजी लिखते हैं कि जाम्बवान्‌जीके मुखसे रामचरितका माहात्म्य छन्दमें कहा कि *'परमपद नर पावई'* और आगे गोस्वामीजी अपने मुखसे रामसुयश-श्रवणादिका फल कहते हैं जिसमें स्त्री-पुरुष वर्णाश्रमादि सबोंको अधिकारी कहते हैं।

प्र०—स्वामीजी लिखते हैं कि छन्दमें जो 'नर' शब्द है उसका ही अर्थ आगे स्पष्ट किया है। नारदादिने जो यश गाया है। उसका श्रवण करनेसे स्त्रियोंको परमगति नहीं मिलेगी ऐसे कुतर्कके लिये स्थान नहीं रखा है। अन्यथा भागवतादि पुराणोंके श्रवणादिसे स्त्रियोंको परमगति नहीं मिलेगी ऐसा कहना पड़ेगा। शबरीजीको परमगति प्राप्त हुई है वह तुलसी-मानस श्रवणसे नहीं। (प० प० प्र०) ☞ मेरी समझमें 'नर' शब्द मनुष्यमात्रके अर्थमें है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों आ जाते हैं। अन्यत्र भी यह शब्द चरित्रश्रवणके सम्बन्धमें आया है। यथा—*'रघुबंसभूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥ सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं। दारुन अबिद्या पंचजनित बिकार श्रीरघुबर हरैं॥'* (७। १३०)—इनमें भी तो 'नर' ही शब्द है। यह तुलसी-वाक्य है और तुलसी-मानसके ही सम्बन्धमें कहा गया है। संकुचित अर्थ करनेसे दोहा ३० के वाक्यसे विरोध भी होगा। 'नर' शब्द और भी बहुत जगह मनुष्यमात्रके लिये आया है। यथा—*'ते नर यह सर तजहिं न काऊ।'* (१।३९।७) *'जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥'* (५। ४८। २) इत्यादि।

टिप्पणी—६ *'रघुबीरपद पाथोज मधुकर'''*' इति। (क) भाव कि जैसे भौंरा मकरन्द पान करता है वैसे ही मैं तुलसीदास श्रीरामपदारविन्दमें अनुराग करता हूँ। यही मकरन्दका पान करना है। यथा—*'पद पदुम परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना।'* (१।२११) भ्रमर गुञ्जार करता है, वैसे ही मैं श्रीरामसुयशका गान करता हूँ। [भ्रमर बिना पद्मके स्थिर नहीं होता, यथा—*'पदुम भँवर बिनु दूबर है पदुम भँवर संबन्ध सनातन देवरचित नहि बरबर है।'* (श्रीजानकी विन्दु) इस कारणसे एवं इससे कि समुद्रोल्लङ्घन करना है, कमलको हृदयमें रखना कहा। (प्र०)]

प० प० प्र०—*'रघुबीर'* शब्दसे भावी कथा सूचित की गयी है। कृपावीर हैं, अतः *'सीतहि आनिहैं।'* युद्धवीर हैं, अतः *'संघारि निसिचर'* कहा। दानवीर हैं, अतः विभीषणको राज्य और रावणादिको सद्गति देंगे। धर्मवीर हैं, अतः धर्मनीति रक्षण करते हुए ही युद्ध करेंगे। धर्मसंस्थापन होगा, यह *'सुजस'''*' से सूचित किया। विद्यावीर हैं, दशरथजीको दृढ़ ज्ञान देंगे।

टिप्पणी—७ *'दास तुलसी गावई'* इति। सुनने, गाने, कहने और समझनेवाले, इन चारोंमेंसे गोस्वामीजी अपनेको गानेवाला कहते हैं। और लोग सुयश गाकर परमपद पाते हैं, पर तुलसी रामपद-प्रीति होनेके लिये गाते हैं। ये दो बातें कहकर जनाया कि श्रीरामचरित श्रीरामपदारविन्दमें रति (प्रेम) और परमपद दोनोंके दाता हैं। यथा—*'रामचरनरति जो चह अथवा पद निर्बान। भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान।'* (७। १२८)

अलङ्कार—*'जो सुनत गावत''''पावई'* में 'प्रथम निदर्शना' है। श्रीरघुवीरपदमें कमलका आरोप और तुलसीदासपर भ्रमरका आरोपण 'परम्परित रूपक अलङ्कार' है। जाम्बवन्तजीके मुखसे त्रेतामें यह रूपक कहलाना 'भाविक अलङ्कार' है। (वीर)

प० प० प्र०—बालकाण्ड दोहा २४, २५ तथा मानसरूपकमें समग्र रामचरित संक्षेपमें कहा गया है। यहाँ मानसके मध्यमें दोहा २ में श्रीरामजीके मुखसे ही अरण्यकाण्डतककी कथा कही गयी है, फिर दोहा २४ में संपातीने भी कही है और यहाँ श्रीजाम्बवान्‌जीके मुखसे उत्तरकाण्डतककी कथा कही है। उत्तरकाण्डमें भुशुण्डिजीके मुखसे चौरासी

प्रसंगों सहित रामचरित कहा है। इस प्रकार *'जेहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥'* (७। ६१। ६) यह वचन चरितार्थ हुआ है। अन्य चार काण्डोंमें भी समग्र मानसका सार ग्रथित है।

**दोहा—भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।**
**तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि*॥ ३०॥**

अर्थ—श्रीरघुनाथजीका यश भव (रोग) की दवा है। जो स्त्री और पुरुष इसे सुनते हैं, उनके सब मनोरथ त्रिशिराके शत्रु श्रीरामजी सिद्ध करते हैं॥ ३०॥

वि० त्रि०—*'भव भेषज रघुनाथ जसु''''त्रिसिरारि'* इति। यह रामचरितमानस संसृति रोगके लिये चिकित्सा ग्रन्थ है। चिकित्सामें तीन प्रकारसे औषध दिया जाता है। (१) चूर्णरूपसे (२) अर्करूपसे (३) गोलीके रूपसे। सो चूर्ण तो पहिले बालकाण्डमें ही कहा, यथा—*'अमिय-मूरि-मय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू॥'* अर्करूपसे यहाँ कहते हैं, *'भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि।'* अर्थात् रघुनाथयश पेयरूपसे भेषज हैं, यथा—*'नाथ तवानन ससि स्त्रवत कथा सुधा रघुबीर। श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर॥'* गोलीरूपसे भव-भेषजका वर्णन उत्तरकाण्डमें किया जायगा।

ऊपर छन्दमें कह आये हैं, *'जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई।'* उसी बातको यहाँ *'भव भेषज'* कहकर स्पष्ट किये देते हैं। रघुनाथ-यशमेंसे किष्किन्धाकाण्डके सेवनसे सकल मनोरथकी सिद्धि होती है। यह काण्ड गृहमेधियोंके लिये अधिक उपयोगी है।

टिप्पणी—१ *'सकल मनोरथ सिद्ध करहिं'* इति। सकल मनोरथसे इहलोक और परलोक दोनोंकी प्राप्ति कही। इस लोकमें सुख-सम्पत्तिका भोग करते हैं और श्रीरामयश भव-भेषज है, अत: भवसे छूटकर रामधामको जाते हैं। यथा—*'जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥ सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुबरपुर जाहीं॥'* (७। १५। ३-४)

टिप्पणी—२ *'सिद्ध करहिं त्रिसिरारि'* इति। त्रिशिरारि सिद्ध करेंगे, इस कथनमें भाव यह है कि देवर्षि नारदादिकी वाणीमें तो स्वत: प्रभाव है, इसमें त्रिशिरारि श्रीरामजीका बल भरोसा है, वे ही सिद्ध करेंगे।

टिप्पणी—३ *'त्रिसिरारि'* पाठ शुद्ध है क्योंकि रामयश सुननेवालेके मनोरथके सिद्धकर्त्ता सब काण्डोंके अन्तमें श्रीरघुनाथजीको ही लिखा है।

बालकाण्ड—*'उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं। बैदेहि रामप्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं॥'*
लङ्का—*'समर बिजय रघुबीरके चरित जे सुनहिं सुजान। बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान॥'*
उत्तरकाण्ड—*'सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरै। दारुन अविद्या पंचजनित बिकार श्रीरघुपति हरै॥'*
तथा यहाँ—*'तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि।'*

नोट—*'त्रिपुरारि'* पाठके सम्बन्धके भाव और विचार नीचे दिये जाते हैं—

लाला भगवानदीनजी लिखते हैं कि 'महादेवजी रामभक्तिके आचार्य हैं, वे ही रामयशगायकोंके मनोरथ सिद्ध करते हैं। इस काण्डके आदिमें काशीपुरी और काशीपति दोनोंकी वन्दना दो सोरठोंमें की गयी है। तदनुसार अन्तमें महादेवजीके विषयमें लिखना सङ्गत है। आदि अन्त एक-सा उत्तम होता है।'

पाँड़ेजी कहते हैं कि 'यह काण्ड शङ्करजीकी प्रसन्नतामें संपुटित है। क्योंकि *'मुक्ति जन्म महि जानि'* यह आदि है और *'सिद्ध करहिं त्रिपुरारि'* में विश्राम है।

रा० प्र० और पंजाबीजी कहते हैं कि 'त्रिपुरारि भक्तराज हैं और रामकथाके प्रवर्तक हैं। *'त्रिपुरारि'* शब्दसे मङ्गलाचरणका सोरठा उपक्रम हुआ और यहाँ उसका उपसंहार हुआ। बालकाण्डमें जो कहा था

* त्रिसरारि—प० रा० गु० द्वि०, १७२१, भा० दा०। त्रिपुरारि—पं० शिवलाल पाठक, रा० प्र०। दोनों ही प्राचीन प्रतिलिपियोंके पाठ हैं। कविलिखित पाठ कौन है, निश्चय नहीं किया जा सकता। अतएव हमने दोनों पाठोंके भाव और दोनोंके सम्बन्धके मत दे दिये हैं।

कि *'सपनेहु साचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ। तौ फुर होउ जो कहउँ सब भाषा भनित प्रभाउ॥'* उसमें जो हेतु था वही यहाँ है। पुनः त्रिकूटाचलकी कथा कहनी है, इससे त्रिपुरारि नाम दिया।'

पं० शिवलाल पाठकजी लिखते हैं कि 'शिवजी फल देंगे' ऐसा कहनेका कारण यह है कि किष्किन्धाकाण्ड काशीरूप है, अतः काशीपति इसका फल देंगे।

प्र० स्वामीजीका मत इसी पक्षमें है। आगे सोरठामें देखिये।

श्रीधर मिश्रजी लिखते हैं कि सप्तकाण्ड रामचरितको सप्तपुरी कहा है। चौथी पुरी काशी है वैसे ही यह चौथा काण्ड है। अतएव इस काण्डको काशी निरूपण करके प्रारम्भमें भी शङ्करवन्दना किष्किन्धाकाशीका अधिष्ठातादेवता जानकर किया और अन्तमें मनोरथका सिद्धकर्त्ता कहा। जैसे वरुणासे अस्सीतक काशी है वैसे ही यहाँ *'आगे चले बहुरि रघुराया'* में 'बहुरि' का 'ब' वरुणाके आदि का 'व' है और अन्तमें जो *'सिद्ध करहिं त्रिपुरारि'* के 'सिद्ध' शब्दमें 'सि' है वही 'अस्सी' के अन्तकी 'सी' है। यही वकार वरुणा और सिकार अस्सीके बीचकी किष्किन्धा-काशी है। (मानसमयंक)

रा० प्र० श०—*'बिषम गरल जेहि पान किय'* और *'को कृपाल संकर सरिस'* आदिमें कहकर जनाया कि जिन्होंने देवताओंकी रक्षा की थी; वे ही शिव इस काण्डमें विरहानलसे दुःखी श्रीरामजी तथा त्रितापसे खेदित समस्त जीवोंकी रक्षा करें। अपने रूपान्तर श्रीहनुमान्‌जीद्वारा मिलकर श्रीयुगलमूर्तिके संतप्त हृदयको उन्होंने शान्त किया।

टिप्पणी—४ सातों काण्डोंकी फलश्रुतियोंके भाव—

बालकाण्डमें श्रीरामजीके व्रतबंधविवाहादि सुखका वर्णन है। अतएव बालकी समाप्तिमें 'सुख और उत्साह' की प्राप्ति कही। अयोध्याकाण्डमें श्रीभरतजीका प्रेम और वैराग्य वर्णित है, अतः उसके अन्तमें प्रेम और वैराग्यकी प्राप्ति कही। यथा—*'भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयरामपद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति॥'*

अरण्यमें श्रीरामजी स्त्रीविरहसे दुःखी हुए, इसीसे वहाँ अन्तमें स्त्रीका त्याग कहा है यथा *'दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।'*

किष्किन्धामें श्रीरामजीका मनोरथ सिद्ध हुआ—श्रीहनुमान्‌जी और सुग्रीवजी ऐसे सेवक मिले, सीताशोधका उद्योग हुआ। अतएव इसके अन्तमें मनोरथकी सिद्धि कही।

सुन्दरकाण्डमें श्रीरामजीको बिना जहाज ही समुद्रपार उतरनेका उपाय मिला। अतः उसकी समाप्तिमें बिना जहाजके समुद्रका तरना कहा। यथा—*'सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान। सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥'*

लङ्कामें श्रीरामजीको विजय प्राप्त हुई। अतः वहाँ विजय विवेक विभूतिकी प्राप्ति कही।

उत्तरमें राज्याभिषेक हुआ। यह दीनोंके लिये याचनाका समय है। अतः वहाँ गोस्वामीजी अपना माँगना लिखते हैं। यथा—*'मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर। अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भव भीर॥'*

**सोरठा—नीलोत्पल* तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।**
**सुनिय तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ† खग बधिक॥ ३०॥**

**इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विशुद्धसंतोषसम्पादनो नाम चतुर्थः सोपानः समाप्तः‡।**

शब्दार्थ—उत्पल (सं०)=कमल। नीलोत्पल=नील कमल। नीलोपल=नील उपल=नीलमणि।

अर्थ—जिनका नीलोत्पलके समान श्याम शरीर है जिसमें करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक शोभा है। जिनका नाम पापरूपी पक्षियोंके लिये बहेलिया रूप है उनका यशसमूह (चरित) सुनिये॥ ३०॥

* नीलोपल—(पं० रामकुमार)। † 'खग अघ'—(रा० प्र०, काशी)।

‡ 'सम्पादनो नाम चतुर्थः'—(ना० प्र०)। 'सम्पादनो नाम चतुर्थ'—(भा० दा०)।

कलिके सम्पूर्ण पापोंका नाशक विशुद्ध संतोषका सम्पादन करनेवाला श्रीरामचरितमानसका चौथा सोपान समाप्त हुआ।

टिप्पणी—१ (क) यहाँ *'नीलोत्पल तन स्याम कामकोटि सोभा अधिक', 'तासु गुन ग्राम'* और *'जासु नाम'* अर्थात् रूप, गुण और नाम तीनों कहकर जनाया कि रूप हृदयमें धरे, गुण श्रवण करे, और नाम जपे। यथा—*'श्रुति रामकथा मुख राम को नाम हिये पुनि रामहिको थलु है।'* (क० उ० ३७) (ख) *'नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक'* इससे रूपका नियम किया कि जिस रूपसे मनु महाराजके सामने प्रकट हुए उसीका ध्यान धरो। मनुको इसी रूपसे दर्शन हुआ। यथा—*'नीलसरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम। लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥'* (१। १४६) (ग) *'सुनिय तासु गुनग्राम'* इस कथनसे गुणका नियम किया कि रामचरितमानस सुनो। मनुप्रार्थित मूर्तिका चरित मानसरामायण है। यथा—*'लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौं मति अनुसारा॥'* (१। १४१। ६) (घ) *'जासु नाम अघ खग बधिक'* इससे नामका नियम किया कि रामनाम जपो, अघखगगणबधिक रामनाम ही है, यथा—*'राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघखगगन बधिका॥'* (३। ४२। ८) बधिककी उपमा देनेका भाव कि बधिक स्वाभाविक ही पक्षियोंका वध करता है; इसी प्रकार रामनाम स्वाभाविक ही पापोंका नाश करता है।

☞ इस तरह श्रीरामजीके रूप, गुण और नामका माहात्म्य कहकर यह काण्ड समाप्त किया। [मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें भी नाम, रूप और लीला तीनों कहे गये हैं, वैसे ही यहाँ उपसंहारमें तीनों कहे गये।]

प० प० प्र०—*'जासु नाम अघ खग बधिक'* इति। यह उपसंहारका अन्तिम चरण है। इसमें नामका स्पष्ट उल्लेख है। मङ्गलाचरणमें नामकी वन्दना केवल इसी काण्डमें है। यह काण्ड नामपर है, मङ्गलाचरण देखिये।

*'अघ खग बधिक'* इति। खग शब्द श्लिष्ट है। खग=मेघ।=वायु। अघ खग=पातकरूपी मेघ। अघखग बधिक खग=पापरूपी मेघोंका विनाशक प्रभंजन। (३। ४२ देखिये) पापरूपी मेघपटलको अन्त:करणरूपी आकाशमेंसे भगाकर रामनामरूपी राकेश शीतलता, प्रकाश, अमृत और प्रसन्नतादि भर देता है।

इस प्रकार रामनामके प्रभावसे हृदय पूर्ण निर्मल होनेपर ही दासको प्रेमाभक्तिकी याचना करनेका अधिकार प्राप्त होता है। अत: सुन्दरकाण्डके मङ्गलाचरणमें ही यह याचना करते हैं।

प० प० प्र०—इस काण्डके मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें नाम वन्दना और सोरठोंमें काशी तथा शिवजीकी वन्दना की है। यहाँ उपसंहारके दोहेमें प्रथम त्रिपुरारिका उल्लेख, पश्चात् 'अघबधिक' में काशीजीका उल्लेख और अन्तमें नामका उल्लेख है। अघबधिक=अघहानिकर। यह काण्ड काशीपुरी है, अत: उपक्रममें ही नहीं किंतु मध्यमें भी (वालिवधप्रकरणमें) शिवजी और काशीजीका उल्लेख है। अत: *'त्रिपुरारि'* पाठ ही ठीक है।

टिप्पणी—२ **'इति श्रीरामचरितमानसे……विशुद्ध संतोष सम्पादनो नाम……'** इति। प्रत्येककाण्डके अन्तमें जो फलश्रुति है वही उस सोपानका नाम है। जैसे, (१) बालकाण्डकी फलश्रुतिमें व्रतबन्ध विवाहका वर्णन है। वह सब कर्म है। कर्मका फल सुख है। इसीसे बालकाण्ड 'सुखसम्पादन' नामका सोपान है। (२) अयोध्याकाण्डकी फलश्रुतिमें 'प्रेम और विरतिका' वर्णन है, इसीसे वह 'प्रेम वैराग्य सम्पादन' नामका सोपान है। (३) अरण्यकाण्डकी फलश्रुतिमें वैराग्य है, इसलिये वह 'विमल वैराग्य सम्पादन' नामका सोपान है, (४) किष्किन्धाकाण्डकी फलश्रुतिमें मनोरथसिद्धि है। मनोरथसिद्धिसे संतोष होता है, इसीसे इसका 'विशुद्ध संतोष सम्पादन' नाम है। (५) सुन्दरकाण्डकी फलश्रुतिमें ज्ञानकी प्राप्ति है,यथा—*'सकल सुमंगलदायक रघुनायक गुनगान।'* सुमङ्गल ज्ञानका नाम है, इसीसे वह 'ज्ञान सम्पादन' नामका सोपान है। (६) लङ्काकाण्डकी फलश्रुतिमें विज्ञानका वर्णन है। यथा—*'कामादि हर विज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा।'* इसीसे वह 'विज्ञान सम्पादन' नामक सोपान है और (७) उत्तरकाण्डकी फलश्रुतिमें 'अविरल हरिभक्ति' का वर्णन है, यथा—*'तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।'* इसीसे वह 'अविरल हरिभक्ति सम्पादन' नामका सोपान है। सारांश यह कि बालमें धर्म, अयोध्यामें प्रेम और वैराग्य, अरण्यमें विमल वैराग्य, किष्किन्धामें संतोष, सुन्दरमें ज्ञान, लङ्कामें विज्ञान और उत्तरमें अविरल हरिभक्ति कहा है।

☞ जैसा क्रम सातों काण्डोंकी फलश्रुतिमें है उसी प्रकार धर्म, वैराग्य, संतोष, ज्ञान, विज्ञान और हरिभक्तिकी प्राप्तिका क्रम है। अर्थात् धर्मका फल वैराग्य है, वैराग्यका, संतोष, संतोषका ज्ञान, ज्ञानका विज्ञान और विज्ञानका फल हरिभक्ति है।

नोट—*'सुनिय तासु गुनग्राम'''''बधिक'* में परम्परिक रूपक है।*'नीलोत्पल तन स्याम'* में वाचक लुप्तालङ्कार है।

पं०—काण्डके अन्तमें ध्यान और नामका उपदेश देनेका भाव यह है कि शयनके समय नामका जप और प्रभुका ध्यान करता हुआ सोवे तो जाग्रत्‌कालमें भी शुभ वासना होती है, वैसे ही समाप्तिमें प्रभुका ध्यान करनेसे अगले काण्डका उत्थापन भी आनन्दपूर्वक होगा।

प्र०—कुछ लोगोंका मत है कि *'बन बसि कीन्हें चरित अपारा''''''*' इस प्रश्नका उत्तर अरण्यकाण्ड है। क्योंकि उसका नाम ही वनकाण्ड है। कुछका मत है कि यथार्थ उत्तर इसका अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दर तीनों काण्ड हैं। इसके उदाहरण भी देते हैं (अरण्यकाण्डमें अरण्यके कुछ उदाहरण दिये जा चुके हैं)। किष्किन्धाके उदाहरण, यथा—*'छत्री रूप फिरहु बन बीरा', 'कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी', 'सहत दुसह बन आतप बाता', 'कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव', 'सुंदर बन कुसुमित अति सोभा', 'मंगलरूप भयेउ बन तब तें', 'चले सकल बन खोजत''''*', और *'बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं'* इत्यादि। इसी प्रकार सुन्दरमें भी वन शब्द आया है, यथा—*'कुवलय बिपिन कुंत बन सरिसा', 'तब मधुबन भीतर सब आए'* और *'जाइ पुकारे सकल ते बन उजार जुबराज।'*

महादेव दत्तजी—गोस्वामीजीने इस काण्डमें ३० दोहे क्यों रखे और इसे सबसे छोटा क्यों बनाया ? उत्तर १—३० दोहेका भाव कि मानो यह तीसामन्त्र है। और अपर जो छः काण्ड हैं वे सम्पुट हैं। जिनमेंसे बाल, अयोध्या, अरण्य ऊपरका ढकना है और सुन्दर, लङ्का, उत्तर नीचेका पल्ला है। इसके मध्यमें यह काण्ड रत्नरूप है। डब्बेसे रत्न छोटा होना ही चाहिये, अतः यह छोटा है और इसका मूल्य विशेष है, इसमें बहुत अर्थ भरे हैं। अथवा, २—किष्किन्धा रामजीका हृदय है। यथा—*'बालकांड प्रभुचरण अयोध्या कटि मन मोहै। उदर बन्यो अरण्य हृदय किष्किंधा सोहै'* इति (मानसाचार्य)। तहाँ हृदय शरीरके मध्यमें और छोटा होता है। वा, ३—इसमें श्रीजानकीजीकी प्राप्तिका सम्बन्ध किसी पदमें पाया नहीं जाता है। अतएव श्रीजानकी वियोग-विरह विचारकर थोड़ा (३० ही दोहेमें कथा) लिखकर समाप्त किया।

प० प० प्र०—इस काण्डमें केवल ३० ही दोहे रखनेमें गोस्वामीजीने अपनी काव्य प्रतिभाकी पराकाष्ठा की है, यह रहस्य विनयके *'कामधेनु कलि कासी।'* (पद २२) से स्पष्ट किया। इस पदमें कामधेनुका रूपक काशीजीसे बाँधा है। इस रूपकमें काशीका वर्णन ३० विषयोंमें किया है। वे सब विषय किष्किन्धाकाण्डमें हैं। यह काशी और किष्किन्धाके मिलानसे स्पष्ट हो जायगा।

| विषय | श्रीकाशीजी | किष्किन्धाकाण्ड |
|---|---|---|
| उपक्रम | *सेइअ सहित सनेह कामधेनु कलि कासी* | *सो कासी सेइअ कस न* |
| | *समनि पाप संताप सोक रुज''''सुमंगलरासी* | *मुक्तिजन्ममहि, ज्ञानखानि अघहानिकर* |
| १—४ | *मरजादा चहुँ ओर चरनबर* | चारों दिशाओंको दूत भेजना |
| ५ | *रोम सिवलिंग अमित अबिनासी* | *नाना बरन सकल दिसि देखिय कीस* |
| ६ | *अंतर अयन अयन भल* | किष्किन्धानगरी और प्रवर्षणगिरि |
| ७—१० | *थन फल* (चार) | अर्थ-धर्म काम मोक्षादि की प्राप्ति सुग्रीवादिको |
| ११ | *बच्छ बेद बिश्वासी* | *बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई* |
| १२ | *गल कम्बल बरुना बिभाति जनु* | *सरिता जल जलनिधि महुँ जाई* |
| १३ | *लूम लसति सरितासी* | *छुद्र नदी भरि चली तोराई* |
| १४ | *दंडपानि भैरव बिषान मलरुचि खलगन भयदासी* | लक्ष्मणजी ही भय दिखाते हैं। धनुष पाणि |
| १५-१६ | *लोल दिनेस तिलोचन लोचन* | *सुग्रीव लोलार्क, अङ्गद बाम नेत्र* |
| १७ | *करनघंट घंटासी* | *'सुनु सुग्रीव मारिहउँ।'* ६। तथा दोहा १९ आदिमें अनेक बार घंटा बज रहा है। |

| | | |
|---|---|---|
| १८ | *मनिकर्निका बदन ससि सुंदर* | चन्द्रमा मुनिका उपदेश |
| १९ | *सुरसरिसुख सुषमा* | प्रवर्षण गिरि और आसमंतातका सौन्दर्य |
| २० | *स्वारथ परमारथ पूरन पंचकोस* | सुग्रीवका स्वार्थ और परमार्थ पूरा हुआ |
| २१ | *विश्वनाथ पालक कृपाल* | शिवावतार हनुमान्‌जीने, ***'राखे सकल कपिन्ह के प्राना।'*** |
| २२ | *लालति नित गिरिजा सी* | तारा, जिसने अङ्गद सुग्रीवादिका पालन किया |
| २३ | *सिद्ध सची सारद पूजहिं* | स्वयं प्रभाने सिद्धिसामर्थ्यसे रामदूतोंका पूजन किया |
| २४ | *मन जोगवत रहति रमा सो* | प्रवर्षणपर मानो रमा निसर्ग लक्ष्मीरूपमें प्रकट होकर श्रीरामजीका चित्तरंजन कर रही हैं। |
| २५ | *पंचाच्छरी प्रान* | जाम्बवान्‌जी पंचाक्षरी हैं। इन्होंने सबमें जान भर दी, हनुमान्‌जीको प्रेरित किया। मं० सो० में पंचाक्षर-न, म (महि), शि (काशी), वा (भवानि), य (किय) हैं ही। |
| २६ | *मुदमाधव* | श्रीरामचन्द्रजी |
| २७ | *गव्य* ( पंचगव्य ) | पंचगव्यसे पापका नाश, रामदूतोंके स्पर्शसे संपाती पुनीत हुए। |
| २८ | *ब्रह्मजीव सम रामनाम* | मं० श्लो० में नामकी वन्दना, युगअक्षरोंका वर्णन |
| २९ | *चारितु चरित कर्म कुकरम करि मरत जीवगन घासी* | वाली मरा उसके यह कहनेपर भी कि ***'जेहि जोनि जनमउँ'*** उसे प्रभुने ***'निज धाम पठावा'*** यही उसके शुभाशुभ-कर्मोंका चर लेना है। |
| ३० | *लहत परम पद पय पावन* | ***'बालि निज धाम पठावा', 'परमपद नर पावई'*** |

(क) विनयपदमें काशीके सम्बन्धमें कहा है—***'कहत पुरान रची के सब निज कर करतूति कला सी।'*** वैसे ही किष्किन्धाकाण्डकी रचना अति मानुषी ही प्रतीत होती है, अतः कविका भाव यह है कि इसे श्रीरामचन्द्रजीने ही निर्मित किया है।

(ख) पदमें ***'तुलसी बसि हरपुरी राम जपु'*** यह उपदेश है, वैसे ही इस काण्डमें ***'जासु नाम अघ खग बधिक'*** है।

(ग) इस मिलानसे अनुमान होता है कि किष्किन्धाकाण्डका रहस्य प्रकट करनेके लिये काशी-स्तुति एक पदमें लिखी गयी। काशीको कामधेनु कहा, वैसे ही यहाँ ***'सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिपुरारि'*** कहा है।

(घ) काण्डमें ३० ही दोहे क्यों और त्रिपुरारि पाठ ही क्यों ठीक है, इसमें सन्देह न रहेगा।

नोट—मयङ्ककारने भी इसका रूपक काशीसे मानकर उसको यत्र-तत्र चौपाइयोंमें दिया है। पर क्लिष्ट कल्पनाएँ समझकर उनका पूरा उल्लेख मा० पी० में नहीं किया गया था।

***'सुनि सब कथा समीर कुमारा'***—प्रकरण एवं चतुर्थ सोपान समाप्त हुआ।

## श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

**श्रीहनुमते नमः। श्रीरामभक्त-भगवन्त-गुरुचरणकमलेभ्यो नमः। श्रीगुरवे नमः।**

**'सब मिलि कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि प्रभुहि भजौं दिन राती॥**
**मनकी सकल बासना भागै। सीतारामचरन लौ लागै॥**
**सीयरामपद परम प्रेम सिसु चाहत। अचल नेम देहु कृपा करि मोहि प्रभु॥**
**बार बार माँगउँ कर जोरें। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरें॥**

**श्रीसियावर रामचन्द्रजीकी जय।**

| मनोरथ | कुछ विशेष कामके मन्त्र |
|---|---|
| १ सर्वमनोरथोंके लिये | जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥ |
| | ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ॥ |
| २ चिन्तासे मुक्त होनेके लिये | त्राहि त्राहि जानकी जानकीवर। क्षमासींव समरथ करुणाकर॥ |
| | मामवलोकय पंकज लोचन। कृपाबिलोकनि सोचबिमोचन॥ |
| ३ सन्त-दर्शन | राम कृपा करि चितवहु जाही। संत बिसुद्ध मिलहिं परि ताही॥ |
| ४ सर्वमनोरथ सिद्धि | बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहौं कर जोरि। है प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि॥ |
| ५ कार्य साधन | महाबीर बिनवौं हनुमाना। राम जासु जसु आपु बखाना॥ |
| | कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं तात होइ तुम्ह पाहीं॥ |
| ६ घोर संकट निवारण | जननि जनक सियराम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धर्म नेम के॥ |
| | मंत्र महामणि विषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥ |
| ७ सद्गति। जिसमें भगवान् मरण कालमें याद पड़ें | राम चरणदृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तन त्याग। |
| | सुमनमाल जिमि कंठ ते गिरत न जानै नाग॥ |
| ८ सब तरहके सुधारके लिये | मोर सुधारहु सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥ |
| ९ मरण समयकी पीर | जेहिं राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महँ। |
| १० कल्याणके लिये | उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ |
| ११ भक्ति, शरणागति | तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु शरण सुखदाई॥ |
| | तुम्हहि नीक लागे रघुराई। सो मोहिं करहु शरण सुखदाई॥ |
| | बार बार बिनवौं कर जोरे। मन परिहरै चरन जनि मोरे॥ |
| | जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणासागर कीजिय सोई॥ |
| १२ | दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहुहि नहिं ब्यापा॥ |
| | नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥ |
| | अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥ |
| १३ आपदा निवारण मन्त्र | ॐआपदामपहन्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥ |
| | नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥ |
| | रामराज नभगेस सुनु सचराचर जगमाहिं। काल कर्म स्वभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥ |
| १४ ऋणसे उऋण होनेके लिये | आपदामपहन्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥ |
| | महावीर बिनवौं हनुमाना। राम जासु जसु आपु बखाना॥ |
| | कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं तात होत तुम्ह पाहीं॥ |
| | प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ज्ञानघन। जासु हृदय आगार बसहि राम सर चापधर॥ |
| १५ श्रीरामजीकोप्रसन्न करनेके लिये | (क) जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥ |
| | ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ॥ |
| | बिनवउँ लषन सीय रघुनायक। जाके हनूमान अस पायक॥ |
| | महावीर बिनवौं हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥ |
| | (ख) बिनवउँ श्रीजानकि रघुनायक। जिनके हनूमान अस पायक॥ |
| | महाबीर बिनवौं हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥ |
| | (ग) जब जप श्रीजानकि रघुनायक। जिनके हनूमान अस पायक॥ |
| | नमो नमो जानकी रघुनायक। जिनके हनूमान अस पायक॥ |

१६ लौकिक पारलौकिक सुखके लिये

रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकहिं सेष सारदा॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज काहुहि नहि व्यापा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परमगतिके अधिकारी॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥
रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म स्वभाव गुण कृत दुख काहुहि नाहिं॥
वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेस। बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥

## नामानुक्रमणी

श्रीअवधविहारीदासजी (नंगे परमहंसजी),
परमहंस श्री कल्याणराम रामानुजप्रपन्नजी (चित्रकूट),
पं० गंगाधर ब्रह्मचारीजी
महात्मा गांधीजी
पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
पं० जनार्दनदास व्यास
बाबा जयरामदास (जंगबहादुरसिंहजी)
बाबा जयरामदास वीनजी रामायणी
श्रीदेवतीर्थ स्वामी काष्ठजिह्वजी
प० प० प्र० स्वामी प्रज्ञानानंद सरस्वतीजी
(मानसी) बंदनपाठकजी
लाला भगवानदीनजी (दीनजी)
श्रीभगवानदास (मिरजापुर)
श्री भर्तृहरिजी
श्रीमन्नालाला अभिमन्यु
श्रीमहादेव दत्तजी
पं० महाबीरप्रसाद मालवी (वीरकवि) जी
श्रीयादवशंकर जामदारजी
श्रीरणबहादुरसिंहजी
श्रीराजबहादुर लमगोड़ा (राजारामशरण) जी
पं० श्रीरामकुमारजी (साकेतवासी प्रसिद्ध रामायणी)
पं० रामकुमारदास वेदान्तभूषणजी (श्रीअयोध्याजी)
पं० रामचन्द्र शुक्ल प्रोफेसर
बाबा श्री १०८ रामचरणदास करुणासिंधुजी
पं० रामदयाल माजूमदारजी
प्रोफे० श्रीरामदास गौड़जी एम०एस-सी०
बाबा रामप्रसाद शरणजी मानस-प्रचारक
पं० रामबख्श पाण्डेजी (प्रयाग)
पं० श्रीरामबल्लभाशरणजी रामायणजी
बाबा श्रीरामबालकदासजी रामायणी
श्री रामशंकरशरणजी
श्रीरामसेवक दासजी
पं० विजयानंद त्रिपाठीजी (मानस राजहंस)
श्रीवैजनाथजी
पं० शिवरत्नशुक्लजी
पं० शिवलाल पाठकजी
पं० शिवसहायजी
पं० श्रीकान्तशरणजी
पं० श्रीधर मिश्रजी
श्रीसंतसिंहजी पंजाबी ज्ञानी
श्रीसरयूदासजी
श्रीहनुमान्प्रसाद पोद्दारजी
श्रीहरिजन लालजी
बाबा हरिदासजी (सत्यनामी)
श्रीसीतारामीय हरिहरप्रसादजी